तीर्थंकरभगवन्तों द्वारा प्रकाशित दिगम्बर जैन धर्म ही सत्य है ऐसा गुरुदेवने युक्ति-न्यायसे सर्व प्रकार स्पष्ट रूपसे समझाया है। मार्गकी खूब छानबीन की है। द्रव्यकी स्वतंत्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादाननिमित्त, निश्चय-व्यवहार, आत्माका शुद्ध स्वरूप, सम्यग्दर्शन, स्वानुभूति, मोक्षमार्ग इत्यादि सब कुछ उनके परम प्रतापसे इस काल सत्यरूपसे बाहर आया है। गुरुदेवकी श्रुतकी धारा कोइ और ही है। उन्होंने हमें तरनेका मार्ग बतलाया है। प्रवचनमें कितना मथ-मथकर निकालते हैं! उनके प्रतापसे सारे भारतमें बहुत जीव मोक्षमार्गको समझनेका प्रयत्न कर रहे हैं। पंचम कालमें ऐसा सुयोग प्राप्त हुआ वह अपना परम सद्भाग्य है। जीवनमें सब उपकार गुरुदेवका ही है। गुरुदेव गुणोंसे भरपूर हैं, महिमावन्त हैं। उनके चरणकमलकी सेवा हृदयमें बसी रहे।

—बहिनश्री चम्पाबेन

आत्मधर्म

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी-जन्मशताब्दी-विशेषांक

* विषयानुक्रमणिका *

* काव्यविभाग *

—*—

શ્રી સમયસાર પરમાગમ વિષે

* પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના હૃદયોદ્‌ગાર *

(પોતાના જ હસ્તાક્ષરમાં)

ૐ

નમઃ સિદ્ધેભ્યઃ

ભગવાન શ્રી કુંદકુંદાચાર્યદેવ સમયપ્રાભૃતમાં કહે છે કે હું જે આ ભાવ કહેવા માગું છું તે અંતરના આત્મસાક્ષીના પ્રમાણ વડે પ્રમાણ કરજો; કારણ કે આ અનુભવપ્રધાન શાસ્ત્ર છે, તેમાં મારા વર્તતા સ્વ-આત્મવૈભવ વડે કહેવાય છે. આમ કહીને છઠ્ઠી ગાથા શરૂ કરતા આચાર્યભગવાન કહે છે કે, 'આત્મદ્રવ્ય અપ્રમત્ત નથી અને પ્રમત્ત નથી એટલે કે એ બે અવસ્થાનો નિષેધ કરતો હું એક જાણનાર અબદ્ધ છું- એ મારી વર્તમાન વર્તતી દશાથી કહું છું.' મુનિપણાની દશા અપ્રમત્ત અને પ્રમત્ત એ બે ભૂમિકામાં હજારો વાર આવ-જા કરે છે, તે ભૂમિકામાં વર્તતા મહા મુનિનું આ કથન છે.

સમયપ્રાભૃત એટલે સમયસારરૂપી ભેટણું. જેમ રાજાને મળવા ભેટણું આપવું પડે છે તેમ પોતાની પરમ ઉત્કૃષ્ટ આત્મદશાસ્વરૂપ પરમાત્મદશા પ્રગટ કરવા સમયસાર- જે સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રસ્વરૂપ આત્મા તેની પરિણતિરૂપ ભેટણું આપે પરમાત્મદશા-સિદ્ધદશા-પ્રગટ થાય છે.

આ શબ્દબ્રહ્મરૂપ પરમાગમથી દર્શાવેલા એકત્વવિભક્ત આત્માને પ્રમાણ કરજો, હા જ પાડજો, કલ્પના કરશો નહિ. આનું બહુમાન કરનાર પણ મહાભાગ્યશાળી છે.

* શ્રી સદ્‌ગુરુદેવ–સ્તુતિ *

[કુંદકુંદ–ભારતીના પનોતા પુત્ર, પરમાગમ–અનુવાદક આ૦ પ૦
શ્રી હિંમતલાલ જેઠાલાલ શાહના ભક્તિભીના હૃદયમાંથી વહેલી]

(હરિગીત)

સંસારસાગર તારવા જિનવાણી છે નૌકા ભલી,
જ્ઞાની સુકાની મળ્યા વિના એ નાવ પણ તારે નહીં,
આ કાળમાં શુદ્ધાત્મજ્ઞાની સુકાની બહુ બહુ દોહ્યલો,
મુજ પુણ્યરાશિ ફળ્યો અહો ! ગુરુ ક્હાન તું નાવિક મળ્યો.

(અનુષ્ટુપ)

અહો ! ભક્ત ચિદાત્માના, સીમંધર–વીર–કુંદના !
બાહ્યાંતર વિભવો તારા, તારે નાવ મુમુક્ષુના.

(શિખરણી)

સદા દૃષ્ટિ તારી વિમળ નિજ ચૈતન્ય નીરખે,
અને જ્ઞપ્તિમાંહી દરવ–ગુણ–પર્યાય વિલસે;
નિજાલંબીભાવે પરિણતિ સ્વરૂપે જઈ ભળે,
નિમિત્તો વહેવારો ચિદઘન વિષે કાંઈ ન મળે.

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

હૈયું ‘સત સત, જ્ઞાન જ્ઞાન’ ધબકે ને વજ્રવાણી છૂટે,
જે વજ્રે સુમુમુક્ષુ સત્ત્વ ઝળકે, પરદ્રવ્ય નાતો તૂટે;
–રાગદ્વેષ રુચે ન, જંપ ન વળે ભાવેંદ્રિમાં–અંશમાં,
ટંકોત્કીર્ણ અકંપ જ્ઞાન મહિમા હૃદયે રહે સર્વદા.

(વસંતતિલકા)

નિત્યે સુધાઝરણ ચંદ્ર ! તને નમું હું,
કરુણા અકારણ સમુદ્ર ! તને નમું હું;
હે જ્ઞાનપોષક સુમેઘ ! તને નમું હું,
આ દાસના જીવનશિલ્પી ! તને નમું હું.

(સ્રગ્ધરા)

ઊંડી ઊંડી, ઊંડેથી સુખનિધિ સતના વાયુ નિત્યે વહંતી,
વાણી ચિન્મૂર્તિ ! તારી ઉર–અનુભવના સૂક્ષ્મ ભાવે ભરેલી;
ભાવો ઊંડા વિચારી, અભિનવ મહિમા ચિત્તમાં લાવી લાવી,
ખોયેલું રત્ન પામું, –મનરથ મનનો; પૂરજો શક્તિશાળી !

---卐 卐 卐 ---

* अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी *

गणनातीत गुरु–उपकार मुज अणु–अणुमे रे,
शब्दोथी केम कथाय, नमु नमु भावे रे,
देव–गुरु तणो वसवाट सदा मुज दिलमा रे,
शिवपद तक रहु तुमदास–भावु उरमा रे...

*

Printed by PRINT-O-GRAPHICS, BOMBAY ☎ 561 17 67

* परमोपकारी पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी *

द्वादशांगका सार, खोलता सन्तहृदयका गहरा मर्म ।
गुरुवर-अन्तर-आशिषपूत सुमंगलमय यह 'आतमधर्म' ॥
[पूज्य-गुरुदेवश्रीकानजीस्वामी-जन्मशताब्दी-विशेषांक]

अप्रैल-मई, १९८९] अंक १०–११ [५२५-५२६] [वर्ष ४४

स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे

[राग : सीमंधरमुखथी फूलडां खरे]

उमराळा धाममां रत्नोंनी वर्षा,
जन्म्या तारणहार रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे;

उजमबा–माताना नंदन आनंदकंद,
शीतल पूनमनो चन्द रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे. १.

मोतीचंदभाईना लाडीला सुत अहो !
धन्य माता–कुळ–ग्राम रे;
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे;

दुषम काळे अहो! कहान पधार्या,
साधकने आव्या सुकाळ रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे. २.

विदेहमां जिन-समवसरणना
श्रोता सुभक्त युवराज रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे;
भरते श्रीकुंदकुंद-मार्ग-प्रभावक
अध्यातमसंत शिरताज रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे. ३.

वरस्यां कृपामृत सीमन्धरमुखथी,
युवराज कीधा निहाल रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे;
त्रिकाळ-मंगळ-द्रव्य गुरुजी,
मंगळमूर्ति महान रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे. ४.

आत्मा सुमंगळ, दृगज्ञान मंगळ,
गुणगण मंगळमाळ रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे;
स्वाध्याय मंगळ, ध्यान अति मंगळ,
लगनी मंगळ दिनरात रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे. ५.

स्वानुभवमुद्रित वाणी सुमंगळ,
मंगळ मधुर रणकार रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे;

ब्रह्म अति मंगळ, वैराग्य मंगळ.
मंगळ मगळ सर्वांग रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे. ६

ज्ञायक–आलम्बन–मन्त्र भणावी,
खोल्यां मंगळमय द्वार रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे;
आतमसाक्षातकार–ज्योति जगावी,
उजाळ्यो जिनवरमार्ग रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे. ७.

परमागमसारभूत स्वानुभूतिनो
युग सर्ज्यो उजमाळ रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे;
द्रव्यस्वतन्त्रता, ज्ञायकविशुद्धता
विश्वे गजावनहार रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे. ८.

सारा भारतमां अमृत वरस्यां,
फाल्या अध्यातम-फाल रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे;
श्रुतलब्धि-महासागर उछळ्यो,
वाणी वरसे अमीधार रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे. ९.

नगर नगर भव्य जिनालयो ने,
बिम्बोत्सव उजवाय रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे,

क्हानचरणथी सुवर्णपुरनो
उज्ज्वळ बन्यो इतिहास रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे. १०.

'भगवान छो' सिंहनादोथी गाजतुं
सुवर्णपुर तीर्थधाम रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे;

रत्नचिंतामणि गुरुवर मळिया,
सिद्धयां मनवांछित काज रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे. ११.

अनन्त महिमावन्त गुरुराजने
रत्ने वधावुं भरी थाळ रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे;

पावन ए संतनां पादारविंदमां
होजो निरंतर वास रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे. १२.

卐

आजकल पूज्य गुरुदेवकी बात ग्रहण करनेके लिये अनेक जीव तैयार हो गये हैं। गुरुदेवकी वाणीका योग प्रबल है, श्रुतकी धारा ऐसी है कि लोगोंको प्रभावित करती है और 'सुनते ही रहें' ऐसा लगता है। गुरुदेवने मुक्तिका मार्ग दरशाया और स्पष्ट किया है। उन्हें श्रुतकी लब्धि है।

—बहिनश्री चम्पाबहिन

卐 अनन्त अनन्त वन्दन 卐

[संकलित]

—श्री रामजीभाई माणेकचन्द दोशी

मोक्षमार्गके पथिक कृपालु गुरुदेव। आपने इस पामर पर अपार उपकार किया है, आप स्वयं मोक्षमार्गमें विचर रहे हो, और स्वयंकी दिव्य श्रुतधारा द्वारा भरतभूमिके जीवोंको सततरूपसे मोक्षमार्ग दिखा रहे हो। आपकी पवित्र वाणीमें मोक्षमार्गके मूलरूप कल्याणमूर्ति सम्यक्-दर्शनका माहात्म्य निरंतर बरस रहा है। आपका पवित्र समागम तथा आपकी सनातन-सत्य-वीतराग-मार्गबोधक अध्यात्मवाणीका अमूल्य लाभ लगभग अर्ध शताब्दीसे मुझे मिलता रहा है। सोनगढमें आपने सम्प्रदाय छोड़कर मंगल परिवर्तन किया। बादमें आपके प्रभावना-उदयकी पवित्र छायामें 'श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट' स्थापित करनेका तथा उसका संचालन करनेकी सेवाका लाभ आपकी सत्कृपासे मुझे मिला है। उसे जीवनपर्यंत निभानेकी शक्ति आपश्रीके पुण्य प्रतापसे मुझे मिले ऐसी मेरी भावना है। 'आत्मधर्म'का सम्पादन, समयसार वगैरह सत्शास्त्रोंका प्रकाशन तथा आपके प्रवचन साहित्यका प्रकाशन वगैरह वीतराग जिनशासनकी प्रभावनाके विविध कार्योंमें—आपके मंगलकारी प्रभावना-उदयमें—योगदान देनेका जो अमूल्य लाभ आपके सुप्रसादसे वर्षों तक मिला उसके लिये हे अनन्त अनन्त करुणाकर कल्याणमूर्ति सद्गुरुदेव! आपश्रीको मेरे अनन्त अनन्त वन्दन। — —

* सेठ श्री नानालालभाई जसाणीके उद्‌गार *

[माननीय सेठ श्री नानालालभाई जो कि आज अपने बीचमें नहीं है, परन्तु उन्होंने एक बार अपने कुटुम्ब-परिवारके समक्ष गुरुदेवकी भक्ति संबंधी जो उद्‌गारकहे और अपने परिवारको भी सोनगढ़ जाकर विशेप लाभ लेनेकी जो सलाह दी, उससे उनके अन्तरकी भावनाओंका ख्याल आ सकता है। यहा उनके वे उद्‌गार ही गद्यभक्ति रूपसे देनेमे आये है।]

*

मुझे श्रीमद् राजचन्द्रजीके दर्शन बम्बईमें हुये और उनकी साथमें लगभग २० दिन उनके घरमें रहा था। उनका धर्मके विषयमें उति-उच्च बोध था। वे हमेशा रात्रिमें आध्यात्मिक स्तवन अपूर्व शांतिसे बोला करते थे। तबसे उनकी ओर मेरी खूब जिज्ञासा हुई कि उनके पुस्तक पढ़ूं और उसमेंसे बोध प्राप्त करूं। रंगूनमे हमेशा एक घण्टा पढ़ता था और मनमें ऐसे विचार आते कि ऐसे गुरु कब मिले? १९८७ की सालमें अमरेली परमपूज्य महाराजसाहेब कानजीस्वामीका परिचय होते विश्वास हो गया कि जो श्रीमद् कहते हैं वही यह कह रहे हैं। तभी से मैंने उन्हें मेरा गुरु स्वीकारा। तुम सब जब जब समय मिले तब सोनगढ़ जाना और विशेप लाभ लेना यह मेरा अनुरोध है।

सेठ रामजी हंसराजने मुझे अमरेली बुलाया, वहां परमपूज्य गुरुदेव कानजीस्वामीका सत्संग हुआ तब मुझे विश्वास हुआ कि जिस गुरुकी शोधमें था वही गुरु मिल गये। तबसे उनके सत्संगमें रहनेका विशेप विशेप प्रयास करने लगा।

और सं. १९९४ में वे सोनगढ़ बिराजते थे उस समय स्वाध्याय-मन्दिरकी प्रतिष्ठा थी। उसी समय मुझे ऐसा विचार आया कि ये तो

जो कि स्थानकवासी हैं, मुझे यहां मन्दिर बांधनेकी आज्ञा देंगे ? किन्तु १९८६ में पूज्य गुरुदेव राजकोट पधारे तब बहिनों तथा भाइयोंकी इच्छा हुई कि सोनगढ़में जिनमन्दिर बनाया जाये। और मैंने ही गुरुदेवश्रीको विनती कि। सं. १९९५ में उसकी शुरूआत की और १९९७ में उसकी प्रतिष्ठा हुई। मेरा स्वास्थ्य उस समय अस्वस्थ था किन्तु उत्साह बहुत था, इसलिये जिनमन्दिरकी प्रतिष्ठामें पूरा भाग लिया। उसके बाद पू. गुरुदेव सं. १९९९ में राजकोट पधारे। १९९४ में दस महिना रहे थे और १९९९ में लगभग नव महिना रहे थे। और उनका बोध सुनकर मुझे और पूरे कुटुम्बको उनके प्रति बहुत बहुत आदर उत्पन्न हुआ। वैसा आदर तुम सबको उत्पन्न हो ऐसा मेरा अनुरोध है।

[—पूज्य गुरुदेवश्रीके अभिनन्दनग्रन्थमेंसे]

शास्त्रोंमें भरे हुए गहन भावोंको खोलनेकी गुरुदेवकी अजब शक्ति थी। उन्हें श्रुतकी लब्धि थी। व्याख्यानमें निकलते गम्भीर भावोंको सुनकर कई बार ऐसा लगता था कि यह तो क्या श्रुतसागर उछल रहा है ? ऐसे गम्भीर भाव कहाँसे निकल रहे हैं ? गुरुदेव जैसी वाणी कहीं भी सुननेमें नही आई। उनकी अमृतवाणी का गुन्जार कितना मीठा था ?—ऐसा लगता था कि सुनते ही रहें। उनके जैसा आत्माको स्पर्शकर निकलता एक वाक्य भी कोई नहीं बोल सकता। अनुभवरससे तराबोर गुरुदेवकी जोरदार वाणीकी गर्जना कोई और ही थी,—पात्र जीवोंके पुरुषार्थको जाग्रत करे और मिथ्यात्वको खण्ड खण्ड कर दे ऐसी दैवी वाणी थी। अपने भाग्य हैं कि गुरुदेवकी यह मगलमय कल्याणकारी वाणी 'टेप' में उतर कर जीवन्त रह गई।

—बहिनश्री चम्पाबहिन

卐 आनंद-ऊर्मिके स्वस्तिक पूरते हैं 卐

[पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन जेठालाल शाह]

हे परम कृपालु गुरुदेव! आपके गुणोंकी क्या महिमा करूं? आपके उपकारोंका क्या वर्णन करू? असली स्वरूपका ज्ञान देनेवाले, अपूर्व महिमाके धारक श्री गुरुदेवके चरणकमलकी सेवा-भक्ति निरंतर हृदयमें रहो। परम परम उपकारी श्री गुरुदेवके चरणकमलमें इस सेवकके बारंबार भावभीनी भक्तिसे कोटि कोटि वन्दन हो, नमस्कार हो।

हे गुरुदेव! इस भारतखण्डमें आप वर्तमान कालमें अजोड़ दिव्य महान विभूति हो, दिव्य आत्मा हो। आपने इस भरतखण्डमें अवतार ले करके अनेक जीवोंका उद्धार किया है, सम्यक्पंथमें लगाया है।

आपका अद्भुत श्रुतज्ञान चैतन्यका चमत्कार बतलाता है, चैतन्यकी विभूति बतलाता है, चैतन्यमय जीवन बनाता है। आपके आत्मद्रव्यमें श्रुतसागरकी लहरें उछल रहीं हैं, आत्मपर्यायोंमें जगमगाट करते ज्ञानदीपक प्रगट रहे हैं जो आत्मद्रव्यको प्रकाश रहे हैं। आपका आत्मद्रव्य आश्चर्य उत्पन्न करता है।

हे गुरुदेव! आपके मुखकमलमेंसे झरती वाणीकी क्या बात? वह ऐसी अनुपमरसभरी है कि उस दिव्य अमृतका पान करते तृप्ति ही नहीं होती। आपकी सूक्ष्म वाणी, चमत्कारभरी वाणी भवका अन्त लानेवाली है, चैतन्यको चैतन्यकी ज्ञानमहिमामें डुबानेवाली है। सूक्ष्म अर्थोंसे भरपूर, अपूर्व रहस्यवाली, अनेकविध महिमासे भरी हुई गुरुदेवकी वाणी है।

सुवर्णसमान निर्मलतासे शोभायमान, सिंहसमान पराक्रमधारी, ऐसे गुरुदेवने अनेक-अनेक शास्त्रोंका मन्थन करके, अेकाकी पुरुषार्थ करके, आत्ममार्गको शोधकर, आत्मरत्नकी आराधना कर, चारों तरफसे मुक्ति-

जन्मशताब्दी-विशेषांक
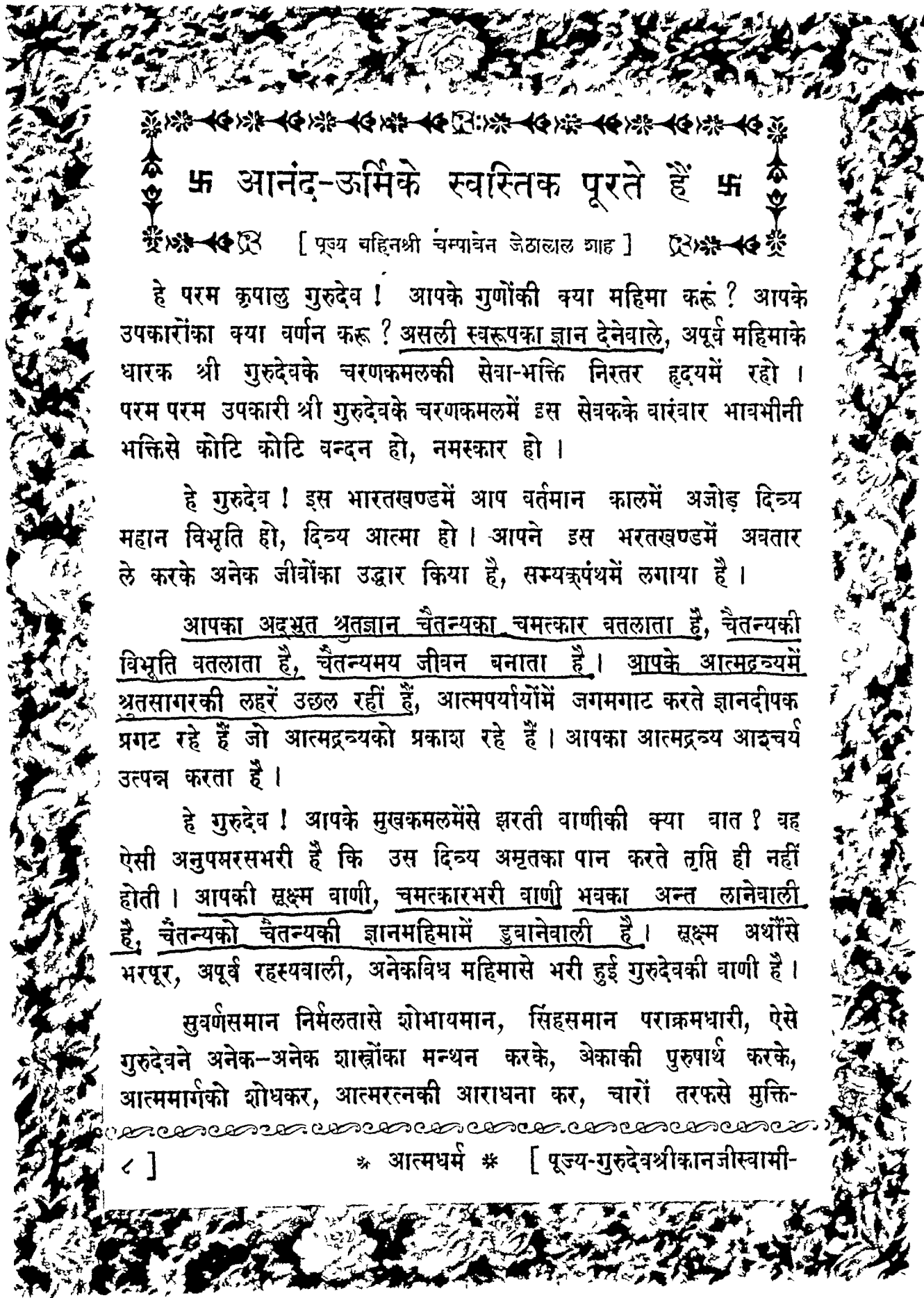
* मंगळ प्रयाण प्रवचन माटे *

क्हानचरणथी सुवर्णपुरनो
उज्जवळ बन्यो इतिहास रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे.

*

पू. गुरुदेव श्री कानजीस्वामी

* ज्ञानध्यानरत परमोपकारी पूज्य कहानगुरुदेव *

*

सत्यामृत वरसाव्या आ काळे तमे,
आशय अतिशय ऊडा ने गभीर जो,
नदनवन सम शीतळ छाय प्रसारता,
ज्ञानप्रभाकर प्रगटी ज्योत अपार जो

* प्रवचन माटे परमागममंदिर प्रति गमन *

*

कहानगुरुअे आखा भारतने डोलावियु रे,
गुरुने अतर उलस्या श्रुत तणा निधान,
जेना वदनकमळथी अमृतरस वरसी रह्या रे,
अेवा सतजनोनी महिमा केम कथाय,
नित्ये देव–गुरुने शास्त्र वसो मनमदिरे रे

पू. गुरुदेव श्री कानजीस्वामी
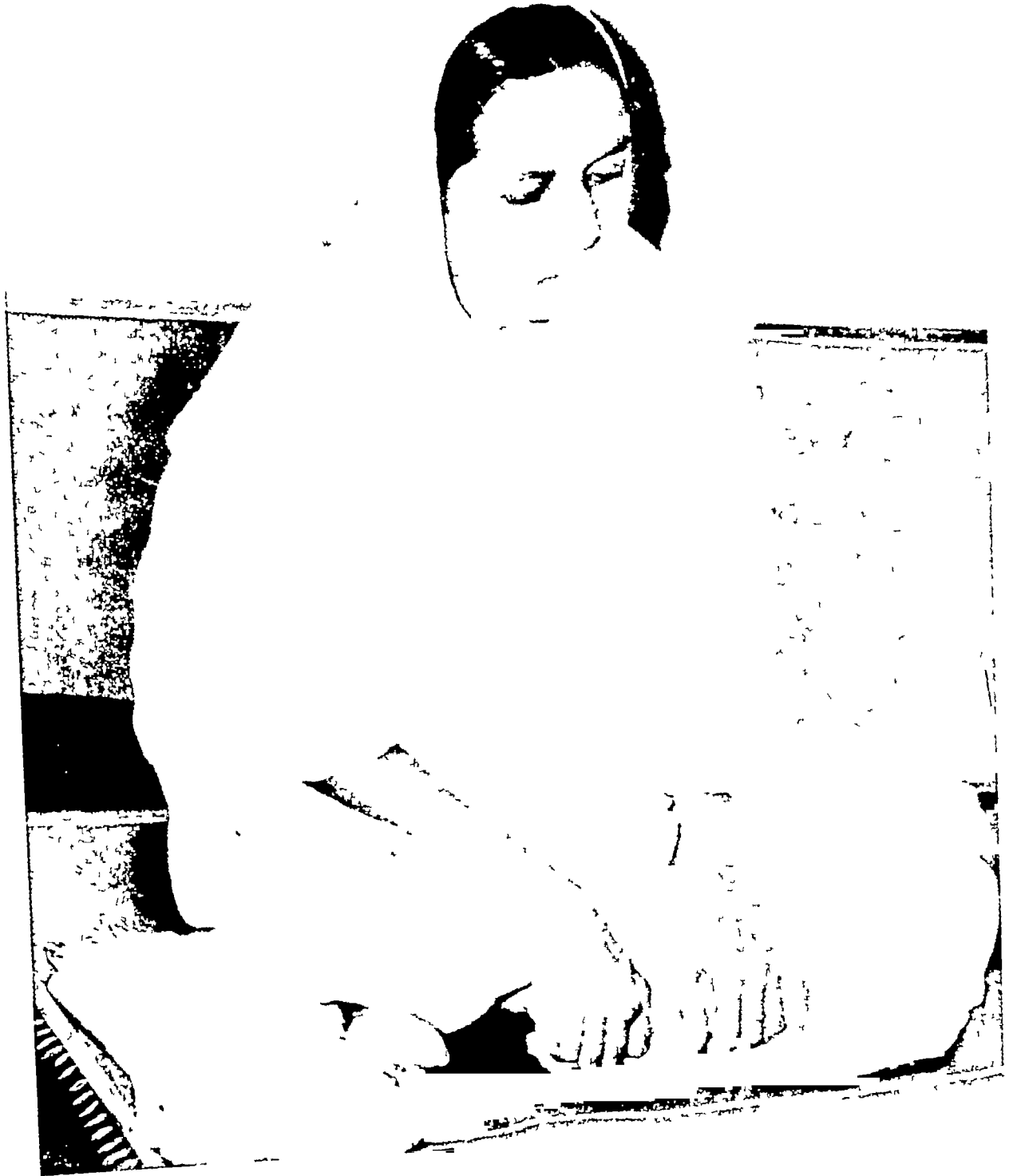
* प्रशममूर्ति पूज्य बहेनश्री चंपाबेन *

मार्गको स्पष्ट कर, परमागमोंके सूक्ष्म हार्दको प्रगटकर, चारों तरफसे मार्गकी स्पष्टता कर, अन्तरदृष्टि बताकर मुक्तिका मार्ग प्रकाशित किया है। निस्पृह और नीडर ऐसे गुरुदेवने मुक्तिमार्गको सब प्रकारसे स्पष्टतापूर्वक सरल करके अपार उपकार किया है, भेदविज्ञानका—स्वानुभूतिका मार्ग बताया है, रत्नत्रयका सत्यपन्थ प्रकाशित किया है, जिनेश्वर भगवानके कहे हुये और आचार्यदेवके गूंथे हुये अगणित शास्त्रोंके रहस्य प्रकाशित किये हैं।

श्री गुरुदेवने शुभाशुभ परिणामसे भिन्न शुद्धात्माका स्वरूप, निश्चय–व्यवहारका स्वरूप, निमित्त–नैमित्तिक भावोंका स्वरूप, ज्ञाताका स्वरूप, कर्त्ताका स्वरूप, वस्तुके सूक्ष्मभावोंका स्वरूप, अनेक–अनेकविध वस्तुका स्वरूप बताकर अपार उपकार किया है। अनेक सूक्ष्म न्यायोंको प्रकाशकर अमाप उपकार किया है। बारह अंग और चौदह पूर्वके सत्त्वरूप भाव गुरुदेवके ज्ञानमें भरे हैं। बहुश्रुतधारी सम्यक्ज्ञानी, सातिशयवाणी और सातिशय ज्ञानके धरनेवाले परम उपकारी गुरुदेवके चरणकमलमें अत्यन्त अत्यन्त भक्तिसे वन्दन–नमस्कार हो।

गुरुदेवने संघ सहित उत्तर और दक्षिणकी महान तीर्थयात्रा करके नगर–नगरमें शुद्धात्मतत्त्वका ढिंढोरा पीटकर सत् धर्मकी महान प्रभावना की है। उनके ज्ञानचक्रने सारे हिंदुस्तानको हिला दिया है। गुरुदेवने भारतभरमें धर्मके बीज बोये हैं।

गुरुदेवने गाम–नगर, जगह जगह जिनालयों और जिनेन्द्र भगवन्तोंकी प्रतिष्ठा की है, सौराष्ट्र-भरमें दिगम्बर मार्गकी स्थापना की है, वीतराग–शासनका उद्योत किया है। ऐसे शासनस्तंभ हे गुरुदेव! आपके कार्य अजोड़ हैं, इस कालमें अद्वितीय है।

पंचपरमेष्ठी भगवन्तोंकी पहिचान करानेवाले हे गुरुदेव! आप जिनेन्द्रदेवके परमभक्त हो, पंचपरमेष्ठीके परम भक्त हो, श्रुतदेवीमाता आपके हृदयमें उत्कीर्ण हो गई है, जिनेन्द्रभगवन्तों और मुनिवर भगवन्तोंके दर्शन और स्मरणसे आपका अन्तःकरण भक्तिसे उछल जाता है।

ऐसे अनेकविध अद्भुत गुणमहिमासे शोभित, रत्नत्रयके आराधक हे गुरुदेव! आपने उमरालामें जन्म लेकर उमरालाकी भूमिको पावन किया है। आपने बालवयसे ही संसारसे विरक्त होकर ससारका त्याग किया, जगतमें सत्यस्वरूपका दृढ़तापूर्वक प्रकाश किया, वीरका मार्ग स्वयं अन्तरमें आराधकर, भारतके जीवोंको समझाकर उपकार किया है। इसलिए हे गुरुदेव! आप भारतके भानु हो। आप जैसे दिव्य पुरुषका इस भारतमें अवतार हुआ इसलिये यह भरतक्षेत्र भाग्यशाली है। जिनके घर आपका जन्म हुआ उन माता पिताको धन्य है। आप जहां बसे उस भूमिको धन्य है। गुरुदेव जहाँ रहते हैं उस भूमिके रजकण–रजकणको धन्य है। गुरुदेव जहाँ वसते हैं उस क्षेत्रका वातावरण ही निराला है।

परमप्रतापी गुरुदेवने इस पामर सेवक ऊपर अनन्त अनन्त उपकार किये हैं।

'अहो! अहो! श्री सद्गुरु, करुणासिंधु अपार;
आ पामर पर प्रभु कर्यो, अहो! अहो! उपकार.'

गुरुदेवके उपकारोंका क्या वर्णन हो सकता है? गुरुदेवके गुणोंका बहुमान हृदयमें हो! गुरुदेवके चरणकमलकी सेवा हृदयमें हो!

गुरुदेवके चरणकमलोंमें परम भक्तिसे वारंवार वन्दन नमस्कार करके इस वैशाख शुक्ला द्वितीयाके—मांगलिक जन्म-महोत्सवके—प्रसंग पर श्री गुरुदेवका भक्तिपुष्पोंसे सन्मान करते हैं, आनन्द-ऊर्मिके स्वस्तिक पूरते हैं।

नित नित आनन्द मंगलकी वृद्धिके कारणभूत मंगलमूर्ति गुरुदेवका पुनित प्रताप जयवन्त हो! गुरुदेवके प्रभाव और चैतन्यरिद्धिकी वृद्धि हो!

श्री वीरशासन जयवन्त हो!

(पूज्य गुरुदेवश्रीके अभिनन्दनग्रन्थसे उद्धृत)

—०—

गुरु—जन्मजयन्तीके सन्दर्भमे

धर्मरत्न प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनके

卐 गुरु-भक्तिभीने मंगल हृदयोदगार 卐

गुरुदेवकी दोज (जन्मजयन्ती वैशाख शुक्ला दोज) आ रही है। गुरुदेव विराजमान थे उस समयकी बात तो कोई और ही थी। गुरुदेवके कारण सारा भारतवर्ष शोभायमान था। शास्त्रमें आता है न—हे भगवान! आप जिस नगरीमें पधारे उस नगरीकी शोभा स्वर्गसे भी अधिक लगती थी; और जब आप दीक्षा लेकर वनमें चले गये तब वह नगरी बिलकुल सूनी हो गई थी; उसी प्रकार गुरुदेव—तीर्थंकर तुल्य धर्मपुरुष—विराजमान थे तब इस भारतवर्षकी शोभा न्यारी ही लगती थी।

यहां (सुवर्णपुरीमें) गुरुदेव विराजते थे और निरन्तर उनकी चैतन्यरस झरती अमृतवाणी बरसती थी। धन्य ऐसी यह नगरी! धन्य वह अवसर! गुरुदेव परमपुरुष थे, महाशक्तिशाली थे। भारतवर्षमें इस समय गुरुदेवकी वाणी सर्वोत्कृष्ट अतिशययुक्त थी; पंचमकालमें भारतके जीवोंके चैतन्यको जगानेवाली थी। गुरुदेव जगतसे न्यारे ही लगते थे —उनकी मुद्रा भी न्यारी और वाणी भी न्यारी लगती थी। उनकी मुद्रा देखने पर लोग 'यह तो धर्मपुरुष है' यों चकित हो जाते थे; अहो! यह तो चैतन्यकी अतिशयता बतानेवाली मुद्रा! वे तो चैतन्यरत्नकी पहिचान करानेवाले परमपुरुष थे। प्रवचन देते हों तब और ही लगे। उनके चरणोंसे भारतवर्ष सुशोभित था, पावन था। वे चैतन्यदेवका मार्ग बताते थे। 'चैतन्यको पहिचानो पहिचानो!' ऐसी गर्जना करते थे; 'ज्ञायकदेव, भगवान आत्मा.. भगवान आत्मा' की पुकार करते थे; सबको 'भगवान' कहकर बुलाते थे। स्वयं तो भगवान स्वरूप थे—

अल्प कालमें भगवान हो जायेंगे। गुरुदेवके चैतन्यकी शोभाकी तो क्या बात! उनके पुण्यकी भी शोभा कोई और! ऐसे, बाह्य–अन्तर पुण्य व पवित्रताकी मूर्ति थे। भारतवर्षके भाग्य जो गुरुदेवने यहां जन्म लिया।

गुरुदेवने चैतन्यका डंका बजाकर सारे भारतमें खलबली मचा दी, मुमुक्षुओंके हृदयमें खलबली पैदाकर उनको अन्तरदृष्टि करनेके लिए प्रेरित किया। गुरुदेव कहते थे: [‘अनन्त शक्तिसे परिपूर्ण जो यह आत्मा है उसे जो ग्रहण करता है उसको शुद्धि व शुद्धिकी वृद्धि प्रगट हुए विना रहे ही नहीं।’ एक शुद्धात्माको ग्रहण कर।] गुरुदेव जैसे ‘गुरु’ मिले और भगवान ज्ञायकदेव आंगनमें पधारे, फिर तो शुद्ध पर्याय ही प्रगट करनेकी हो न! दूसरा तो जीवको अनन्तकालमें क्या नहीं मिला? सब मिल चुका है, सब श्रुत, परिचित व अनुभूत है। केवल चैतन्यके एकत्वकी बात सुलभ नहीं है, और सब सुलभ है। जन्ममरण करते करते विभाव सुलभ हो गया है, और ‘एकत्व’ स्वभाव है अपना, फिर भी वह दुर्लभ हो गया है। गुरुदेवके प्रतापसे स्वभावकी वार्ता व स्वभावकी अनुभूति सुलभ हो गई है। स्वभावकी अनुभूति करना वह अपने हाथकी –पुरुषार्थकी बात है।

गुरुदेवने अमृतके प्रपात बहाये। उनकी अमृत धारा चारों ओर बरसी। पतली धारासे नहीं अपितु मुसलधार वर्षा बरसाई। सब एक साथ पनप उठे, सब अन्तरके पेड़–पौधे पल्लवित हो जाये ऐसी मुसलधारा बरसाई; किन्तु अपनी उतनी तैयारी होनी चाहिए। अहा! पंचलकालमें श्रुतकी ऐसी मुसलधार वर्षा! कौन कहनेवाला था—‘मूल तत्त्व शुद्धात्मा है, उसे देख!’ वह शुद्धात्मा ज्ञानस्वरूपी, ज्ञानसे ओतप्रोत है; उसमें अधूरा ज्ञान नहीं, अधूरा दर्शन नहीं, किन्तु वह परिपूर्ण ज्ञान, दर्शन, व संयमकी–चारित्रकी मूर्ति है।

चेतनद्रव्य मिथ्यात्वके कारण विपरीत परिणमित हुआ है, किन्तु स्वभावसे दर्शन–ज्ञान–संयमकी मूर्ति है, वह अपना आचरण छोड़कर

वस्तुतः परमें नहीं गया है, संयममय उसका स्वभाव है। पर्यायमें औंधा हो गया है फिर भी वह है तो ज्ञानमूर्ति, दर्शनमूर्ति, संयममूर्ति। जहां विकल्पोंकी आकुलता नहीं है अैसा निराकुल आनन्दमूर्ति चैतन्य—ज्ञानकी मुद्रा, संयमकी मुद्रा, आनन्दकी मुद्रा. अैसी आश्चर्यकारी अनुपम मुद्रायुक्त चैतन्य अनन्तकालसे बाहरमें उलझ गया है। गुरुदेव कहते थे भाई! तू वापस लौट, तेरे घरमें जा, तेरे घरमें जा। (तेरे घरमें ही सब रिद्धिसिद्धि भरी हुई है। बाहरमें कहाँ खोजता है? जहां अनन्त गुणोंसे भरपूर चैतन्यप्रभुका दरबार है वहां—तेरे घरमें—जा न)! उस गुणमूर्ति चैतन्य प्रभुको जो पहिचाने वह धन्य है।

चैतन्यद्रव्य पर दृष्टि करे तो सब पर्याय (यथासम्भव) शुद्ध परिणमित हो जायें, सारी दिशा बदल जाये। विभावकी दिशा पर सन्मुख है। द्रव्यस्वभावकी ओर दृष्टि जानेपर पर्यायमें सारी दिशा पलट जाती है। शुद्धतारूप परिणमन हो जाता है। [जिस प्रकार पश्चिममेंसे पूर्वकी ओर मुख फेरते हैं, उसी प्रकार द्रव्यकी ओर मुख फेरनेसे पर्यायकी ओर पीठ हो गई, दृष्टि गई भगवानकी ओर, नयन भगवानको देखने लगे, हाथ उस ओर जुड़ने लगे, साधकके डग उस ओर चलने लगे। अैसे मंगलमय भगवानके दर्शनसे पर्यायमें मंगलप्रभा प्रसर गई!] अन्तरमें अैसे ज्ञायकदेवको बतानेवाले गुरुदेव स्वयं मंगलमय थे। उनकी मंगल प्रभासे भारतवर्ष सुशोभित था। अभी भी उनकी मंगल प्रभा छाई हुई है।

—o—

देव-गुरुकी वाणी और देव-शास्त्र-गुरुकी महिमा, चैतन्य-देवकी महिमा जाग्रत करनेमें, उसके गहरे संस्कार दृढ़ करनेमें तथा स्वरूपप्राप्ति करनेमें निमित्त हैं।

—बहिनश्री चम्पाबहिन

जन्मशताब्दीके मंगल अवसर पर

* गुरुदेवको उपकृतभावभीनी वन्दना *
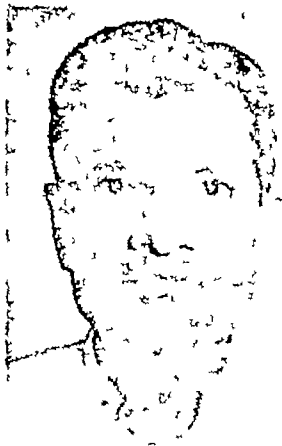
[परमपूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीकी जन्मजयन्तीके शुभावसर पर भिन्न भिन्न वर्षोंमें गुरुभक्त, गहरे आदर्श आत्मार्थी, अध्यात्मरसिक, आदरणीय विद्वान श्री हिंमतलालभाई जे. शाह द्वारा समर्पित 'उपकृतभावभीनी वन्दना' से सकलित]

* मुमुक्षुजीवनके शिल्पी *

हमारे परम उपकारी, हमारे जीवनके शिल्पी, हमें शाश्वत हितके मार्ग पर ले जानेवाले पूज्य गुरुदेवकी पावनकारी जन्मजयन्तीका यह प्रसंग उनके गुणों एवं उपकारोंको हृदयंगत करके उन्हें उपकृतभावसे वन्दन करनेका अवसर है। गुरुदेवके गुण और विविध उपकार हमें हमारे जीवनको बनानेमें सदा निरन्तर सहायक होते हैं, फिर भी मुमुक्षु भाई-बहिनोंके लिये विशाल समुदायमें इकट्ठे होकर उनके उपकारोंका विशिष्टरूपसे मनोभूमिमें स्मरण करके वाणी द्वारा व्यक्त करनेका आजका शुभ अवसर है।

भेदविज्ञान जग्यौ जिन्हके घट, शीतल चित्त भयौ जिम चन्दन।
केलि करै सिवमारगमें, जग माहिं जिनेसुरके लघुनन्दन॥
सत्य सरूप सदा जिन्हके, प्रगट्यौ अवदात मिथ्यात निकन्दन।
सान्तदसा तिन्हकी पहिचानि, करै कर जोरि बनारसि वन्दन॥

—इस प्रकार श्री बनारसीदासजीने सामान्यतः सर्व भेदज्ञानियोंको शिवमार्गमें केलि करनेवाले दिखाकर उन्हें हाथ जोडकर वन्दन किया है। हमारे गुरुदेव तो मोक्षमार्गमें केलि करनेवाले भेदविज्ञानी सम्यग्दृष्टि होनेके

उपरान्त हमारे भवभ्रमणके दुःख दूर करनेका सच्चा मार्ग दिखानेवाले प्रत्यक्ष अनन्त-उपकारी महापुरुष हैं। आजके अवसर पर हम सब समूहमें इकट्ठे होकर उन्हें विशिष्टभावसे वन्दन करते हैं।

जिन्होंने स्वप्नमें भी सम्यक्त्वको मलिन नहीं किया है ऐसे धन्य पुरुष, सुकृतार्थ—अच्छी तरहसे कृतकृत्य हुए पुरुष, पण्डित और शूरवीर ऐसे महापुरुष कि जो स्वयं सम्यक्त्व प्रगट करके, अपना जीवन सम्यक्त्वमें एवं उसके आश्रयभूत ज्ञायकभगवानके गीत गानेमें बिता रहे हैं, और इस प्रकार जिनके द्वारा अनेक जीवोंके जीवन योग्यतानुसार कम या ज्यादा अंशोंमें बने है और बनते जा रहे हैं, ऐसे पवित्र महापुरुषकी आज परम मंगलकारी जन्मजयन्ती है।

※ सम्यग्दृष्टिके प्रति माहात्म्यभाव ※

सम्यग्दृष्टिका अपार माहात्म्य है। भले हमने सम्यग्दर्शनकी परिणति प्राप्त न की हो, सम्यग्दर्शनके विषयभूत भगवान आत्माका हमें दर्शन न हुआ हो, परन्तु सम्यग्दृष्टिके प्रति परम माहात्म्यभाव तो अवश्य हमारे हृदयमें सतत रहना चाहिये। वह, भगवान आत्माकी प्राप्तिके पुरुषार्थकी भावना सूचित करता है। यदि सम्यग्दृष्टिके प्रति हमारे अन्तरमें परम माहात्म्यभाव न हो, तो हमें भगवान आत्मा प्राप्त करनेकी ऐसी तमन्ना भी नहीं है।

※ प्रत्यक्ष-उपकारी सम्यग्दृष्टिकी महत्ताकी तो क्या बात? ※

श्रीमद् राजचन्द्रजीने कहा है: 'अनन्तकालसे जो (इंद्रिय) ज्ञान भवहेतु होता था उस (अतीन्द्रिय) ज्ञानको एक समयमात्रमें जात्यन्तर करके जिसने भवनिवृत्ति-रूप किया, उस कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शनको नमस्कार।' अनादि कालसे अनन्त अनन्त जीवोंका समूह बन्धमार्ग पर चला जा रहा है। उन सबका मुख बन्धकी तरफ ही है। 'यम नियम संजम आप कियो, पुनि त्याग

विराग अथाग लह्यो; वनवास लियो मुख मौन रह्यो, दृढ आसन पद्म लगाय दियो।' ऐसी कठोर क्रियाओंके पालन करनेवाले साधु भी उसी बन्धमार्ग पर चलनेवाली विशाल कतारमें ही हैं। 'सब शास्त्रनके नय धारी हिये, मतमण्डन–खण्डन भेद लिये' ऐसे ११ अंग और ९ पूर्वके ज्ञानवाले साधु भी उसी कतारमें चले जा रहे हैं। उनमेंसे कोई विरल जीव अपूर्व पुरुषार्थ द्वारा अपनी परिणतिको पलटकर सम्यग्दर्शन प्राप्त कर ले, वही पुरुष ऐसा है कि जिसने अनन्त अनन्त कालसे अनन्त अनन्त जीवोंकी बन्धमार्ग पर चली जा रही कतारसे अलग होकर, अपना मुख मोड़कर, मोक्षके मार्ग पर प्रयाण शुरू किया है। भले उसकी गति मन्द हो, वह साधुपदमें न हो, केवलीरूप न हो, किन्तु उसकी दिशा मोक्षके ओरकी है, उसकी जाति मोक्षमार्गीकी है।—ऐसी उसकी महत्ता हमारे हृदयमें जम जाना चाहिये। केवल सम्यग्दृष्टिके पदका इतना महत्त्व है तो फिर संसारसागरसे पार होनेका उपाय दिखानेवाले ऐसे प्रत्यक्ष-उपकारी सम्यग्दृष्टिके माहात्म्यके विषयमें तो क्या कहें? ऐसे हमारे परम–उपकारी सम्यग्दृष्टि कृपालु गुरुदेवके चरणोंमें तो हमारा सर्वस्व निछावर करनेके भाव जागे वह भी कम है। आजके पवित्र प्रसंग पर उनके चरणोंमें उपकृतभावसे हमारे परमभक्तिपूर्वक वन्दन हों।

* बाल्यावस्थासे गुणवान् *

वीरमार्गके उद्धारक, अध्यात्मयुगस्रष्टा, पूज्य गुरुदेवका मंगल जन्म वि. सं. १९४६में वैशाख शुक्ला दूजके शुभ दिन उमराला गाँवमें हुआ था। वे बचपनसे ही गम्भीर, विचारशील, प्रत्येक वस्तुके हार्दमें उतर जानेवाली तेजस्वी बुद्धिवाले, वैरागी, सत्यनिष्ठ, अल्पजीवी वस्तुओंके प्रति उपेक्षाभाव रखनेवाले, शाश्वत हित करनेकी भावनावाले, साधुजनोंके संगमें अत्यंत प्रीति रखनेवाले इत्यादि विविध सद्गुणोंसे अलंकृत थे।

पालेजकी दुकान पर बैठते, वहां भी अध्यात्मकल्पद्रुम, सज्झायमाला, 'जैन समाचार' मासिक पत्रिका इत्यादि धार्मिक साहित्य पढ़ते और इस जीवनमें 'भवभ्रमणका अन्त आ जाय' ऐसा कुछ कर लेना चाहिये –ऐसी भावना उनके मनमें सदा रहती। उनकी सज्जनता, वैराग्य वगैरह सद्गुणोंके कारण लोग उन्हें 'भगत' कहते। उन्होंने निज कल्याणकी भावनासे वि. सं. १९७० में स्थानकवासी जैन सम्प्रदायमें मुनिदीक्षा अंगीकार की। आजीवन ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा तो उन्होंने दीक्षा लेनेके पहले ही ले ली थी।

※ भवातकी धडकनसे धबकता हृदय ※

वे सम्प्रदायके मुनिके रूपमें अति दृढ चारित्र पालते। उनका सारा समय प्रायः शास्त्रस्वाध्यायमें बीतता। शास्त्राभ्यास ही उनका भोजन था। शास्त्रस्वाध्यायकी धुन इतनी तीव्र थी कि आहार लेने जानेमें, आहार करनेमें और निद्रामें जो समय देना पडे वह भी उनको खटकता। एक पूरे चातुर्मासमें एकान्तर उपवास करके श्वेताम्बर सम्प्रदायमें प्रसिद्ध सभी शास्त्रोंकी स्वाध्याय कर ली थी। इस अल्पायु मनुष्यभवमें निज कल्याणकी साधना करना वही परम कर्तव्य है ऐसा विचार उनकी रगरगमें व्याप्त था। दीक्षाके बाद थोडे समयमें उनके गुरु श्री हीराचन्दजी महाराजने गुरुदेवके सद्गुण, आत्मार्थिता, विद्वत्ता आदि देखकर उनसे व्याख्यान देनेको वात्सल्यसे कहा था, तब गुरुदेवने नम्रतासे किन्तु दृढ़तापूर्वक कहा था कि 'महाराज! मैं यहाँ व्याख्यान देनेके लिये नहीं आया, मैं तो मेरी आत्माका कल्याण करनेके लिये आया हूँ'। (यद्यपि थोड़े समयके बाद संयोगवशात् व्याख्यान देनेका कार्यभार उनके सिर आ पड़ा था।) उनके हृदयकी प्रत्येक धडकनमें 'भवका अन्त करना है' यही भाव रहता था। 'भजीने भगवन्त भवन्त लहो' इस पंक्तिके 'भवन्त लहो' पढ सुनकर वे डोलने लगते।

※ अशरीरी होनेका शास्त्र ※

इस तरह भवांतका ध्येय रखकर निर्दोष पराक्रमी दीक्षित जीवन बिताते हुए उनके हाथमें पुण्ययोगसे श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवविरचित श्री समयसार नामक शास्त्र आया। उसको पढ़ने पर उनको वह शास्त्र अपार महिमायुक्त लगा और उन्होंने उसको 'अशरीरी होनेके लिये उत्तम शास्त्र' कहा। श्री समयसार परमागमके अतिरिक्त उन्होंने अन्य दिगम्बर शास्त्र तथा मोक्षमार्गप्रकाशक, पंचाध्यायी वगैरहका भी गहरा अध्ययन किया, जिससे द्रव्यकी सम्पूर्ण स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, सम्यग्दर्शनका महिमामय स्वरूप, स्वानुभूति, शुभभावोंका भी बन्धस्वरूपपना, ज्ञायकके आश्रयस्वरूप शुद्धभावमें ही मोक्षमार्गपना, निर्विकल्प स्वानुभूति होते सिद्धके सुखके नमूनेका स्वाद—इत्यादि अनेक महत्त्वपूर्ण विषयोंका उनके अन्तरमें स्पष्ट प्रकाश हुआ।

※ हृदयपरिवर्तन होते ही व्याख्यानमें विलक्षणता ※

उन शास्त्रोंके गहन अवगाहनसे निष्पक्ष सत्यशोधक गुरुदेवके हृदयमें परिवर्तन हुआ; उनकी समझमें सत्य वस्तुस्वरूप आ गया और मोक्षमार्गकी सच्ची दिशा सूझी। सच्चा मार्ग सूझनेसे उनके व्याख्यानोंमें कोई अनोखे प्रकारका प्रकाश प्रकट हुआ। सम्प्रदायकी शैलीमें जिसका नामोंनिशान भी नहीं था ऐसे जड़–चेतनको भिन्न करनेवाले, शुभभावोंसे शुद्धभावका जात्यन्तरपना दिखानेवाले और सदा सम्यक्त्वके माहात्म्यसे सभर तर्कशुद्ध न्याय गुरुदेवके व्याख्यानोमें आते, जिनको सुनकर श्रोता मुग्ध हो जाते थे। 'मेरे प्रवचनसे ज्यादा लोग समझेंगे तो मुझे ज्यादा लाभ होगा ऐसी मान्यता झूठी है', 'जिस भावसे तीर्थंकरनामकर्मका बन्ध हो वह भाव भी हेय है', 'उपसर्ग करनेवालेके ऊपर क्रोध करूंगा तो भविष्यमें नरकादिके दुःख भोगने पड़ेंगे—ऐसा सोचकर अथवा मेरे अशुभ कर्मके

उदयसे यह उपसर्ग आया है, तो फिर उपसर्ग करनेवालेके प्रति क्रोध क्या करना—ऐसा सोचकर क्षमा धारण करना मोक्षका कारण नहीं है, परंतु [शुद्ध आत्मस्वभावके आलम्बनसे जो सहज क्षमा रहती है, वही मोक्षका कारण है।]'—ऐसे सैंकडों न्याय गुरुदेवके व्याख्यानोंमें आते, जो अन्य किसी भी जगह सुननेको नहीं मिलते।

※ सम्यक्त्वका माहात्म्य ※

वि. सं. १९८२में गुरुदेवश्रीका चातुर्मास वढवाणमें था। उस समय मेरे बड़े भाई श्री वजुभाईको चार महिने तक व्याख्यान सुननेका अवसर मिला। उस समय में अहमदाबादमें कॉलेजमें पढ़ता था। वजुभाई मुझे लिखते: यहाँ एक महाराज आये हैं। उनके प्रवचन अद्भुत हैं। वे सम्यक्त्वके ऊपर बहुत जोर देते हैं। सामान्यतया ऐसी मान्यता है कि "जैनदर्शन सच्चा है, ऐसा मानना सो समकित; और उसके उपरान्त सामायिकादि व्रत करनेसे पाँचवां गुणस्थान होता है।" उसका ये महाराज निषेध करते हैं। वे सम्यक्त्वकी गजबकी महिमा गाते हैं। व्याख्यानमें कोई भी अधिकार चलता हो तोभी साथमें वे सम्यक्त्वका चमत्कारिक माहात्म्य सुन्दर ढंगसे समझाते हैं। वे कहते हैं: सम्यग्दर्शन महा दुर्लभ है। जीवने अनन्त बार राजपाट छोड़कर दीक्षा ली है और चमड़ी उतारकर उसके ऊपर क्षार छिड़कनेवालोंके प्रति किंचित्मात्र आँख लाल न करे ऐसी क्षमा रखी है परन्तु समकित एक बार भी प्राप्त नहीं किया है। समकितमें तो आत्मसाक्षात्कार होता है और सिद्धभगवानके सुखके नमूनेका आंशिक स्वाद आता है। समकितीका परिणमन जात्यन्तर हो गया है। वह सुनकर लगता है कि सचमुच समकित कोई अद्भुत चीज है।—इस प्रकार भाई श्री वजुभाई लिखते थे। उन्होंने व्याख्यानोंकी संक्षिप्त नोंध भी लिखी थी; वह हम एक जैन पत्रमें अलग अलग चुन-चुनकर छपवाते थे।

※ परिवर्तन ※

इस प्रकार महाराजश्रीने सौराष्ट्रमें एक अनोखे प्रकारका सम्यक्त्व-प्रधान वातावरण खड़ा कर दिया। उनके ज्ञान और कठोर चारित्रकी ख्याति सौराष्ट्रमें फैल गई, और स्थानकवासी साधुओंमें कानजीस्वामीका नाम अग्रस्थान पर गिना जाने लगा। इस तरह एक ओरसे एक उत्तम साधुके रूपमें उनकी ख्याति खूब फैलने लगी थी, तो दूसरी ओर श्री समयसारादि शास्त्रोंके गहरे अवगाहनसे उनके अन्तरमें प्रतीति हो गई थी कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूल जैनधर्म है। इसलिये 'बाहरी वेश जुदा और भीतरमें श्रद्धा कुछ जुदी' ऐसी स्थिति हो गई थी, जो उनको खटकती थी। अन्तमें, ऐसी स्थिति लम्बे समय तक नहीं सही जानेसे उस सहृदय वीर पुरुषने, चाहे जैसे उपसर्ग आ पड़े उन सबको सहन करनेकी तैयारी करके, वि. सं. १९९१ में एक ऐतिहासिक पराक्रमी काम किया—सोनगढमें श्री हीराभाईके एकान्त मकानमें स्थानकवासी सम्प्रदायका चिह्न मुंहपत्तीका त्याग किया। सम्प्रदायमें हलचल तो मची, परन्तु धीरे धीरे उसका शमन हो गया। महाराजश्रीने अपनी सच्चाईसे लोगोंके हृदयमें स्थान प्राप्त किया था इसलिये धीरे धीरे सत्संगार्थी जनोंका पूर सोनगढकी ओर बहने लगा, और अनेकानेक लोग पूज्य गुरुदेवके अनुयायी बने। बादमें तो आवश्यकतानुसार स्वाध्यायमन्दिर, जिनमन्दिर, समवसरणमन्दिर आदि बनते गये, दूर दूरसे दिगम्बर जैन भी गुरुदेवका उपदेश श्रवण करनेको आने लगे और गुरुदेवका अनुभवमुद्रित सत्य तत्त्वज्ञान भारतमें फैलने लगा।

※ कानजीस्वामीका सोनगढ ※

वि. सं. २००१में इन्दौरके सर शेठ श्री हुकमचन्दजी सोनगढ आये और गुरुदेवके तात्त्विक उपदेशसे बहुत ही प्रभावित हुए तथा उनके

हृदयमें गुरुदेवके प्रति जीवनपर्यंत भक्तिभाव रहा।

वि. सं. २००३में सोनगढमें श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्-परिषदका अधिवेशन हुआ, जिसके निमित्तसे करीब ३२ प्रतिष्ठित विद्वान पण्डित सोनगढ पधारे और गुरुदेवके मुखसे स्वतन्त्र द्रव्य-गुण-पर्याय, विज्ञानघन आत्मा और आनन्दस्यंदी स्वानुभूतिके मधुर गीत सुनकर पावन हुए। सर्वत्र ज्ञानवार्तासे गुंजता सोनगढका धार्मिक वातावरण देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए थे। एक विद्वान पण्डितजीने मुझसे कहा था कि यहां तो सुबहसे लेकर रात तक जहाँ देखो वहाँ—घरमें या मार्गमें, बालक या वृद्ध, स्वतंत्र द्रव्य, ज्ञायक, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार इत्यादिकी ज्ञानवार्ता करते ही दृष्टिगोचर होते हैं। ऐसा धार्मिक वातावरण अन्यत्र कहीं पर नहीं देखा!.. दूसरे एक पण्डितजीने प्रवचनमें मण्डनमिश्रका दृष्टांत देकर ऐसे आशयका कहा था कि: "शंकराचार्य मण्डनमिश्रके साथ तत्त्वचर्चा करने जा रहे थे। मण्डनमिश्रका गाँव आते ही उन्होंने किसीसे पूछा —मण्डनमिश्रका घर कहाँ है? उत्तर मिला—जहाँ बरामदेमें लटकते पिंजड़ेमें तोता और मैना 'स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं'की चर्चा करते हों, वह मण्डनमिश्रका घर। इसी प्रकार जहाँ सर्वत्र बच्चे भी द्रव्य-स्वातंत्र्य, ज्ञायक आत्मा इत्यादिकी ज्ञानवार्ता कर रहे हों, वह 'कानजी-स्वामीका सोनगढ'।" सचमुच गुरुदेवने सर्व द्रव्योंकी स्वतंत्रता, विज्ञानघन आत्मा और आनंदस्यंदी आत्मानुभूतिकी प्रधानताका पवित्र युग प्रवर्तित किया है।

* युगप्रधान ही नहीं परन्तु युगस्रष्टा *

गुरुदेवका आंतरिक जीवन भेदज्ञानमय परमपवित्र होनेके उपरान्त बाहरमें भी उनको आश्चर्यकारी प्रभावनायोग वर्तता था, जिसके कारण भारतवर्षमें एक आध्यात्मिक युगका प्रवर्तन हुआ। 'समयसार-प्रवचनो'की प्रस्तावनामें उनके लिये 'युगप्रधान' शब्द लिखा हुआ पढ़कर

गुरुदेवने निर्मानतासे कहा था कि 'मेरे लिये बहुत बड़ा शब्द लिख डाला है'। परन्तु उसके बाद थोडे ही समयमें पण्डित लालनजीने किसी बात पर उल्लास आ जानेसे कहा था कि 'गुरुदेव! आप युगप्रधान नहीं हैं परंतु युगस्रष्टा हैं'। इस तरह पं. लालनजीको गुरुदेवके लिये प्रयुक्त 'युगप्रधान' शब्द बड़ा नहीं किन्तु छोटा लगा था; 'युगस्रष्टा' शब्द ही उचित लगा था। सचमुच पूज्य गुरुदेवने इस कालमें ज्ञानमूर्ति आत्माका, सम्यग्दर्शनकी महिमाका, निश्चयनयकी मुख्यताका, द्रव्यके सम्पूर्ण स्वातंत्र्यका, उपादान-निमित्तके यथार्थ तत्त्वज्ञानका, आध्यात्मिक वस्तुविज्ञानका और समयसारका युग सरजा है।

※ सत्य मार्गकी सचोट घोषणा ※

बहुत समयसे प्रायः लोग कर्मप्रकृतिके ज्ञानको ज्ञान समझते, आत्मश्रद्धा रहित 'वीतरागने कहा हुआ मार्ग सच्चा है' ऐसी अन्धश्रद्धाको सम्यग्दर्शन समझते, उपवासादिक दैहिक कष्टको चारित्र मानते। जिस प्रकार गीला वस्त्र धूपमें सुखानेसे पानी झर जाता है, वैसे शरीरको धूपमें तपाने जैसी कष्टप्रद क्रियासे कर्मोंकी निर्जरा हो जायेगी—ऐसी ऐसी तत्त्वज्ञान रहित मान्यताएं प्रवर्तती थीं। अबाधित सिद्धांतोंकी कसोटीमें पार हो सके ऐसा वीतरागप्रणीत सद्धर्म वैज्ञानिक भूमिकासे सरककर रूढ़िगत सांप्रदायिकतामें और क्रियाकांडमें फँस गया था। 'वीतरागने ऐसा कहा है इसलिये वह सत्य होगा, हम अल्पज्ञ क्या जानें?' ऐसी शिथिल बातें करनेवाले लोग ही चारों ओर दिखते थे। किन्तु 'मेरो धनी नहीं दूर दिसंतर, मोहिमें है मोहि सूझत नीके' ऐसा अनुभव करके 'मैं ज्ञानमूर्ति भगवान हूँ' ऐसा दृढ़तासे ढिंढोरा पीटकर कहनेवाला कोई दिखता नहीं था। ऐसे समयमें गुरुदेवने समयसार द्वारा परम चमत्कारिक आत्मपदार्थका अनुभव किया और अनुभवजन्य श्रद्धाकी

वज्रमयी शिला पर खड़े होकर जगतमें घोषित किया कि " अहो ! प्राणियों ! परभावोंसे और विकारसे भिन्न ज्ञानमूर्ति आत्मपदार्थके अनुभवसे कहते हैं कि हम जिस मार्ग पर चलते हैं और जो मार्ग दिखाते हैं, उस मार्ग पर चले आइये और अगर मोक्ष न मिले तो उसकी जिम्मेदारी हम हमारे सिर लेते हैं। आत्मामें भव है ही नहीं ऐसा अनुभव किये विना ज्ञान कैसा ? दर्शन कैसा ? और वह शुद्धात्मभूमिका प्राप्त किये विना तुम चारित्रके चित्र कहाँ पर खींचोगे ? यह जो हम कह रहे हैं वह बात तीन काल और तीन लोकमें फिरनेवाली नहीं है। सर्व तीर्थंकरोने यही बात की है। और समस्त अनुभवी पुरुष तीनों काल यही बात कहते रहेंगे।"

इस प्रकार अनुभवकी वज्रभूमिके ऊपर खडे रहकर अत्यन्त निःशंकपनेसे एवं कभी भी लेशमात्र थकानके विना, सदा आनन्दसागरको उछालते, अत्यन्त प्रमोदसे चैतन्यभगवानके गीत गाते, अध्यात्म-उपदेशकी वर्षा करते हुए गुरुदेव इस कालमें एक अजोड़ लोकोत्तर व्यक्ति थे।

* व्यापक धर्मोद्योत *

सोनगढमें गुरुदेवके प्रवचन नियमितरूपसे सदा चलते थे; इसके उपरान्त, सोनगढसे अनेक सत्शास्त्र और प्रवचनग्रन्थ प्रकाशित होने लगे। 'आत्मधर्म' मासिक पत्रिका निकलती। तीर्थयात्रादिके निमित्तसे भारत-वर्षमें गुरुदेवके विहार हुए। इस प्रकार विधविधरूपमें कल्पनातीत व्यापक धर्मोद्योत गुरुदेव द्वारा हुआ।

यह असाधारण धर्मोद्योत स्वयमेव विना-प्रयत्न सहजरूपसे हुआ है। गुरुदेवने धर्मप्रभावनाके लिये कभी कोई योजना तैयार नही की। यह उनकी प्रकृतिमें ही नहीं था। "मुनिको किसी प्रकारके धर्मप्रक्रमके

परिणाम नहीं होते अर्थात् मुनि किसी प्रकारकी प्रवृत्तिकी जिम्मेदारी अपने सिर नहीं लेते—इस प्रवचनसारकी बातका विवेचन करते हुए, मानों कि अपने हृदयकी बात (अपनेको अत्यन्त पसंद बात) शास्त्रमेंसे मिली हो वैसे वे खूब खिल उठते। उनका पूरा जीवन निज कल्याणसाधनाको समर्पित था। जगतकी बात जगत जाने, मुझे मेरा हित करना है—यह उनका हृदय था। 'आप मूए सब डूब गई दुनिया' ऐसा कबीरने गाया है; परन्तु गुरुदेवको तो जीते ही, 'मेरे लिये कोई है नहीं दुनिया' ऐसी परिणति जीवनमें गूथा गई थी।

उन्होंने जो सुधास्यन्दी आत्मानुभूति प्राप्त की थी, जिन कल्याणकारी तथ्योंको आत्मसात् किये थे, उसकी अभिव्यक्ति 'वाह ! ऐसी वस्तुस्थिति !' इस प्रकार विविधरूपमें सहजभावसे उल्लासपूर्वक उनके द्वारा हो जाती थी, जिसका गहरा आत्मार्थप्रेरक प्रभाव श्रोताओंके हृदय पर पड़ता।

※ गुरुगमदाता गुरुदेव ※

जीव एक स्वतन्त्र पदार्थ है, वह बाह्य क्रियाओंसे तो बिल्कुल भिन्न है, उसे बाह्य क्रियाका कोई फल— अच्छा या बुरा—मिलता नहीं है; शुभ भाव और अशुभ भावोंका फल उसे अवश्य मिलता है, किन्तु मूलभूत शाश्वत सुखरूप फल नहीं; —इत्यादि तत्त्वज्ञान तथा 'भगवान आत्मा. भगवान आत्मा . ज्ञायक'का रणकार सदा जीवनपर्यंत गुरुदेवने गजाया। भौतिक जगतमें जहाँ 'आत्मा है या नहीं'की शंकामें ही बहुत बड़ा जनसमुदाय गोते खा रहा है, वहाँ गुरुदेवने अत्यन्त जोरदार भेरी बजायी कि—एक ज्ञायक ही मैं हूँ। मैं सबके ऊपर तैरता परम पदार्थ हूँ। वे मस्तीमें गाते कि—'परम निधान प्रगट मुख आगळे, जगत उल्लंघी हो जाय जिनेश्वर'। वे आश्चर्य अनुभवते कि यह, दृष्टिके सामने ही, परम-निधान—समृद्धिभरपूर ज्ञायकतत्त्व—पड़ा है, उसको लाँघकर (उसके प्रति

लक्ष किये विना) जगत क्यों चला जाता है ? 'यह वस्तु सच्ची', यह चीज यहाँ प्रत्यक्ष दिखती है', इस तरह दृश्य वस्तुको वह देखता है, किन्तु उसके देखनेवालेको वह क्यों लाँघ जाता है ? 'प्रेम-प्रतीत विचारो ढूंकडी, गुरुगम लेजो रे जोड, जिनेश्वर।' सर्व दृश्य वस्तुओंके द्रष्टाकी—परमनिधानकी—स्वानुभवयुक्त प्रतीति गुरुगमसे होती है। ऐसी उस पवित्र गुरुगमके आधार हमारे परमोपकारी गुरुदेव हमारे परम भाग्योदयसे हमें मिले।

* अकारण पारिणामिक द्रव्य *

गुरुदेव सम्प्रदायमें थे तबसे ही प्रत्येक द्रव्यके स्वातंत्र्यकी श्रद्धा उनके अन्तरमें जम गई थी। मैं एक स्वतंत्र पदार्थ हूँ, मुझे कर्म रोक नहीं सकते—ऐसा वे बारबार कहते। वि. सं. १९८८में स्थानकवासीके साधुके रूपमें गुरुदेवका चातुर्मास जामनगरमें था, तब मैंने उनसे प्रश्न किया : 'महाराज साहेब! दो जीवोंको १४८ कर्मप्रकार सम्बन्धी सर्व भेद-प्रभेदोंके प्रकृति-प्रदेश-स्थिति-अनुभाग सब बिल्कुल समान हो तो वे जीव उस समय समान भाव करेंगे या भिन्न भिन्न प्रकारके ? उन्होंने कहा : 'भिन्न भिन्न प्रकारके'। मैंने प्रश्न लम्बाया : 'दोनों जीवोंकी शक्ति तो पूर्ण है और आवरण बिल्कुल समान हैं, तो फिर भाव भिन्न भिन्न प्रकारके कैसे कर सकते हैं ? गुरुदेवने तुरन्त ही दृढ़तासे उत्तर दिया : 'अकारण पारिणामिक द्रव्य है'। उस समयके ये जोरदार शब्द अभी भी मेरे कानोंमें गुंजा करते हैं। 'अकारण पारिणामिक द्रव्य' अर्थात् जीव जिसका कोई कारण नहीं है ऐसे भावोंरूप स्वतंत्रतया परिणमता द्रव्य है। इसलिये उसे अपने भावोंको स्वाधीनतासे करनेमें वास्तवमें कौन रोक सकता है ? वह स्वतंत्ररूपसे अपना सब कुछ कर सकता है।

[उपकृतभावभीनी वन्दना]

※ ज्ञानियोंके आत्मानन्दकी अद्‌भुतता ※

एक बार पूज्य गुरुदेवके पास हम कई भाई बैठे थे। और गुरुदेव मुनियोंके एवं सम्यग्दृष्टियोंके आत्मानन्दकी अद्‌भुतताका वर्णन कर रहे थे: 'मुनि दुःखी नहीं होते, वे तो आनन्दमें डोलते हैं। उनके सच्चे आनन्दके पास इंद्रोंके काल्पनिक सुख तो वास्तवमें जलन है। सम्यग्दृष्टि जीवने भी सिद्धसदृश आंशिक सुखका स्वाद चख लिया है, जिस सुखका अंश भी वैषयिक सुखाभासोंमें नहीं होता। ज्ञानी जीवोंका अहो कैसा अलौकिक आनन्द!' मैंने कहा: 'गुरुदेव! खाजा और खांड खानेवाले पुरुषको देखकर अथवा उसके आनन्ददायक स्वादकी बात सुनकर देखनेवाले या बात सुननेवालेको जैसा आनन्द आये (और उसकी जैसी भूख मिटे) वैसा आनन्द आपकी बात सुनकर हमें आता है। गुरुदेवने मुक्त हास्य किया और कहा 'तुम्हारे पास भी अखूट खाजा और खांडका—अमृतभोजनका—डब्बा भरा पड़ा है, खोलकर खाओ न!' ये वात्सल्यपूर्ण सहृदय प्रेरक वचन सुनकर, 'अहो! वह अमृतभोजनका डब्बा खोलनेकी कला हमें कब प्राप्त हो और अमृतभोजन करके तृप्त हों!' ऐसी हृदयोर्मि मेरेमें जागी।

—इस प्रकारके उपरोक्त साहजिक भावसे मुख्यतया गुरुदेवके द्वारा सत्य धर्मकी प्रभावना हुई थी, कोई योजनापूर्वक नहीं।

※ गुरुदेवका सिंहनाद ※

जैनके सभी फिरकोंमें शरीराश्रित क्रियाकांडोंमें अथवा क्रियाकांडावलम्बी शुभभावोंमें प्रायः धर्म माना जाता था। ऐसे समयमें गुरुदेवने स्वानुभूतियुक्त सहज सिंहगर्जना की कि—आत्मा एक ज्ञानानन्दस्वभावी पदार्थ है। उसका स्वानुभव किये विना सम्यग्दर्शन नहीं होता, सम्यग्ज्ञान नहीं होता, सम्यक्‌चारित्र नहीं होता। स्वानुभूति होते ही जो शुद्धभावका अंश प्रकट होता है, वही वृद्धिगत होते होते मोक्षको साधता है। यह मोक्ष प्राप्त

करनेकी विधि है। इसके सिवा कोई दूसरी विधि नहीं है—ऐसा हम स्वानुभवसे कहते हैं। तुम निःशंक होकर इस मार्ग पर चले आओ। शुद्धभावकी अपूर्णतामें साथमें जो शुभभाव होते हैं, वे तो वास्तवमें बन्धके कारण होने पर भी उपचारसे मोक्षके कारण कहे जाते हैं। इसलिये इस अमूल्य मनुष्यभवमें आत्महित कर लेनेकी इच्छा रखनेवाले जीवोंको वस्तु-स्वरूप समझकर स्वानुभूतियुक्त सम्यग्दर्शन प्राप्त करके आंशिक शुद्ध परिणति प्रकट करनेका पुरुषार्थ कर्तव्य है।

इस प्रकार वास्तवमें गुरुदेवने स्वानुभूतिप्रधानताका युग प्रवर्तित किया है। 'मेरो धनी नहि दूर दिसंतर, मोहीमें है मोहि सूझत नीके' ऐसी प्रबल सिंहगर्जना करके गुरुदेवने सर्वज्ञ वीतरागप्रणीत स्वानुभूतिप्रधान जिन-शासनकी निस्तेज हुई ज्योतमें नया तेज पूरकर आत्मार्थी जीवों पर अनहद उपकार किया है।

※ गुरुदेवका जीवन : आत्मानुभव ※

अभी थोड़े दिन पहेले ही जीवराजजी महाराजने मुझसे कहा था कि "बहुत साल पहले गुरुदेव चेला नामक गाँवमें मंजिल पर घूम रहे थे और मस्तीसे गा रहे थे कि 'सततमनुभवामोऽनन्तचैतन्यचिह्नं, न खलु न खलु यस्मादन्यथा साध्यसिद्धिः।' खूब धून लग गई थी। अभी भी वह दृश्य मेरी आँखोंके सामने तैरता है।"

अनन्त-चैतन्यचिह्नवाले भगवान आत्माका सतत अनुभव वह गुरुदेवका जीवन था और इसके सिवा अन्य किसी भी उपायसे साध्यकी सिद्धि नहीं है, नहीं है—यह बात उन्होंने जगत समक्ष जीवनपर्यंत अत्यन्त जोरसे घोषित की और सुपात्र जीवोंको कल्याणके सच्चे मार्गपर लगाया।

※ मोक्षमार्गका मूलभूत रहस्य ※

वे फरमाते थे कि 'अशुभ एवं शुभ दोनों भाव बन्धके कारण हैं,

मोक्षके नहीं।' 'तो मोक्षका कारण कौन है?' 'शुद्धभाव'। 'जितना कषाय घटे इतना तो शुद्धभाव होता है न?' तब दृढ़तासे उत्तर मिलता कि 'यह तो शुभभाव है। निरंतर शुद्ध ऐसे आत्मपदार्थकी श्रद्धा करना, उसको जानना, और उसमें लीन होना वह शुद्धभाव है।' 'अशुद्धभावके समयमें भी शुद्ध आत्मपदार्थ? अशुद्ध और शुद्ध साथमें कैसे रह सकते हैं?' 'रह सकते हैं। यद् विशेषेऽपि सामान्यं एकमात्रं प्रतीयते। विशेष अशुद्ध हो तब भी सामान्य तो एकरूप—शुद्धरूप रहता है। जहाँ अज्ञानी विशेषोंका आस्वाद लेते हैं, वहीं ज्ञानीजन सामान्यके आविर्भावपूर्वक स्वाद लेते हैं। यही संक्षेपमें बन्धमार्ग और मोक्षमार्गका मूलभूत रहस्य है।'

※ स्फटिकमणिके दृष्टांतसे आत्माका सदाशुद्धत्व ※

पूज्य गुरुदेव प्रत्येक पदार्थकी स्वतन्त्रताकी घोषणा सदा करते और फरमाते कि विश्वके अनन्त द्रव्य पूर्णतया स्वतन्त्र हैं। सभी द्रव्योंके गुण-पर्याय अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य भिन्न भिन्न हैं। आत्मद्रव्यको शरीरादि परद्रव्योंके साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। आत्मा अन्य पदार्थोंसे बिल्कुल भिन्न रहकर अपने शुभ, अशुभ या शुद्ध भावको स्वयं ही करता है। यहाँ स्वभावतः प्रश्न उठता कि "(श्री प्रवचनसारमें कहे अनुसार) शुभ या अशुभमें परिणमनेसे 'शुभ या अशुभ' आत्मा बनता है" ऐसा आप कहते हैं और साथ साथ "आत्मा 'सदा शुद्ध' रहता है, जिस शुद्धताका आश्रय करना वह मोक्षमार्ग है" ऐसा भी आप फरमाते हैं, इन दोनों बातोंका मेल कैसे बैठता है? इस अत्यन्त अत्यन्त महत्त्वकी बातका स्पष्टीकरण गुरुदेव इस तरह करते :—

स्फटिकमणि लाल वस्त्रके संयोगसे लाल होता है तब भी उसकी निर्मलता सर्वथा नष्ट नहीं हो गई, सामर्थ्य-अपेक्षासे—शक्ति-अपेक्षासे वह निर्मल रहा है; वह लाल अवश्य हुआ है, वह ललाई स्फटिक की ही है, वस्त्रकी बिल्कुल नहीं; परन्तु वह ललाई लालरंगके चूर्णकी, हिंगुलकी

या कुमकुमकी ललाई जैसी नहीं है; लाल अवस्थाके समयमें भी सामर्थ्यरूप निर्मलता मौजूद है। उसी प्रकार आत्मा कर्मके निमित्तसे शुभभावरूप या अशुभभावरूप होता है तब भी शुद्धताका सर्वथा नाश नहीं हुआ है, सामर्थ्य-अपेक्षासे—शक्ति-अपेक्षासे वह शुद्ध रहा है; वह शुभाशुभभावरूप अवश्य परिणमित हुआ है, वह शुभाशुभपना आत्माका ही है, कर्मका बिल्कुल नहीं है; परंतु शुभाशुभ अवस्थाके समयमें भी सामर्थ्यरूप शुद्धता मौजूद है। जिस प्रकार स्फटिकमणिको लाल हुआ देखकर बालक रोने लगता है कि 'अरेरे! मेरा स्फटिकमणि सर्वथा मलिन हो गया' परन्तु जौहरी ललाईके समयमें भी मौजूद रही हुई निर्मलताको मुख्यतापूर्वक जानता होनेसे वह निर्भय रहता है; उसी प्रकार आत्माको शुभाशुभभावरूप परिणमता हुआ देखकर अज्ञानी उसे सर्वथा मलिन हुआ मानकर दुःखी दुःखी हो जाता है परन्तु ज्ञानी शुभाशुभपनेके समयमें ही मौजूद रही हुई शुद्धताको मुख्यतापूर्वक जानता होनेसे वह निर्भय रहता है।

सामर्थ्य कहो, शक्ति कहो, सामान्य कहो, ज्ञायक कहो, ध्रुवत्व कहो, द्रव्य कहो या परमपारिणामिक भाव कहो—ये सब एकार्थ हैं ऐसा गुरुदेव फरमाते।

बहुत साल पहले जब हमारा मण्डल थोडे भाई-बहिनोंका बना हुआ—छोटा था, तब 'इसी समयमें आत्मा शुद्ध है' इस बातने हमारे सभीके मनमें भारी आश्चर्य उत्पन्न किया था। स्फटिकमणिके दृष्टांत अनुसार उस बातका अस्वीकार भी नहीं हो सकता था। बहुत ही आश्चर्य होता: 'वाह! अभी भी शुद्ध? ऐसा अनुभव (भले उपयोगरूप या लब्धरूप) ज्ञानीको सदा वर्तता है? गजबका परिणमन!' हमेशां यह बात रसमय चर्चाका विषय बनती तथा ज्ञानी-सम्यग्दृष्टिके परिणमन प्रति अत्यन्त माहात्म्यभाव उत्पन्न होता था और हृदय झुक जाता था।

सामर्थ्यरूप (शक्तिरूप) शुद्धताके—ध्रुवत्वके भान विना शुद्ध परिणति

होती नहीं। ध्रुवत्व अर्थात् अन्वयका अर्थ केवल 'वह...वह...वह' इतना ही नहीं है, परन्तु केवलज्ञानके सामर्थ्यसे भरपूर, अनन्त-सुखसामर्थ्यसे भरपूर, अनन्त वीर्यादि-सामर्थ्यसे भरपूर ऐसा 'वह...वह वह'—ऐसा अन्वय, ऐसा सामान्य, ऐसा पारिणामिकभाव, ऐसा ज्ञायक। ऐसे शुद्ध ज्ञायकका गुरुदेव सतत अनुभव कर रहे थे इसलिये निरंतर आंशिक शुद्ध परिणति उन्हें वर्तती थी। उसके साथ वर्तता प्रयोजनभूत विषयोंका—द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, नवतत्त्व, निश्चय-व्यवहार, उपादान-निमित्त, मोक्षमार्ग इत्यादिका—ज्ञान भी उनमें विशदतासे सम्यक्‌रूप परिणमता था, जिससे शास्त्रोंके लुप्तप्राय सच्चे भाव उनके द्वारा खुले और जगतमें बहुत प्रसारित हुए।

* जगतके अभिप्रायके प्रति अति निरपेक्षता *

सिद्धांतनिष्ठामें अत्यन्त दृढ़ता गुरुदेवकी लाक्षणिकता थी। सभी क्रान्तिकारोंमें यह गुण होता है। सिद्धांतमें वे लेशमात्र भी छूट नहीं रखते। वे जगतके अभिप्रायकी परवा नहीं करते। जगतकी ओरसे मान मिले या अपमान हो उस तरफ उनकी सम्पूर्ण उपेक्षा रहती। वे कहते—क्या लोग तुझे स्वीकारे तो ही तू सच है? तू तुझे स्वीकारता है फिर जगतकी क्या अपेक्षा है? क्या वे तुझसे बड़े हैं कि तुझे उनके अभिप्रायकी अपेक्षा रहती है? और यदि वे छोटे हैं, तो फिर उनके अभिप्राय या मानका मूल्य कितना? 'लही भव्यता मोटुं मान, कवण अभवि त्रिभुवन अपमान'—यह उनका प्रिय सूत्र था। यदि तीर्थंकरके ज्ञानमें आया कि तू भव्य है, तो उसके जैसा जगतमें दूसरा मान कौनसा है? तीर्थंकरके ज्ञानमें तो ठीक, किन्तु स्वयं ही निज तीर्थंकर, उसके ज्ञानमें आया कि 'मैं भव्य हूँ', फिर मुझे दूसरा क्या मान चाहिये? और अगर तीर्थंकरने देखा कि यह अभव्य है—अपात्र है, तो तीन लोकमें इसके समान दूसरा कौनसा अपमान है? फिर पूरा जगत तेरी फूलोंसे बधाई करे तो भी उसमें तेरी

कौनसी बड़ाई हुई ? इस प्रकार गुरुदेव जगतके अभिप्रायकी ओर अत्यन्त निरपेक्ष रहते।

※ मोक्षका कारण मात्र शुद्धपरिणति ※

पूज्य गुरुदेव निजात्मानुभवी युगपुरुष थे। उन्होंने निजात्मानुभूतिके प्रकाश द्वारा, 'आत्मा क्या है, उसकी शक्ति-व्यक्तिका क्या स्वरूप है, उसे शरीरादिके साथ कौनसा सम्बन्ध है'—ऐसी किसी भी बातका विचार किए बिना लोग शरीरादिकी क्रियाओंको और तदाश्रित शुभभावोंको मोक्ष-मार्ग मानकर—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मानकर—प्रवर्तते थे ऐसे कालमें, स्वानुभूतिके जोरपूर्वक सिंहगर्जना की कि—अरे जीवों! आत्मा देहसे बिल्कुल भिन्न, ज्ञानानन्दस्वभाववाला स्वयंसिद्ध पदार्थ है, उसे देहकी क्रियाओंसे तो बिल्कुल लाभ-हानि है ही नहीं और तदाश्रित शुभभावोंसे भी मुक्ति तो अंशमात्र भी नहीं होती, सिर्फ देवादि गतिकी प्राप्ति होती है। मुक्ति तो सर्व परद्रव्योंसे भिन्न, शुभाशुभभावोंसे भी कथंचित् भिन्न, परिपूर्ण ज्ञानस्वभावी आत्माकी अनुभूति करनेसे होती है। वह अनुभूति गृहस्थदशामें भी हो सकती है। इसलिये इस अमूल्य मनुष्यभवमें तुम स्वानुभूतिका प्रयत्न करो। वह स्वानुभूति होते ही जो शुद्ध परिणति प्रगट होती है, उसकी उग्रता होना वही श्रावकपना और मुनिपना है। शुद्ध परिणतिकी अपूर्णताके कारण, साथ साथमें श्रावकपने या मुनिपनेके व्रतादि शुभभाव होते हैं, वे तो बन्धके कारण हैं, मोक्षके बिलकुल नहीं हैं। मोक्षका कारण तो शुद्ध परिणति ही है। ऐसा मोक्षमार्गका यथार्थ स्वरूप जगतके जीवोंको समझाकर, उनको सम्यक् मार्गपर लाकर, इस कालमें गुरुदेवने अवर्णनीय उपकार किया है।

※ अशुद्धताके समयमें भी द्रव्यरूप शुद्धता ※

आत्मा 'भविष्यमें' सर्वज्ञ होगा, सम्पूर्ण सुखी होगा, निर्विकारी होगा ऐसा नहीं, परन्तु 'अभी भी' वह सामर्थ्य-अपेक्षासे विज्ञानघन है, अनन्तानन्दका पिंड है, निर्विकारी है, जिसका ज्ञानीको स्पष्ट सानुभव

ख्याल होता है। गुरुदेव फरमाते कि—'तेरो सरूप न द्वंदकी दोहीमें, तोहीमें है तोहि सूझत नांही।' तेरा स्वरूप रागद्वेषादि द्वन्द्वकी दुविधामें नहीं है, अभी ही रागद्वेषरहित है; उसकी सूझसे ही मोक्षमार्ग शुरू होता है। तुझे उसकी सूझ नहीं है इसलिये तू संसारमें परिभ्रमण करता है।

एक वार रात्रिचर्चामें किसीने पूज्य गुरुदेवको यही प्रश्न पूछा था कि शुभाशुभ पर्यायके समयमें भी परिपूर्ण भरचक शुद्धताका कैसे संभव है? गुरुदेवने उत्तर दिया था कि 'भिन्न भिन्न विशेषोंके समयमें भी सामान्य तो एकरूप ही रहा हुआ दिखता है; यह बात समझाते हुए पंचाध्यायीमें अनेक दृष्टांत दिये हैं।' इन दृष्टांतोंको याद करनेके लिए गुरुदेव प्रयत्न करते थे, तब सभामेंसे कोई भाई यह श्लोक बोले : सन्त्यनेकेऽत्र दृष्टान्ता हेमपद्मजलानलाः। आदर्शस्फटिकाश्मानौ बोधवारिधिसैंधवाः॥ श्लोक सुनकर गुरुदेव प्रसन्न हुए और सोना, कमल, जल, अग्नि, दर्पण, स्फटिकमणि, ज्ञान, समुद्र और लवणके दृष्टांतों द्वारा, विशेष-अपेक्षासे होती अशुद्धताके समयमें भी सामान्य-अपेक्षासे रहती द्रव्यकी शुद्धता समझाई। गुरुदेवने फरमाया कि द्रव्य-अपेक्षासे अभी ही शुद्धता विद्यमान न हो तो किसी भी कालमें पर्यायशुद्धता हो ही नहीं सकती। सभाजन आनन्दित हुए।

❀ मेरु समान अडिग आत्माभिमुखता ❀

गुरुदेवका आचरण हंमेशा ही आत्माभिमुख रहा है। जगतके प्रति हंमेशा दुर्लक्ष। ई. स. १९२१, १९३० इत्यादि वर्षोंमें अत्यन्त प्रचण्ड भारतव्यापी राजकीय आंदोलन हुए थे जिसके प्रभावसे शायद ही कोई— गरीब हो या धनवान हो, लौकिक-जन हो या धार्मिकजन हो—अस्पृष्ट रहा होगा। अपने साथ सबको खींच जाते उन झंझावातके समान आन्दोलनोंके बीच भी गुरुदेव मेरुके समान अडिग रहकर निज अन्तर्मुख

जीवनमें निरन्तर खड़े थे। 'इस एक भवके सुखाभासके लिये कल्पित व्यर्थ प्रयत्न करनेसे क्या लाभ? मुझे तो एक भवमें अनन्त भवोंका नाश करना है'—ऐसे भावसे तब भी वे अन्तर्मुख जीवनमें अत्यन्त लीन रहे।

※ आदर्श जीवन ※

सम्प्रदायके साधुके रूपमें गुरुदेवकी जिस गाँवमें स्थिति होती वहां मैं सुरतसे अवकाशके दिनोंमें दर्शनके हेतु जाता था। तब मैं उन्हें शान्त एकान्त कमरेमें आँखें बन्द कर गम्भीरतासे तत्त्वविचारमें बैठे हुए देखूं, पासमें शास्त्र पड़ा हो, आँखे खुलते ही मेरे पर नजर पड़ते 'उपयोग उपयोगमें है, क्रोध क्रोधमें है' ऐसे कुछ वचन निकलते। इस तरह निज प्रयत्नमें लीन गुरुदेवके प्रेरक दर्शन होते ही मुझे हृदयमें गहरी चोट लगती: "वाह! यह सच्चा जीवन है। हम तो जीवनको गँवाते हैं; मैं सुरतमें क्यों बैठा हूँ? श्रीमद्जी कहते हैं कि 'एक सत्पुरुषको खोजकर उनके चरणकमलमें सर्वभाव अर्पण करके वर्तता रह, फिर यदि मोक्ष न मिले तो मेरे पाससे लेना।' और वे कहते हैं: 'एक सत्पुरुषको प्रसन्न करनेमें, उनकी सर्व इच्छाओंको सराहनेमें, इन्हें ही सत्य माननेमें सारी जिन्दगी बीती तो उत्कृष्ट पन्द्रह भवमें अवश्य मोक्ष जायेगा।' ऐसा साधन प्रत्यक्ष है तो फिर सुरतमें क्यों धनके लिये पड़ा हूं?" ऐसे विचार आते और निवृत्तिकी भावना होती। 'कैसा यह निवृत्तिमय आत्माभिमुख उद्यम? कैसा यह ध्येयको समर्पित उत्तम जीवन? कहाँ तो यह पवित्र जीवन और कहां हमारा जीवन?' इस प्रकार अभी भी गुरुदेव कभी कभी प्रेरणा दे रहे हैं।

※ अनुभूतिमार्गके प्रणेता ※

जिस प्रकार श्री प्रवचनसारमें आचार्यभगवानने घोषित किया है

कि 'श्रामण्य अंगीकार करनेका जो यथानुभूत मार्ग उसके प्रणेता हम यह खडे हैं' उसी प्रकार अध्यात्मयुगस्रष्टा गुरुदेवका भी अत्यन्त दृढ सिंहनाद था कि 'हम अनुभव करके कहते हैं कि भवनाशक सुधास्यन्दी अनुभूतिका मार्ग ही मोक्षका मार्ग है, क्योंकि वह अंशतः मुक्ति ही है; उस बीजसे परिपूर्ण मुक्तिरूप वृक्ष अवश्यमेव फलेगा। अतः तुम निर्भयतासे इस मार्गपर चले आओ।'

※ अक्षीण महानस ऋद्धिधर आत्मद्रव्य ※

गुरुदेवने सम्यग्ज्ञानपरिणतिरूप परिणमन करके देखा कि—इस विश्वमें समस्त द्रव्य स्वयंसिद्ध हैं, वे प्रत्येक समयमें स्वतंत्ररूपसे अपना कार्य स्वयं ही कर रहे हैं, दूसरे द्रव्य उनका कुछ नहीं कर सकते। आत्मद्रव्य भी प्रत्येक समयमें स्वतंत्ररूपसे परिणमन करके अपनी अवस्था आप ही कर रहा है और अपनी विकारी या अपूर्ण अवस्थाके समयमें भी सामर्थ्य-अपेक्षासे तो वह सदा ही परिपूर्ण रहा है—मानों कि 'अक्षीण महानस ऋद्धिधर' हो। भगवान आत्मा कभी भी न खुटे ऐसा अमृतभोजनका अक्षय महाभण्डार है. 'अक्षीण महानस' है।. अथवा वह पावनमूर्ति 'महानल' है, जिसके दर्शनरूप एक ही चिनगारी प्रगट होते वह क्रमशः सभी दोषोंको जला देनेवाले महानलके रूपमें व्यक्ततया प्रज्वलित होता है।

जिस प्रकार आत्मपदार्थ आनन्दामृतमय 'अक्षीण महानस' है, सर्वदोषदाहक 'महानल' है, वैसे ही वह सर्वज्ञस्वभावी 'महाप्रकाश' है—जो सिर्फ आँखके छिद्रोंसे देखे, कानके छिद्रोंसे सुने और जिह्वारूप चमड़ेके टुकड़ेसे आस्वाद ले ऐसा तुच्छ पदार्थ नहीं है, परंतु स्वयं परिपूर्ण दर्शनात्मक, स्वयं परिपूर्णश्रवणात्मक और स्वयं परिपूर्णस्वादनात्मक चमत्कारिक महापदार्थ है—ऐसा गुरुदेवने अन्तरमें अनुभव करके, उन्होंने

जगत समक्ष निर्भयतासे, निःशंकतासे, परम उल्लाससे यह बात रखी कि हे जीवो! जिनेन्द्रभगवन्तों द्वारा कहा हुआ, अनुभवियों द्वारा अनुभूत, मोक्षका मार्ग वह इस 'महाप्रकाश'की अनुभूतिमें रहा है। अहो यह 'महाप्रकाश'! इस महाप्रकाशके दर्शनमें, उसके आश्रयमें, दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, प्रत्याख्यान, प्रतिक्रमण, व्रत, समिति, गुप्ति आदि सर्व भाव समाविष्ट हैं।

सम्यग्ज्ञानपरिणतिमें ज्ञात हुए उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित, निश्चय-व्यवहार इत्यादि अनेक भावोंके सम्यक् स्वरूपनिरूपण द्वारा गुरुदेवने अनेक सत्योंका उद्घाटन किया जो जैन दर्शनमें थे तो सही, परन्तु उनके उपर आवरण आ गया था। अन्तरका सच्चा मोक्षमार्ग लुप्तप्राय हो गया था। प्रायः सर्वत्र मात्र बाह्य क्रियाको और शास्त्रोंको रट लेनेकी रूढिको ही लोग मोक्षमार्ग मानते थे। गुरुदेवने अन्दर महाप्रकाश देखकर, मोक्षमार्गमें छा गये कूडे-कचरोंको दूर करके जिनशासनगृहमें जो जाले लग गये थे उन्हें साफ करके परम तेजस्वी जिनेन्द्रशासनको—जो कि निस्तेज हो गया था उसको—पुनः तेजस्वी किया, महावीर भगवानके शासनको प्राणवन्त किया। अपन भक्तिमें गाते हैं न!—

एवा कंईक प्रभावथी, गगनथी ओ क्हान! तुं ऊतरे,
अंधारे डूबता अखण्ड सत्‌ने तुं प्राणवंतुं करे।
जेनो जन्म थता सहु जगतनां पाखण्ड पाछां पडे,
जेनो जन्म थतां मुमुक्षुहृदयो उल्लासथी विकसे;
जेना ज्ञानकटाक्षथी उदय ने चैतन्य जुदां पडे,
इंद्रो ए जिनसुतना जनमने आनन्दथी ऊजवे।

'यह मैं परिपूर्ण ज्ञाता हूँ, विभावका सब मैल मुझसे भिन्न है —ऐसे निर्णयका पुरुषार्थ करके, ऐसा भावभासन उत्पन्न करके, ज्ञान-

सामान्यके प्रति जोर लाकर, ज्ञानकटाक्षके द्वारा उदय और चैतन्य भिन्न होते हैं, अन्तरमें परम आह्लादका संवेदन होता है—ऐसा उन्होंने अनुभव किया। ऐसी वस्तुका और ऐसे स्वानुभूत मार्गका बोध उन्होंने जगतको दिया, आत्मार्थियोंको सच्चा मार्ग बताया।

ऐसे परमोपकारी गुरुदेवने हमारे ऊपर अपार उपकार किया है, –जिसके विना, एक बुदबुद जैसा पानीके बुल्ले जैसा—यह मनुष्यभव निष्फल चला जाता—कुछ भी कल्याण किये विना, बुलबुलेके समान फूट जाता। हम ध्येयलक्षी–साध्यलक्षी जीवनकी यत्किंचित् प्रेरणा प्राप्त करके सब योग्यतानुसार जो कुछ पुरुषार्थ–प्रयत्न कर रहे हैं, वह सब परम कृपालु गुरुदेवकी देन है। उन्हें कुछ भी स्वार्थ नहीं था, मात्र स्वयं जो आनन्दभोजन जीमते थे उसकी रसीली बात आनन्दसे बाहर रखते थे।

※ जैसी अनुभूति वैसी ही वाणी ※

गुरुदेवका हृदय स्फटिक जैसा निर्मल और उनकी स्वानुभवमुद्रित वाणी वज्र जैसी जोरदार थी, इसलिये उनके प्रवचन श्रोताओंके हृदयको स्पर्श कर जाते थे। कई व्यक्ति तो विरोध करनेके लिये आते थे परन्तु प्रवचन सुनकर शांत हो जाते और भक्त बनकर लौटते थे। गुरुदेव प्रतिपाद्य सिद्धान्तोंको युक्तिपूर्वक समजाते, पूर्वाचार्योंकी साक्षी देते और उसके ऊपर अपने अनुभवकी मुहर लगाते थे। किसीको आत्माके अस्तित्वकी ही शंका हो, तो "अरे भाई! 'मै नहीं हूँ,' 'मै नहीं हूँ' ऐसा भाव किस भूमिमें उत्पन्न होता है, वह तो देखो! वह भूमि ही आत्मा है।" —ऐसी स्वानुभवगर्भित युक्ति गुरुदेव देते थे जो उसे विचारमग्न कर देती थी। 'आत्मा हाथ क्यों नहीं हिला सकता?' ऐसी शंका करनेवालेको गुरुदेव "आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत् करोति किं। परभावस्य कर्तात्मा मोहोऽयं व्यवहारिणाम्॥" ऐसी आचार्यदेवकी साक्षीयुक्त स्वानुभवगर्भित युक्ति देते थे जो प्रायः शंकाकारके हृदयको स्पर्श कर

जाती। उपरोक्त श्लोक गुरुदेवको प्रिय था और वह धार्मिक शिक्षणवर्गोंमें बहुत वर्षों तक मंगलाचरणरूपमें बोला जाता था। जिस प्रकार गुरुदेवकी अनुभूति और ज्ञान अद्भुत थे। उसी प्रकार उनकी वाणी सचोट, मधुर एवं रसपूर्ण थी।

❊ विविध उपकार ❊

ऐसे पवित्र ज्ञानावतार पुरुष कि जिन्होंने इस कालमें आवरणस्थितिको प्राप्त सम्यग्दर्शन एवं उसके आलम्बनभूत ज्ञायक भगवानकी परम महिमा खुल्ली करके जगतमें उसकी भेरी बजाई वे पवित्र पुरुष हमारे जीवनशिल्पी हैं। उनके प्रत्यक्ष उपदेश द्वारा, उनकी टेइप-अवतीर्ण वाणी द्वारा तथा उनके पुस्तकारूढ प्रवचनोंके द्वारा उनका हमारे ऊपर अपार उपकार वर्त रहा है। तदुपरांत, वे अपने जीवन द्वारा भी, प्रतीति एवं भावनाके साथ ओतप्रोत वर्तनेवाली साधककी सम्यक् जीवनपद्धतिका मूक उपदेश दे रहे थे, इसलिये उनके जीवनका भी—उनके प्रत्यक्ष समागमका भी—हमारे ऊपर अथाह उपकार वर्त रहा है। वे 'ज्ञायक, ज्ञायक, मैं त्रिकालशुद्ध ज्ञायक हूँ' ऐसी सानुभव प्रतीतिसे निरंतर परिणमित हो रहे थे, तोभी साथ साथ 'मुझे कब मुनिदशा प्राप्त हो, मैं कब सिद्धदशाको प्राप्त करूँ'—ऐसी भावना भी उनको सदा रहती थी। ऐसी ही प्रत्येक साधककी जीवन-कला होती है। श्रीमद् राजचन्द्रजी भी, एक ओरसे 'जिसको केवलज्ञान भी नहीं चाहिये, उसे परमेश्वर अब कौनसा पद देंगे?' ऐसा कहकर आत्माके त्रिकाल मुक्तत्वकी प्रतीति व्यक्त करते थे, तो दूसरी ओरसे 'क्यारे थईशुं बाह्यांतर निर्ग्रंथ जो' तथा 'प्रभुआज्ञाए थाशुं ते ज स्वरूप जो' इस प्रकार मुनिपद तथा सिद्धपदकी भावना भी भाते थे। गुरुदेवने अपने पवित्र जीवन द्वारा साधककी ऐसी सम्यक् जीवनकलाका दिग्दर्शन कराकर हम पर अपार उपकार किया है।

* ज्ञायकोपासक गुरुदेव *

पूज्य गुरुदेवका अन्तर सदा 'ज्ञायक-ज्ञायक, ध्रुव-ध्रुव-ध्रुव, शुद्ध-शुद्ध-शुद्ध, परमपारिणामिकभाव' इस तरह त्रैकालिक ज्ञायकके आलम्बनरूप निरन्तर—जागृतिमें या निद्रामें—परिणमित हो रहा था। श्री समयसार, नियमसार वगैरह शास्त्रों पर प्रवचन करते हुए या चर्चावार्ताके अनुसंधानमें वे ज्ञायकस्वरूपका और उसकी महिमाका मधुर संगीत गाते ही रहते थे। अहा! वे स्वतन्त्रता और ज्ञायकके उपासक गुरुदेव! उन्होंने मोक्षार्थियोंको मुक्तिकी सच्ची राह दिखायी।

ज्ञायक तणी वार्ता करे, ज्ञायक तणी दृष्टि धरे,
निजदेह-अणुअणुमां अहो! ज्ञातृत्वरस भावे भरे;
ज्ञायक मही तन्मय बनी ज्ञातृत्वने फेलावतो,
काया अने वाणी-हृदय ज्ञातृत्वमां रेलावतो!

—ऐसे ज्ञायकोपासक थे हमारे गुरुदेव।

* अनेकांत सुसंगत सधिबद्ध जीवन *

वे द्रव्य-अपेक्षासे 'सिद्धसमान सदा पद मेरो' ऐसा अनुभव करते थे तोभी पर्याय-अपेक्षासे 'हम कब सिद्धपना प्रकट करेंगे'—ऐसी भावना भी भाते थे। सिद्धपनेकी तो क्या परन्तु संयमकी भावनारूप भी वे परिणमते थे। 'कल्पवृक्ष सम संयम केरी अति शीतल ज्यां छायाजी, चरणकरण गुणधार महामुनि मधुकर मन लोभाया जी' इस प्रकार अनेकवार भावविभोर होकर ललकारते हुये प्रवचनमें विविध प्रकारसे संयमकी भावना करते गुरुदेवकी पावन मूर्ति मेरी दृष्टि समक्ष तैरती है।

'सिद्धसमान अपनेको पूर्ण शुद्ध देखे—माने तोभी क्या संयमकी भावना भावे?' हाँ, शक्ति-अपेक्षासे परिपूर्ण शुद्ध अपनेको देखते—मानते हुये भी व्यक्ति-अपेक्षासे शुद्ध होनेकी ज्ञानीको भावना अवश्य होती है।

गुरुदेव ऐसी शास्त्रोक्त यथार्थ संधिबद्ध सम्यक् परिणतिरूप परिणमित हो रहे थे। वास्तवमें तो शुद्धस्वरूपके द्रष्टा सम्यग्दृष्टि जीवको ही संयमकी सच्ची भावना होती है, क्योंकि वह संयम-परिणतिका सच्चा स्वरूप जानता है। मिथ्यादृष्टिको संयमकी सच्ची भावना होती ही नहीं, क्योंकि उसे सच्चे संयमका ज्ञान नहीं है।

'बहिनश्रीके वचनामृत' ३८०वें बोलमें कहा है कि :—'जिस प्रकार सुवर्णको जंग नहीं लगता, अग्निको दीमक नहीं लगती उसी प्रकार ज्ञायक-स्वभावमें आवरण, न्यूनता या अशुद्धि नहीं आती।' जिस प्रकार पूज्य गुरुदेव शक्ति-अपेक्षाका यह बोल बारबार उल्लाससे याद करते थे, वैसे ही व्यक्ति-अपेक्षाका, सिद्धत्व प्राप्त करनेकी भावनाका ४०१ वां बोल भी अनेक वार उल्लसितभावसे याद करके प्रसन्नतासे कहते थे :—देखो, बहिन कैसी भावना भाती हैं? 'यह विभावभाव हमारा देश नहीं है। इस परदेशमें हम कहां आ पहुंचे?.. अब हम स्वरूप-स्वदेशकी ओर जा रहे हैं। हमें त्वरासे हमारे मूल वतनमें जाकर आरामसे बसना है, जहाँ सब हमारे हैं।'

ऐसा अनेकांतसुसंगत यथार्थ संधिवाला गुरुदेवका जीवन आज भी हमें सच्चा मार्ग दिखा रहा है। वह पवित्र जीवन हमें किन्हीं भी शुभभावोंमें संतुष्ट न होकर ध्रुवतत्त्वके आलम्बनके पुरुषार्थकी मौन प्रेरणा दे रहा है; तथा इसके अतिरिक्त 'मैं ध्रुव हूँ' ऐसी दृढताके साथ साथ 'हम हमारे मूल वतनमें जानेके लिये तरसते हैं' ऐसी आर्द्रता भी रहनी चाहिये, नहीं तो 'ध्रुवतत्त्व'की समझके प्रकारमें ही कुछ भूल है ऐसी चेतावनी देकर, प्रकाशस्तंभरूप रहकर, हमारी जीवननौकाको चट्टानी मार्गसे बचाकर, हमें सच्चे मार्ग पर ले जाता है। गुरुदेवका पवित्र जीवन इस प्रकार हमें परोक्षरूपसे भी परम उपकारक हो रहा है।

* उपकृतभावसे वन्दना और भावना *

तदुपरान्त गुरुदेवके टेइप-प्रवचन तो मानों कि गुरुदेव प्रत्यक्षरूपसे करुणापूर्वक उपदेश दे रहे हों ऐसा भाव उत्पन्न करके मुमुक्षु हृदयोंको तृप्त-तृप्त करते हैं। और किन्हीं अंशोंमें गुरुदेवके विरहको भूलाते हैं। गुरुदेवके पुस्तकारूढ प्रवचन भी हमें सम्यक् वस्तुस्वरूप समझनेमें और निज कल्याण कर लेनेकी प्रेरणा प्राप्त करनेमें अत्यंत उपकारक होते हैं।

ऐसा पवित्र सम्यग्दर्शनज्ञानपरिणत जीवन जीनेवाले, नीडरपना, निःस्पृहता, जगतके मानापमानके प्रति औदासीन्य, ध्येयनिष्ठा, वैराग्य, सहृदयता, निजहितनिरतनिवृत्ति प्रधानता इत्यादि अनेक गुणगणसे अलंकृत गुरुदेवश्रीका हमारे उपर अवर्णनीय उपकार है। उनके प्रेरणादायी आत्माभिमुख पुरुषार्थी जीवनके प्रत्यक्ष परिचयसे एवं उनकी भावभीनी, स्वानुभूतिके जोरवाली, सम्यक्तत्त्वका उपदेश देनेवाली वज्रवाणीसे हमारे जीवन बने हैं। उन्होंने देनेमें तो कुछ भी बाकी नहीं रखा है। अब पुरुषार्थ तो हमें करना है। उनके द्वारा दिखाई हुई शुद्ध परिणतिके पुरुषार्थकी भावना हमारे हृदयमें कभी गौण न हो, केवल शुभभावपरिणत जीवनमें हम कभी संतुष्ट न हो जांय, भवभ्रमणको छेदनेकी खटक हंमेशा हमारे हृदयमें बनी रहे, तब ही सत्पुरुषकी आज्ञाके अनुसार हम चलते हैं ऐसा कहा जायेगा। शुद्धताकी प्राप्तिका उद्यम करते ही रहें तब ही अति दुर्लभ ऐसा सत्पुरुष-योग सार्थक हुआ माना जायगा। जिस प्रकार परिपूर्ण शुद्धपरिणतिरूप परिणत जिनभगवानकी निश्चयभक्ति आंशिकरूपसे शुद्धपरिणतिमें परिणमना वही है, वैसे यथायोग्य पवित्र परिणतिमें परिणत गुरुदेवकी निश्चयभक्ति भी उस पवित्र परिणतिका अंश हमारे अंतरमें प्रकट करनेमें है। उस निश्चय-भक्तिके पुरुषार्थकी भावनाके साथ आजके गुरुजन्मजयन्तीके दिन हम परमोपकारी परम पूज्य गुरुदेवके चरणकमलमें अत्यन्त उपकृतभावसे वन्दन करते हैं और उनके पवित्र जीवनके अवलोकनसे तथा उनके कल्याणकारी

उपदेशके चिंतनसे हम जीवनकी सम्यक् कला प्रकट करके अपने संसार-परिभ्रमणका अंत करें ऐसी भावना भाते हैं।

※ भक्तिभीनी नम्रभावना ※

ऐसे परमोपकारी गुरुदेवको आजके इस मंगलकारी प्रसंग पर हम किस प्रकारसे पूजें ? जो गुरुदेव निरन्तर ज्ञानप्रकाश फैला रहे हैं उनकी मणिरत्नोंके दीपकसे आरती उतारें तोभी इस उपकारभानुके आगे ये दीपक अत्यन्त निस्तेज लगते हैं; जो गुरुदेव अपनेको हमेशा आत्मिक सुधारसमें तराबोर कर रहे हैं उनका क्षीरसागरके नीरसे अभिषेक करें तो भी वह अभिषेक इस उपकारसागरके आगे एक बून्द मात्र भी नहीं लगता; और जो गुरुदेव मुक्तिफलदायक मोक्षमार्ग दिखा रहे हैं उनका कल्पवृक्षके फलसे पूजन करें तो भी उस उपकारमेरुके आगे तुच्छ लगता है। इस प्रकार दैवी सामग्रीसे पूजन करने पर भी भावना तृप्त नहीं होगी। परमोपकारी गुरुदेवके प्रति भक्तिभावना तब तृप्त होगी कि जब आत्मिक सामग्रीसे गुरुदेवका पूजन करें—जब आत्माके असंख्य प्रदेशमें केवलज्ञानके दीपक प्रगटाकर गुरुदेवकी आरती उतारें, आत्माके प्रदेश-प्रदेशमें सुखसिंधु उछालकर गुरुदेवका अभिषेक करें, आत्माके सर्व प्रदेशोंको सर्वथा मुक्त करके उस मुक्तिफलसे गुरुदेवका पूजन करें। ऐसी पूजा करनेका सामर्थ्य हमें प्राप्त न हो तब तक परम कृपालु गुरुदेव हमारा हाथ न छोडें और सदा सर्वदा उनके पास ही रखें ऐसी कृपासिंधु गुरुदेवके पास हमारी नम्र भावसे दीन याचना है।

※ मधुर मंगलमय जीवन ※

परमोपकारी गुरुदेवका जीवन पूर्णरूपेण मधुर और मंगलमय है। स्वाध्यायमन्दिरके उद्‌घाटनके अवसर पर एक भाईने 'मधुराष्टक' पद्यका भाव लेकर एक अपद्यागद्य गीत गाया था, जिसे सुनकर सब आनन्दित हुए थे। 'मधुराधिपति कानजीस्वामी अखिलः मधुरः।'—माधुर्यके

अधिपति, माधुर्यके स्वामी ऐसे कानजीस्वामी सारेही मधुर हैं इस मुख्य पंक्तिवाला वह गीत था। उसका अनुसरण करके एक अपद्यागद्य गीत गाकर मैं मेरा वक्तव्य समाप्त करूँगा।

मधुराधिपति कानजीस्वामी अखिलः मधुरः,
मधुराधिपति - गुरुदेवस्य सर्वं मधुरं।

आत्मा मधुरः, स्वानुभव मधुरः, वैराग्य मधुरं,
ज्ञानं मधुरं, दर्शन मधुरं, वर्तन मधुरं;
मधुराधिपति कानजीस्वामी अखिलः मधुरः,
मधुराधिपति - गुरुदेवस्य सर्वं मधुरं।

ज्ञायक मधुरः, लगनी मधुरा, वक्ता मधुरः,
पठनं मधुरं, मननं मधुर, ध्यानं मधुरं;
मधुराधिपति कानजीस्वामी अखिलः मधुरः,
मधुराधिपति - गुरुदेवस्य सर्वं मधुरं।

स्वर्णपुर मधुरं, मंदिर मधुरं, स्वाध्यायमंदिर मधुरं,
समवसरण मधुरं, मानस्तंभ मधुरः, परमागम मधुरं;
नंदीश्वर मधुरं, जिनवृंद मधुरं, तीर्थं मधुरं,
प्रवचन मधुरं, भक्ति मधुरा, चर्चा मधुरा;
मधुराधिपति कानजीस्वामी अखिलः मधुरः,
मधुराधिपति - गुरुदेवस्य सर्वं मधुरं।

रुचि रखना, रुचि ही काम करती है। पूज्य गुरुदेवने बहुत दिया है। वे अनेक प्रकारसे समझाते हैं। पूज्य गुरुदेवके वचनामृतोंके विचारका प्रयोग करना। रुचि बढ़ाते रहना। भेदज्ञान होनेमें तीक्ष्ण रुचि ही काम करती है। 'ज्ञायक', 'ज्ञायक', 'ज्ञायक'—उसीकी रुचि हो तो पुरुषार्थका झुकाव हुए बिना न रहे।

—बहिनश्री चम्पाबहिन

* हुकमचंदजी सेठके उद्‌गार *

जैन समाजका यह वेताज-बादशाह आज हमारे बीचमें नहीं है, किन्तु गुरुदेव संबंधी उनके उद्‌गार आज याद आते हैं। सर्वप्रथम स. २००१ में सोनगढ आये तब गुरुदेवका प्रवचन सुनते-सुनते आनन्दित होकर वे बोल उठे कि :—

"कुन्दकुन्द भगवानने तो शास्त्रोंमें सब कहा है किन्तु उसका रहस्य समझानेके लिये आपका जन्म है।" "सम्यग्दृष्टिके बिना कोई यह बात नहीं समझ सकता। मिथ्यादृष्टि—अज्ञानी जीव आपकी बात नहीं स्वीकार करता, सम्यग्दृष्टि जैसे जीव ही आपकी बात समझ सकते हैं। हमको बहुत आनन्द आता है।"

"अहो सभाजनों! आपका बडा भाग्य है कि आप सत्पुरुषके अध्यात्म-उपदेशका बड़ी रुचिसे नित्य लाभ ले रहे हैं; मैं तो तुच्छ आदमी हूं, आप तो बड़े भाग्यवान् हैं। हम तो अल्प लाभ ले सके हैं, तोभी हमारे आनन्दका क्या कहूं! यदि इस अध्यात्मज्ञानके लिये मेरा सब कुछ अर्पण किया जाय तोभी कम है।"

"महाराजजीका यह अद्‌भुत तत्त्वज्ञान तमाम दुनियामें सब भाषामें प्रचार होवे ऐसी हमारी भावना है। [पूज्य गुरुदेवके अभिनन्दनग्रंथसे]

तत्त्वके आदरमें सिद्धगति है और तत्त्वके अनादरमें निगोदगति है। सिद्धगतिमें जाते हुए बीचमें एक दो भव हों उनकी गिनती नहीं है, और निगोदमें जाते हुए बीचमें अमुक भव हों उनकी गिनती नहीं है, क्योंकि त्रसका काल थोड़ा है और निगोदका काल अनन्त है। तत्त्वके अनादरका फल निगोद-गति और आदरका फल सिद्धगति है। —पू. गुरुदेवश्री

जन्मशताब्दी-सुअवसर पर मुमुक्षुमण्डलोंके भाई-बहिनोंकी

सामूहिक अभिवन्दना

हे परमकृपालु गुरुदेव ! आपने लघुवयमें पूर्वोपार्जित धर्मसंस्कार जाग्रत करके, ज्ञान-वैराग्य-उपशमपूर्वक तत्त्वनिर्णयके बल द्वारा शुद्धात्माभिमुखताका सातिशय पुरूषार्थ करके सानुभव आत्मसाधना प्रगट की है, आपके सद्धर्मवृद्धिकर पावन प्रभावना-उदयसे देशविदेशमें हजारों धर्मपिपासु स्वानुभूतिप्रधान अध्यात्मधर्म समझनेकी ओर झुके हैं तथा उसमें प्रगति कर रहे हैं, आपश्रीकी चैतन्यस्पर्शी अनुभववाणीके वज्रप्रहार अन्तरके सच्चे आत्मार्थीको मिथ्यात्वके चूरेचूरा कर आत्मानुभूति प्राप्त कराती है, आपके पुनित प्रतापसे गाँव-गाँवमें मुमुक्षुमण्डल स्थापित हुए, स्वाध्याय-मन्दिर और जिनमन्दिर हुए, अध्यात्मतत्त्वप्रधान स्वाध्यायकी जगह जगह प्रवृत्ति चली;—इस तरह विविध प्रकारसे इस कालमें मुमुक्षुसमाजका नवसर्जन करके आपश्रीने एक असाधारण अध्यात्मयुगका सर्जन किया है; इसलिये अध्यात्मयुगस्रष्टा, परम–तारणहार परमोपकारी परमपूज्य हे कहान गुरुदेव ! आपश्रीके अनुपम असीम उपकारोंको हंमेशा हृदयोत्कीर्ण रखकर आपके चरणोंमें अत्यन्त भक्तिभावसे नमस्कार करके आजके जन्मशताब्दीके मंगल अवसर पर आपश्रीको पुनः पुनः अभिवन्दन करते हैं।

—सोनगढ, उमराळा, भावनगर, बोटाद, गढडा, वढवाण, सुरेन्द्रनगर, जोगवरनगर, लींबडी, राणपुर, लाठी, अमरेली, सावरकुंडला, कानातळाव, आंकडिया, वडिया, गोंडल, जेतपुर, पोरबन्दर, राजकोट, जामनगर, वांकानेर, मोरबी, चोटीला, अमदावाद, वडोदरा, मियांगाम, पालेज, सुरत, मुंबई, दादर, घाटकोपर, उपनगर (मलाड), हैदराबाद, बेंगलोर, मद्रास, जलगाम, मलकापुर, खण्डवा, सनावद, इन्दौर, उज्जैन, भोपाल, सागर, ललितपुर, दमोह, विदिशा, बीना, गुना, अशोकनगर, जबलपुर,

जन्मशताब्दी–विशेषांक
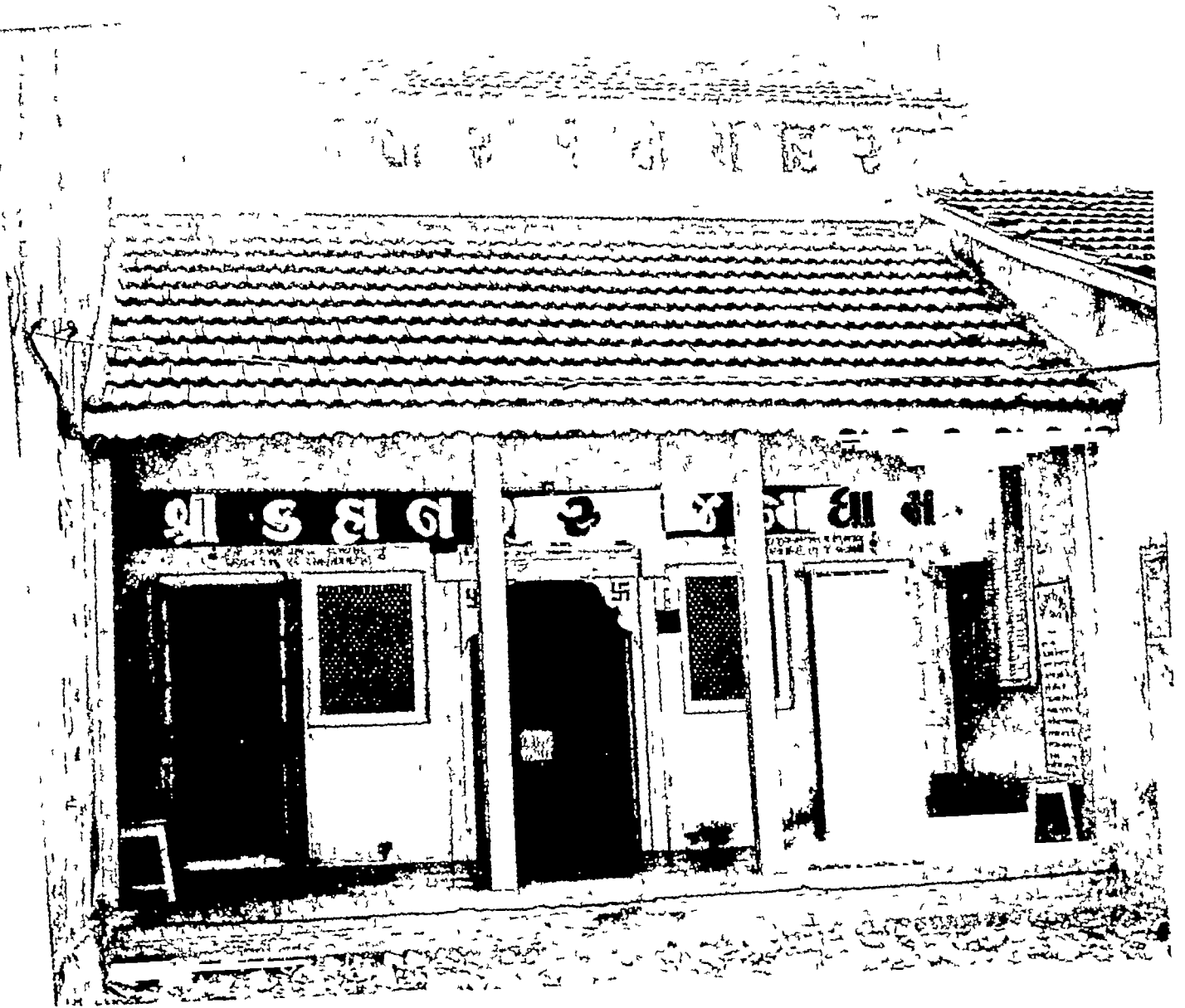
श्री कहानगुरु—जन्मधाम—उमराळा

*

उमराळामा जनमिया ऊजमबा—कूख—नद,
कहान तारु नाम छे, जग—उपकारी सत
मात—पिता—कुळ—जात सुधन्य अहो। गुरुराजना रे,
जेने आगण जन्म्या परमप्रतापी कहान,
जेने पारणियेथी लगनी निज कल्याणनी रे,
शासन—उद्धारक गुरु जन्मदिवस छे आजनो रे
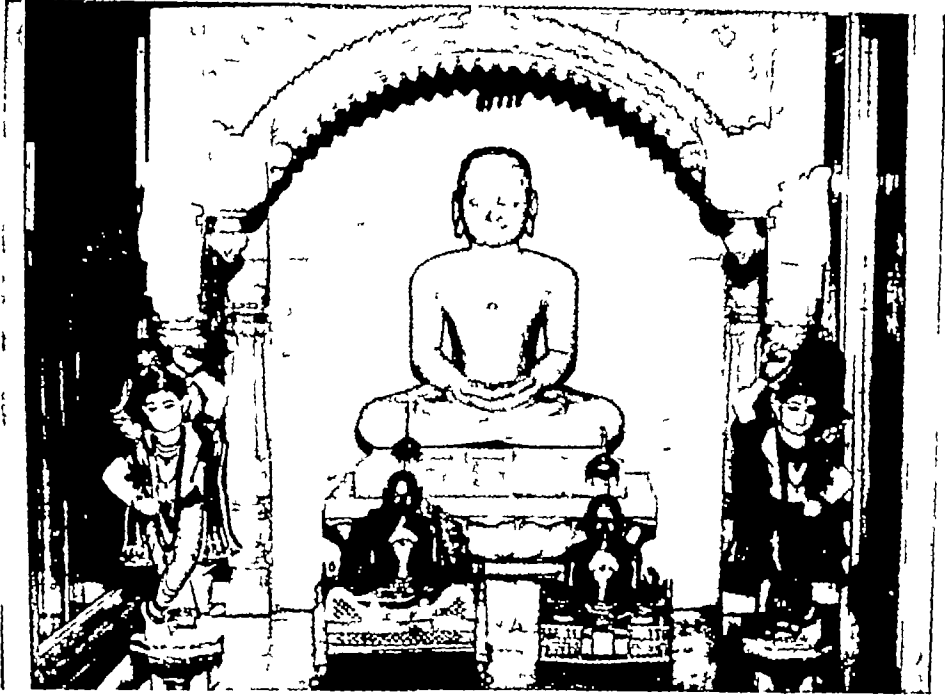
*

पू. गुरुदेव श्री कानजीस्वामी

* गुरुजन्मधाममां नवनिर्मित श्री सीमंधर—चैत्यालय *

*

सीमंधरा! नम तने शिर नामी नामी!

* कहानगुरु—जन्मस्थळ पर स्वस्तिक—अंकित भव्य कमळ *

*

तुज पादपंकज ज्यां थया ते देशने पण धन्य छे,
अे गाम—पुरने धन्य छे, अे मात कुळ ज वंद्य छे
तारां कर्यां दर्शन अरे! ते लोक पण कृतपुण्य छे,
तुज पादथी स्पर्शाइ अेवी धूलिने पण धन्य छे

*

जन्मशताब्दी–विशेषांक

* गुरुदेव द्वारा 'ॐकार' लेखन *

*

विदेहक्षेत्रमा सीमंधरनाथनी दिव्यध्वनिनु श्रवण करीने
भरतक्षेत्रे पधारेला कहान–गुरुदेवना ह्रदयमा नितपत
वर्ते छे
'ॐकार' केरो वास

*

जन्मशताब्दी–विशेषांक

कहानगुरु–जन्मशताब्दी अवसरे
आदरणीय प श्री हिंमतलालभाइ जे शाह, ट्रस्टीओ तथा कार्यकरोनी
भक्तिभावभीनी कोटि कोटि वंदना
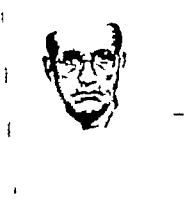
(१) श्री आनदभाइ जसाणी, (२) प श्री हिमतलालभाइ शाह, (३) श्री हसमुखभाइ वोरा, (४) श्री चीमनलालभाइ मोदी, (५) स्व श्री व्रजलालभाइ शाह, (६) डॉ प्रवीणभाइ दोशी, (७) श्री हीरालालजी काला, (८) ब्र चदुभाइ झोबाळिया, (९) श्री शशिकान्तभाइ शेठ, (१०) श्री हीरालालभाइ शाह, (११) श्री जितेन्द्रभाइ शाह, (१२) श्री प्राणलालभाइ कामदार, (१३) श्री पवनकुमारजी जैन, (१४) ब्र व्रजलालभाइ शाह, (१५) श्री धीरजलालभाइ बोरडिया

शिवनी, उदयपुर, कोटा, जयपुर, कलकत्ता, दिल्ली, सहारनपुर, रांची, कानपुर, बुलन्दशहर, आकोला, राघवगढ, खेरागढ, नागपुर, दहेगाम, रखियाल, फतेपुर, हिंमतनगर, रणासण, नाइरोबी, मोम्बासा, लण्डन, सिकंदराबाद, कोचीन, देहराडून

—इत्यादि शताधिक देशविदेशवासी सर्व मुमुक्षुमण्डलके भाई-बहिन।

—०—

* सकळ मुमुक्षुगणकी भक्तिवंदना *

(१)

गम्भीर तारी वाणीमां भावार्थ बहु ऊंडा छतां,
जे हृदय तारूं जाणता ते भाव तारो खेंचता।
तुज वदन-कमळेथी वहे उपदेशना अमृत अहो!
अध्यात्म-अमृत-पानथी वारी जता कोटी जनो।
उपकार तारा शुं कथुं? गुणगान तारां शुं करूं?
वन्दन करूं, स्तवना करूं, तुज चरणसेवाने चहूं।

(२)

पावन-मधुर-अद्भुत अहो! तुज वदनथी अमृत झर्यां,
श्रवणो मळ्यां सद्भाग्यथी, नित्ये अहो! चिद्रसभर्यां;
गुरुकहान तारणहारथी आत्मार्थी भवसागर तर्या,
भव भव रहो अम आत्मने सांनिध्य आवा संतनां.

(३)

गणनातीत गुरु-उपकार मुज अणु-अणुए रे,
शब्दोथी केम कथाय, नमुं नमुं भावे रे;
देव-गुरु तणो वसवाट सदा मुज दिलमां रे,
शिवपद तक रहुं तुम दास—भावुं उरमां रे.

—०—

आजे भरतभूमिमां....

(राग मारा मन्दिरियामा त्रिशलानन्द)

आजे भरतभूमिमां सोना-सूरज ऊगियो रे;
मारा अंतरिये आनन्द अहो! ऊभराय,
शासन-उद्धारक गुरु जन्मदिवस छे आजनो रे;
गुरुवर-गुणमहिमाने गगने देवो गाय,
विधविध रत्नोथी वधावुं हुं गुरुराजने रे. आजे० १.

(साखी)

उमराळामां जनमिया ऊजमबा-कूख-नन्द;
कहान तारुं नाम छे, जग-उपकारी संत.

मात-पिता-कुळ-जात सुधन्य अहो! गुरुराजनां रे;
जेने आंगण जन्म्या परमप्रतापी कहान,
जेने पारणियेथी लगनी निज कल्याणनी रे. आजे० २.

(साखी)

'शिवरमणी रमनार तुं, तुं ही देवनो देव;'
जाग्या आतमशक्तिना भणकारा स्वयमेव.

परमप्रतापी गुरुए अपूर्व सतने शोधियुं रे;
भगवत्कुन्दकुन्दपीश्वर चरण-उपासक सन्त,
अद्भुत धर्मधुरंधर धोरी भरते जागिया रे. आजे० ३.

(साखी)

वैरागी धीरवीर ने अन्तरमांही उदास;
त्याग ग्रह्यो निर्वेदथी, तजी तनडानी आश.

वन्दुं सत्य-गवेषक गुणवन्ता गुरुराजने रे;
जेने अन्तर उलस्यां आतम तणां निधान,
अनुपम ज्ञान तणा अवतार पधार्या आंगणे रे आजे० ४.

(साखी)

ज्ञानभानु प्रकाशियो,झळक्यो भरत मोझार,
सागर अनुभवज्ञाननो रेलाव्यो गुरुराज.

महिमा तुज गुणनो हुं शुं कहुं मुखथी साहिबा रे;
दु:षमकाळे वरस्यो अमृतनो वरसाद,
जयजयकार जगतमां कहानगुरुनो गाजतो रे. आजे० ५.

(साखी)

अध्यातमना राजवी, तारणतरण जहाज;
शिवमारगने साधीने कीधां आतमकाज.

तारा जन्मे तो हलाव्युं आखा हिन्दने रे;
पंचमकाळे तारो अजोड छे अवतार,
सारा भरते महिमा अखण्ड तुज व्यापी रह्यो रे. आजे० ६.

(साखी)

सद्‌दृष्टि, स्वानुभूति, परिणति मंगलकार;
सत्य पन्थ प्रकाशता, वाणी अमीरसधार.

गुरुवर-वदनकमळथी चैतन्यरस वरसी रह्या रे;
जेमां छाई रह्या छे मुक्ति केरा मार्ग,
एवी दिव्य विभूति गुरुजी अहो ! अम आंगणे रे. आजे० ७.

(साखी)

शासननायक वीरना नन्दन रूडा कहान;
ऊछळ्या सागर श्रुतना, गुरु-आतम मोझार.

पूर्वे सीमंधरजिन-भक्त सुमंगल राजवी रे;
भरते ज्ञानी अलौकिक गुणधारी भडवीर,
शासन-संतशिरोमणि स्वर्णपुरे विराजता रे. आजे० ८.

(साखी)

सेवा पदपंकज तणी नित्य चहुं गुरुराज !
तारी शीतळ छांयमां करीए आतमकाज

तारा जन्मे गगने देवदुंदुभि वागियां रे;
तारा गुणगणनो महिमा छे अपरंपार,
गुरुजी रत्नचिंतामणि शिवसुखना दातार छो रे;
तारां पुनित चरणथी अवनी आजे शोभती रे. आजे० ९.

—०—

अहो ! देव-शास्त्र-गुरु मंगल हैं, उपकारी हैं। हमें तो देव-शास्त्र-गुरुका दासत्व चाहिये।

पूज्य कहानगुरुदेवसे तो मुक्तिका मार्ग मिला है। उन्होंने चारों ओरसे मुक्तिका मार्ग प्रकाशित किया है। गुरुदेवका अपार उपकार है। वह उपकार कैसे भूला जाय?

गुरुदेवका द्रव्य तो अलौकिक है। उनका श्रुतज्ञान और वाणी आश्चर्यकारी है।

परम-उपकारी गुरुदेवका द्रव्य मंगल है, उनकी अमृतमयी वाणी मंगल है। वे मंगलमूर्ति हैं, भवोदधितारणहार हैं, महिमावन्त गुणोंसे भरपूर हैं।

पूज्य गुरुदेवके चरणकमलकी भक्ति और उनका दासत्व निरन्तर हो। —बहिनश्री चम्पाबहिन

कहानगुरु-जन्मशताब्दीके मंगल अवसर पर

(पंचमेरु-नन्दीश्वरजिनालयमें उत्कीर्ण)

'गुरुदेवश्रीके वचनामृत' से चुना गया

* वचनामृतशतक *

पूर्णताके लक्षसे शुरुआत ही सच्ची शुरुआत है। १.

*

निश्चयदृष्टिसे प्रत्येक जीव परमात्मस्वरूप ही है। जिनवर और जीवमें अन्तर नहीं है। भले ही वह एकेन्द्रियका जीव हो या स्वर्गका जीव हो। वह सब तो पर्यायमें है। आत्मवस्तु स्वरूपसे तो परमात्मा ही है। पर्यायके ऊपरसे हटकर जिसकी दृष्टि स्वरूपके ऊपर गई है वह तो अपनेको भी परमात्मस्वरूप देखता है और प्रत्येक जीवको भी परमात्मस्वरूप देखता है। सम्यग्दृष्टि सर्व जीवोंको जिनवर जानता है और जिनवरको जीव जानता है। अहा! कितनी विशाल दृष्टि! अरे, यह बात बैठ जाये तो कल्याण हो जाये; परन्तु ऐसी स्वीकृतिको रोकनेवाले मिथ्या मान्यतारूपी गढ़ोंका पार नहीं है। यहाँ तो कहते हैं कि बारह अंगका सार यह है कि आत्माको जिनवर समान दृष्टिमें लेना, क्योंकि आत्माका स्वरूप परमात्मा जैसा ही है। २.

*

चमड़ा उतारकर जूते बनवा दे तथापि जिस उपकारका बदला न दिया जा सके ऐसा उपकार गुरु आदिका होता है। उसके बदले उनके उपकारका लोप करे वह तो अनन्त संसारी है। जिसके पास श्रवण किया जाये इसका भी जिसे विवेक नहीं है वह आत्माको समझनेके योग्य नहीं

है—पात्र नहीं है। जिनके लौकिक न्याय नीतिका भी ठिकाना नहीं है ऐसे जीव शास्त्रोंका प्रवचन करें और उसे जो सुनने जायें वे श्रोता भी पात्र नहीं हैं। ३.

*

आत्माका प्रयोजन सुख है। प्रत्येक जीव सुख चाहता है और सुखके लिये झूरता है। हे जीव! तेरे आत्मामें सुख नामकी शक्ति होनेसे आत्मा ही सच्चे सुखरूप होता है। आत्माका सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र—यह तीनों सुखरूप हैं। आत्माका धर्म सुखरूप है, दुःखरूप नहीं है। हे जीव! तुझे अपनी सुखशक्तिमेंसे ही सुख प्राप्त होगा, अन्यत्र कहींसे तुझे सुखकी प्राप्ति नहीं होगी; क्योंकि तू जहाँ है वहीं तेरा सुख है। तेरी सुखशक्ति ऐसी है कि जहाँ दुःख कभी प्रवेश ही नहीं कर सकता; इसलिये आत्मामें डुबकी लगाकर अपनी सुखशक्तिको उल्लसित कर —उल्लसित कर!! अर्थात् पर्यायमें परिणमित कर, जिससे तुझे अपने सुखका प्रगट अनुभव होगा। ४.

*

मैं एक अखण्ड ज्ञायकमूर्ति हूँ, विकल्पका एक अंश भी मेरा नहीं है—ऐसा स्वाश्रयभाव रहे वह मुक्तिका कारण है; और विकल्पका एक अंश भी मुझे आश्रयरूप है—ऐसा पराश्रयभाव रहे वह बन्धका कारण है। ५.

*

प्रश्न :—जिस प्रकार स्वद्रव्य आदरणीय है, उसी प्रकार उसकी भावनारूप निर्मल पर्याय आदरणीय कही जाती है?

उत्तर :—हाँ; राग हेय है उसकी अपेक्षासे निर्मल पर्यायको आदरणीय कहा जाता है; और द्रव्यकी अपेक्षासे पर्याय वह व्यवहार है वह आश्रय-

योग्य नहीं होनेसे हेय कही जाती है। क्षायिकपर्याय भी द्रव्यकी अपेक्षासे हेय कही जाती है, किन्तु रागकी अपेक्षासे क्षायिकभावको आदरणीय कहा जाता है। ६.

*

मोक्षमार्गमें व्यवहारका अस्तित्व है किन्तु उसका आश्रय नहीं है। साधककी पर्यायमें राग होता है परन्तु साधकपना उसके आश्रयसे नहीं है। धर्मीको भूमिकानुसार राग होता है किन्तु राग स्वयं धर्म नहीं है। धर्मीको शुभरागका व्यवहार होता है किन्तु उसके आश्रयसे वे लाभ नहीं मानते। जिसके सच्चा व्यवहार है उसे व्यवहारकी रुचि नहीं होती और जिसे व्यवहारकी रुचि है उसके सच्चा व्यवहार नहीं होता। जिसे दुःखका यथार्थ ज्ञान हो उसे अकेला दुःख नहीं होता और जिसके अकेला दुःख है उसे उसका यथार्थ ज्ञान नहीं होता। सच्चे पुरुषार्थीको अनन्त भवकी शंका नहीं होती और अनन्त भवकी शंकावालेको सच्चा पुरुषार्थ नहीं होता। सर्वज्ञको जो पहिचानता है उसके अनन्त भव नहीं होते तथा सर्वज्ञने उसके अनन्त भव देखे नहीं हैं। ७.

*

अति अल्प कालमें जिसे संसारपरिभ्रमणसे मुक्त होना है ऐसे अति-आसन्न भव्य जीवको निज परमात्माके सिवा अन्य कुछ उपादेय नहीं है। जिसमें कर्मकी कोई अपेक्षा नहीं है ऐसा जो अपना शुद्धपरमात्मतत्त्व उसका आश्रय करनेसे सम्यग्दर्शन होता है, और उसीका आश्रय करनेसे सम्यक्चारित्र होता है, और उसीका आश्रय करनेसे अल्प कालमें मुक्ति होती है; इसलिये मोक्षके अभिलाषी ऐसे अति निकटभव्य जीवको अपने, शुद्धात्मतत्त्वका ही आश्रय करना योग्य है, उससे भिन्न अन्य कुछ आश्रय करने योग्य नहीं है। इसलिये हे मोक्षार्थी जीव! अपने शुद्धात्मतत्त्वको ही तू उपादेय कर;—वही उपादेय है ऐसी श्रद्धा कर, उसीको उपादेयरूप जान,

तथा उसीको उपादेय बनाकर उसमें स्थिर हो। ऐसा करनेसे अल्पकालमें तेरी मुक्ति होगी। ८.

*

प्रातःकाल जिसे राजसिंहासन पर देखा हो वही सायंकाल स्मशानमें राख होता दिखायी देता है। ऐसे प्रसंग तो संसारमें अनेक बनते हैं, तथापि मोहविमूढ जीवोंको वैराग्य नही आता। भाई! संसारको अनित्य जानकर तू आत्मोन्मुख हो। एक बार अपने आत्माकी ओर देख। बाह्यभाव अनन्तकाल करने पर भी शान्ति नहीं मिली, इसलिये अब तो अंतर्मुख हो। यह संसार या संसारके संयोग स्वप्नमें भी इच्छनीय नहीं हैं। अंतरका एक चिदानन्द तत्त्व ही भावना करने योग्य है। ९.

*

जिस प्रकार चनेमें मिठासकी शक्ति भरी है, कचासके कारण वह कसैला लगता है और बोनेसे उगता है, किन्तु सेकनेसे उसका मीठा स्वाद प्रगट होता है और वह बोने पर उगता नहीं है; उसी प्रकार आत्मामें मिठास अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्दशक्ति परिपूर्ण विद्यमान है, उस शक्तिको भूलकर 'शरीर सो मैं, रागादि सो मै' ऐसी अज्ञानरूपी कचासके कारण उसे अपने आनन्दका अनुभव नहीं है किन्तु अशुद्धताका अनुभव है और पुनः पुनः वह अवतार धारण करता है, परन्तु अपने स्वरूप-सन्मुख होकर उसमें एकाग्रतारूप अग्नि द्वारा सिकनेसे स्वभावके अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद आता है और फिर उसे अवतार नही होता। १०.

*

तत्त्वविचारके अभ्याससे जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है। जिसे तत्त्वका विचार नहीं है वह देव-शास्त्र गुरु तथा धर्मकी प्रतीति करता है, अनेक शास्त्रोंका अभ्यास करता है, व्रत-तप आदि करता है, तथापि सम्यक्त्वके सन्मुख नही है—सम्यक्त्वका अधिकारी नही है; और तत्त्व-

विचारवाला उसके विना भी सम्यक्त्वका अधिकारी होता है। सम्यग्दर्शनके लिये मूलभूत तो तत्त्वविचारका उद्यम ही है; इसलिये तत्त्वविचारकी मुख्यता है। ११.

*

सम्यग्दृष्टि उसे कहते हैं जिसे आत्माके पूर्ण स्वभावका अन्तरमें विश्वासपूर्वक उसका सच्चा श्रद्धान—सम्यग्दर्शन—हुआ हो। मैं ज्ञान-आनन्दादि अनन्त शक्तियोंसे परिपूर्ण पदार्थ हूँ—ऐसा प्रथम विश्वास आया तब अन्तरमें आत्माका अनुभव हुआ। पूर्ण स्वभावको ग्रहण करनेसे अन्तरमें विश्वास होता है। अनादिसे जीवका विश्वास वर्तमान पर्यायमें है; परन्तु वह पर्याय जहां है वही गहराईमें, उसके तलमें अखण्ड पूर्ण वस्तु पड़ी है; वह अनन्तानन्त अपरिमित शक्तियोंका सागर है; उसका जिसे अन्तरमें विश्वास आये और जो अन्तर अनुभवमें उतर जाये उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। १२.

*

अहा! देखो यह परम सत्यमार्ग। वर्तमानमें भगवान सीमन्धर परमात्मा पूर्व विदेहक्षेत्रमें विराज रहे हैं, वहाँ जाकर श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव भगवानकी दिव्यध्वनि सुन आये, और फिर उन्होंने इन शास्त्रोंमें परम सत्यमार्गकी स्पष्टता की है। अहा, कैसा सत्य मार्ग! कितना स्पष्ट मार्ग! कितना प्रसिद्ध मार्ग! लेकिन वर्तमानमें लोग शास्त्रोंके नामसे भी मार्गमें बडी गडबड़ी पैदा कर रहे हैं। क्या किया जाये? ऐसा ही काल है! परन्तु सत्य मार्ग तो जैसा है वैसा ही रहेगा। शुद्धोपयोगरूप साक्षात् मोक्षमार्ग तीनों काल जयवन्त है वही अभिनन्दनीय है। १३.

*

प्रत्येक द्रव्य स्वतन्त्र है। मैं भी एक स्वतन्त्र पदार्थ हूँ, कर्म मुझे रोक नहीं सकते।

प्रश्नः—महाराज! दो जीवोंको १४८ कर्म प्रकृतियों सम्बन्धी सर्व भेद-प्रभेदोंके प्रकृति प्रदेश-स्थिति-अनुभाग सब बराबर एकसमान हों तो वे जीव उत्तरवर्ती क्षणमें समान भाव करेंगे या भिन्न-भिन्न प्रकारके?

उत्तरः—भिन्न-भिन्न प्रकारके।

प्रश्नः—दोनों जीवोंकी शक्ति तो पूर्ण है और आवरण बराबर एक समान है, तो फिर भाव भिन्न-भिन्न प्रकारके कैसे कर सकेंगे?

उत्तरः—'अकारण पारिणामिक द्रव्य है' अर्थात् जीव जिसका कोई कारण नहीं है ऐसे भावसे स्वतन्त्ररूपसे परिणमनेवाला द्रव्य है, इसलिये उसे अपने भाव स्वाधीनरूपसे करनेमें सचमुच कौन रोक सकता है? वह स्वतन्त्र रूपसे अपना सब कर सकता है। १४.

*

द्रव्यमें गहरे उतर जा, द्रव्यके पातालमें जा। द्रव्य वह चैतन्य-वस्तु है, गहरा गहरा गम्भीर गम्भीर तत्त्व है, ज्ञान-आनन्दादि अनन्त अनन्त गुणोंका पिण्डरूप अभेद एक पदार्थ है; उसमें दृष्टि लगाकर भीतर घुस जा। 'घुस जा' का अर्थ ऐसा नहीं है कि पर्याय द्रव्य हो जाती है; परन्तु पर्यायकी जाति, द्रव्यका आश्रय करनेसे द्रव्य जैसी निर्मल हो जाती है; उसे, पर्याय द्रव्यमें गहरी उतर गई—अभेद हो गई—ऐसा कहा जाता है। १५.

*

स्वानुभूति होने पर जीवको कैसा साक्षात्कार होता है? स्वानुभूति होने पर, अनाकुल-आह्लादमय, एक, समस्त ही विश्व पर तैरता विज्ञानघन परम पदार्थ—परमात्मा अनुभवमें आता है। ऐसे अनुभव बिना आत्मा

सम्यक्‌रूपसे दृष्टिगोचर नहीं होता—श्रद्धामें ही नहीं आता, इसलिये स्वानुभूतिके बिना सम्यग्दर्शनका—धर्मका प्रारम्भ ही नहीं होता।

ऐसी स्वानुभूति प्राप्त करनेके लिये जीवको क्या करना? स्वानुभूतिकी प्राप्तिके लिये ज्ञानस्वभावी आत्माका चाहे जिस प्रकार भी दृढ़ निर्णय करना। ज्ञानस्वभावी आत्माका निर्णय दृढ़ करनेमें सहायभूत तत्त्वज्ञानका—द्रव्योंका स्वयंसिद्ध सत्‌पना और स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, नव तत्त्वका सच्चा स्वरूप, जीव और शरीरकी बिलकुल भिन्न-भिन्न क्रियाएँ, पुण्य और धर्मके लक्षणभेद, निश्चय-व्यवहार इत्यादि अनेक विषयोंके सच्चे बोधका—अभ्यास करना चाहिये। तीर्थंकर भगवन्तों द्वारा कहे गये ऐसे अनेक प्रयोजनभूत सत्योंके अभ्यासके साथ-साथ सर्व तत्त्वज्ञानका सिरमौर—मुकुटमणि जो शुद्ध द्रव्यसामान्य अर्थात् परमपारिणामिक भाव अर्थात् ज्ञायकस्वभावी शुद्धात्मद्रव्यसामान्य—जो स्वानुभूतिका आधार है, सम्यग्दर्शनका आश्रय है, मोक्षमार्गका आलम्बन है, सर्व शुद्धभावोंका नाथ है—उसकी दिव्य महिमा हृदयमें सर्वाधिकरूपसे अंकित करने योग्य है। उस निज शुद्धात्मद्रव्यसामान्यका आश्रय करनेसे ही अतीन्द्रिय आनन्दमय स्वानुभूति प्राप्त होती है। १६.

*

योगीन्द्रदेव कहते हैं कि अरे जीव! अब तुझे कब तक संसारमें भटकना है? अभी तू थका नहीं? अब तो आत्मामें आकर आत्मिक आनन्दका भोग कर! अहाहा! जैसे पानीकी नहर बहती हो वैसे ही यह धर्मकी नहर बह रही है। पीना आता हो तो पी। भाई! अच्छे कालमें तो कलका लकड़हारा हो वह आज केवलज्ञान प्राप्त करता था ऐसा वह काल था। जिस प्रकार पुण्यशालिको पग-पगपर निधान निकलें उसी प्रकार आत्मपिपासुको पर्याय-पर्यायमें आत्मामेंसे आनन्दके निधान मिलते हैं। १७

जो वीतरागदेव और निर्ग्रन्थ गुरुओंको नहीं मानता, उनकी सच्ची पहिचान तथा उपासना नहीं करता, उसे तो सूर्योदय होने पर भी अंधकार है। तथा जो वीतराग गुरुओं द्वारा प्रणीत सत्शास्त्रोंका अध्ययन नही करता, वह आखे होने पर भी अन्ध है। विकथा पढ़ता रहे और शास्त्रस्वाध्याय न करे उसकी आँखे किस कामकी? ज्ञानी गुरुके पास रहकर जो शास्त्रश्रवण नहीं करता और हृदयमें उनके भावको नहीं अवधारता, वह मनुष्य वास्तवमें कान एवं मनसे रहित है ऐसा कहा है। जिस घरमें देव-शास्त्र-गुरुकी उपासना नही होती वह सचमुच घर ही नहीं है, कारागृह है। १८.

*

समस्त सिद्धान्तके सारका सार तो बहिर्मुखता छोड़कर अंतर्मुख होना है। श्रीमदने कहा है न!—'उपजे मोह विकल्पसे समस्त यह संसार, अन्तर्मुख अवलोकतें विलय होत नहिं वार।' ज्ञानीके एक वचनमें अनन्त गम्भीरता भरी है।

अहो! जो भाग्यशाली होगा उसे इस तत्त्वका रस आयेगा और तत्त्वके संस्कार गहरे उतरेगे। १९.

*

त्रैकालिक सत् चैतन्यप्रभु—तेरा ध्रुवतत्त्व उसकी दृष्टि तूने कभी नहीं की। वर्तमान रागादिकी अथवा अल्प जानपना आदिकी जो स्थिति है, दशा है उस क्षणिक दशा पर तेरी दृष्टि है। परको अपना माने वह तो बड़ी भ्रमणा है ही; परन्तु जानने-देखनेकी वर्तमान दशा जो तेरी की हुई है, तेरी है, तुझमें है, तेरे द्रव्यका वर्तमान अंश—पर्याय है, उस पर दृष्टि—पर्यायदृष्टि—वह भी मिथ्यात्व है। वह पर्यायदृष्टि अनादिकी है। पर्यायके ओर की दृष्टि छोड़कर तेरी दृष्टि त्रैकालिक द्रव्यस्वभाव पर कभी नही आयी। मिथ्यात्व एवं रागादिके दुःखके छूटनेका—विकल्प

तोड़नेका—अन्य कोई उपाय नही है; अन्तर त्रैकालिक ध्रुव द्रव्यस्वभावकी—शुद्ध ज्ञायक परमभावकी—दृष्टि करना वही एक उपाय है। २०.

*

अन्तरमें स्वसंवेदनज्ञान खिला वहाँ स्वयंको उसका वेदन हुआ, फिर कोई दूसरा उसे जाने या न जाने—उसकी ज्ञानीको अपेक्षा नहीं है। जिस प्रकार सुगंधित पुष्प खिलता है तो उसकी सुगंध कोई ले या न ले उसकी अपेक्षा उस पुष्पको नहीं है, वह तो स्वयं अपनेमें ही सुगंधसे खिला है, उसी प्रकार धर्मात्माको अपना आनन्दमय स्वसंवेदन हुआ है वह किसी दूसरेको दिखलानेके लिये नहीं है; दूसरे जाने तो अपनेको शान्ति हो—ऐसा कुछ धर्मीको नहीं है; वह तो स्वयं अन्तरमें अकेला-अकेला अपने एकत्वमें आनन्दरूपसे परिणमित हो ही रहा है। २१

*

लेंडीपीपलका दाना आकारमें छोटा और स्वादमें अल्प चरपराहटवाला होने पर भी उसमें चौंसठपहरी चरपराहटकी—पूर्ण चरपराहटकी शक्ति सदा परिपूर्ण है। इस दृष्टान्तसे आत्मा भी आकारमें शरीरप्रमाण एवं भावमें अल्प होने पर भी उसमें परिपूर्ण सर्वज्ञस्वभाव, आनन्दस्वभाव भरा है। लेंडीपीपलको चौंसठ पहर तक घोंटनेसे उसकी पर्यायमें जिस प्रकार पूर्ण चरपराहट प्रगट होती है, उसी प्रकार रुचिको अन्तरोन्मुख करके स्वरूपका मंथन करते-करते आत्माकी पर्यायमें पूर्ण स्वरूप प्रगट हो जाता है। २२.

*

सम्यग्दृष्टिके जो अव्रतादिभाव हैं वे कहीं कर्मकी जबरदस्तीसे नहीं हुए हैं, किन्तु आत्माने स्वयं अपने आप उन्हें किया है। विकार करनेमें तथा विकारको हटानेमें आत्माकी ही प्रभुता है, दोनोंमें आत्मा स्वयं स्वतंत्ररूपसे कर्त्ता है।

देखो, 'रागादिरूप परिणमित होनेमें भी आत्मा स्वयं स्वतन्त्र प्रभु है' ऐसा कहा, उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि राग क्रमबद्धपर्यायमें भले होता रहे। अरे भाई! क्या अकेले विकारमें ही परिणमित होनेकी आत्माकी प्रभुता कही है या विकार तथा अविकार दोनोंमें परिणमित होनेकी? विकार तथा अविकार दोनोंमें स्वतन्त्ररूपसे परिणमित होनेकी मेरे आत्माकी प्रभुता है—ऐसा जो निर्णय करे वह 'प्रभु' होकर निर्मलरूपसे परिणमित होता है, विकाररूप जो अल्पपरिणमन होता है उसकी उसे रुचि नहीं होती। एकान्त आस्रव-बन्धरूप मलिनभावसे परिणमित हो उसने वास्तवमें आत्माकी प्रभुताको जाना ही नहीं। २३.

क्रमबद्धपर्यायका निर्णय करते हुए दृष्टि द्रव्य पर जाती है तब क्रमबद्धपर्यायका सच्चा निर्णय होता है। पर्यायके क्रमके सामने देखनेसे क्रमबद्धका सच्चा निर्णय नहीं हो सकता, ज्ञायककी ओर ढलता है तब ज्ञायकका सच्चा निर्णय होता है, उस निर्णयमें अनन्त पुरुषार्थ आता है। ज्ञानके साथ आनन्दका स्वाद आये तब उसे सम्यग्दर्शन हुआ है। सर्वज्ञने देखा है वैसा होगा, पर्याय तो क्रमबद्ध होती है, उसके निर्णयका तात्पर्य ज्ञानस्वभाव पर दृष्टि करना है। आत्मा कर्त्ता नहीं किन्तु ज्ञाता ही है। २४.

ऐसा उत्तम योग फिर कब मिलेगा? निगोदसे निकलकर त्रसपना प्राप्त करना वह चिन्तामणि-तुल्य दुर्लभ है, तो फिर मनुष्यपना प्राप्त करना, जैनधर्मका मिलना तो महा दुर्लभ है। धन-सम्पत्ति एवं प्रतिष्ठा प्राप्त होना वह दुर्लभ नहीं है। ऐसा जो उत्तम योग मिला है वह अधिक काल तक नहीं रहेगा, इसलिये बिजलीकी चमकमें डोरा पिरो लेने जैसा है। ऐसा सुयोग फिर कब मिलेगा। इसलिये तू दुनियाके मान-सन्मान

एवं धन-सम्पत्तिकी महिमा छोड़कर, दुनिया क्या कहेगी उनका लक्ष छोड़कर, एक बार मिथ्यात्वको छोड़नेका जीतोड़ प्रयत्न कर। २५.

*

ज्ञानी धर्मात्माको भगवानकी पूजा-भक्ति आदिके भाव आते हैं परन्तु उसकी दृष्टि राग रहित ज्ञायक आत्मा पर पडी है। उसे आत्माका भान है; उस भानमें उसे सतत धर्म वर्त रहा है। सत्य समझे उसे वीतराग देव-शास्त्र-गुरुके प्रति भक्तिका प्रशस्त राग आये विना नहीं रहेगा। मुनिराजको भी ऐसे भक्तिके भाव आते हैं, जिनेन्द्रप्रभुके नामस्मरणसे भी चित्त भक्तिभावसे उछल जाता है। अन्तरमें वीतरागी आत्माका लक्ष हो और बाह्यमें तीव्र राग दूर न हो यह कैसे हो सकता है? भगवानकी भक्तिके भावका निषेध करके जो खान-पानादिके अशुभरागमें लगा रहता है वह तो मरकर दुर्गतिमें जायेगा। मेरा स्वरूप ज्ञान है, राग मेरा स्वरूप नहीं है, —इस प्रकार जो सत्यको जानता है उसको लक्ष्मी आदि परपदार्थोंका ममत्व सहज ही कम हो जाता है, और भगवानकी भक्ति, प्रभावनादिका भाव उछलते हैं। तथापि वहाँ वह जानता है कि यह राग है, यह कोई धर्म नहीं है। अन्तरमें शुद्ध चिदानन्दस्वरूपको जानकर उसे प्रगट किये विना जन्म-मरणका अन्त नहीं आयेगा। २६.

*

आत्मा केवल ज्ञायक है; उस स्वभावका नहीं रुचना, नहीं सुहाना उसका नाम क्रोध है। 'अखण्ड चैतन्यस्वभाव वह मैं नहीं हूँ' इस प्रकार स्वभावकी अरुचि—स्वभावका नहीं सुहाना—वह अनन्तानुबन्धी क्रोध है। वस्तु अखण्ड है, सब भङ्ग-भेद अजीवके सम्बन्धसे दिखायी देते हैं। दृष्टिमें उस अखण्ड स्वभावका पोषण न होना वह क्रोध है; परमार्थके प्रति अहंबुद्धि वह अनन्तानुबन्धी मान है; वस्तुका स्वभाव जैसा है वैसा न मानकर, वक्रता करके दूसरी तरह मानना उसका नाम

अनन्तानुबन्धी माया है; स्वभावकी भावनासे च्युत होकर विकारकी इच्छा करना वह अनन्तानुबन्धी लोभ है। २७.

*

मै आत्मा शुद्ध हूँ, अशुद्ध हूँ, बद्ध हूँ, मुक्त हूँ, नित्य हूँ, अनित्य हूँ, एक हूँ, अनेक हूँ इत्यादि प्रकारों द्वारा जिसने प्रथम श्रुतज्ञान द्वारा ज्ञानस्वभावी निज आत्माका निर्णय किया है ऐसे जीवको, तत्त्वविचारके रागकी जो वृत्ति उठती है वह भी दुःखदायक है, आकुलतारूप है। ऐसे अनेक प्रकारके श्रुतज्ञानके भावको मर्यादामें लाता हुआ, मै ऐसा हूँ और वैसा हूँ—ऐसे विचारोंको पुरुषार्थ द्वारा रोकता हुआ, परकी ओर झुकनेवाले उपयोगको स्वकी ओर खींचता हुआ, नयपक्षके आलम्बनसे होनेवाला जो रागका विकल्प उसे आत्माके स्वभावरसके भान द्वारा टालता हुआ, श्रुतज्ञानको भी जो आत्मसन्मुख करता है वह, उस काल अत्यन्त विकल्प रहित होकर तत्काल निजरससे प्रगट होनेवाले, आदि मध्य-अन्त रहित आत्माके परमानन्दस्वरूप अमृतरसका वेदन करता है। २८.

*

जिसे आत्माकी यथार्थ रुचि जागृत हो उसे चौबीसों घण्टे उसीका चिन्तन, मन्थन और खटका रहा करता है, नींदमें भी वही रटन चलता रहता है। अरे! नरकमें पडा हुआ नारकी भीषण वेदनामें पडा हो उस समय भी, पूर्वकालमें सतश्रवण किया हो उसका स्मरण करके, फटसे अंतरमें उतर जाता है; उसे प्रतिकूलता बाधक नहीं होती! स्वर्गका जीव स्वर्गकी अनुकूलतामें रहा हो तथापि उसका लक्ष छोडकर अंतरमें उतर जाता है। यहाँ किंचित् प्रतिकूलता हो तो 'अरेरे! मुझे ऐसा है और वैसा है'—ऐसा कर-करके अनन्त काल गँवा दिया। अब उसका लक्ष छोडकर अंतरमें उतर ना! भाई! इसके सिवा अन्य कोई सुखका मार्ग नही है। २९

*

तत्त्व समझनेमें, उसके विचारमें जो शुभभाव सहज ही आता है वैसे उच्च शुभभाव क्रियाकाण्डमें नहीं है। अरे! एक घण्टे तक ध्यान रखकर तत्त्वका श्रवण करे तोभी शुभभावके ढेर लग जाये और शुभभावकी सामायिक हो जाये; तो फिर यदि चैतन्यकी जागृति लाकर निर्णय करे तो उसकी तो बात ही क्या? तत्त्वज्ञानका विरोध न करे और ज्ञानी क्या कहना चाहते हैं उसे सुने तो उसमें शुभरागका जो पुण्य बन्धता है उसकी अपेक्षा परमार्थके लक्ष सहित सुननेवालेको उत्कृष्ट पुण्यके शुभभाव हो जाते हैं; परन्तु उस पुण्यका मूल्य क्या? पुण्यसे मात्र श्रवण करना मिलता है परन्तु उसमें अपनेको एकाकार करके सत्यका निर्णय न करे तो सब व्यर्थ है। ३०.

*

बाहरकी विपदा वह वास्तवमें विपदा नहीं है और बाहरकी सम्पदा वह सम्पदा नहीं है। चैतन्यका विस्मरण ही महान विपदा है और चैतन्यका स्मरण ही वास्तवमें सच्ची सम्पदा है। ३१.

*

आत्माका स्वभाव त्रैकालिक परमपारिणामिकभावरूप है; उस स्वभावको पकड़नेसे ही मुक्ति होती है। वह स्वभाव कैसे पकड़में आता है? रागादि औदयिकभावों द्वारा वह स्वभाव पकड़में नहीं आता; औदयिक भाव तो बहिर्मुख हैं और पारिणामिक स्वभाव तो अंतर्मुख है। बहिर्मुख भाव द्वारा अंतर्मुख भाव पकड़में नहीं आता। तथा जो अंतर्मुखी औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिकभाव हैं उनके द्वारा वह पारिणामिक भाव यद्यपि पकड़में आता है, तथापि उन औपशमिकादि भावोंके लक्षसे वह पकड़में नहीं आता। अंतर्मुख होकर उस परम स्वभावको पकड़नेसे औपशमिकादि निर्मल भाव प्रगट होते हैं। वे भाव स्वयं कार्यरूप हैं, और परमपारिणामिक स्वभाव कारणरूप परमात्मा है। ३२.

*

मोही मनुष्य जहाँ ऐसे मनोरथका सेवन करता है कि 'मै कुटुम्ब तथा समाजका अगुआ बनूँ, धन, मकान तथा बालबच्चोंमें खूब बढ़ूँ और भरापूरा परिवार छोडकर मरूँ,' वहाँ गृहस्थाश्रममें रहनेवाले धर्मात्मा आत्माकी प्रतीति सहित पूर्णताके लक्षमें इन तीन प्रकारके मनोरथोंका सेवन करते हैं : (१) मै सर्व सम्बन्धसे छूटूँ, (२) स्त्री आदि बाह्य परिग्रह तथा विषय-कषायरूप अभ्यन्तर परिग्रहका स्वसन्मुखताके पुरुषार्थ द्वारा त्याग करके निर्ग्रन्थ मुनि होऊँ, (३) मै अपूर्व समाधिमरण प्राप्त करूँ। ३३.

*

धर्म भी ज्ञानीको होता है और उच्च पुण्य भी ज्ञानीको ही बँधता है। अज्ञानीको आत्माके स्वभावकी खबर न होनेसे उसे धर्म भी नहीं है और उच्च पुण्य भी नहीं है। तीर्थंकरपद, चक्रवर्तीपद, बलदेवपद वे सब पद सम्यग्दृष्टि जीवोंको ही बँधते हैं; क्योंकि ज्ञानीको ऐसा भान है कि—अपना एक निर्मल आत्मस्वभाव ही आदरणीय है, उसके सिवा रागका एक अंश या पुद्गलका एक रजकण भी आदरणीय नहीं है।—ऐसी प्रतीति होने पर अभी सम्पूर्ण वीतराग नही हुआ है इसलिये रागका भाग आता है। उसमें उच्च जातिका प्रशस्त राग आनेसे तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि उच्च पदवियाँ बँधती हैं। ३४.

*

शुभभाव अपनेमें होता है इसलिये उसे 'अभूतार्थ' नहीं कहा जाता —ऐसा नहीं है। शुभभाव अपनी पर्यायमें होने पर भी उसके आश्रयसे हितकी प्राप्ति नहीं होती, इसलिये उसे 'अभूतार्थ' कहा जाता है। अपनी पर्यायमें उसका अस्तित्व ही नहीं है—ऐसा कहीं 'अभूतार्थ'का तात्पर्य नहीं है; किन्तु उसके आश्रयसे कल्याणकी प्राप्ति नहीं होती, क्योंकि स्वभावभूत नहीं,—ऐसा बतलाकर उसका आश्रय छुडानेके लिये उसे 'अभूतार्थ' कहा है। त्रिकाल एकरूप रहनेवाला द्रव्यस्वभाव भूतार्थ है,

उसके आश्रयसे कल्याण होता है। उस भूतार्थस्वभावकी दृष्टिसे भेदरूप या रागरूप समस्त व्यवहार अभूतार्थ है। अभूतार्थ कहो या परिहरने योग्य कहो। उसका परिहार करके सहजस्वभावको अंगीकार करनेसे घोर संसारका मूल—मिथ्यात्व—छिद जाता है, और जीव शाश्वत परम सुखका मार्ग प्राप्त करता है। ३५.

*

जिस प्रकार घोर निद्रामें सोते हुएको आसपासकी दुनियाका भान नहीं रहता, उसी प्रकार चैतन्यकी अत्यन्त शान्तिमें स्थिर हुए मुनिवरोंको जगतके बाह्य विषयोंमें किंचित भी आसक्ति नहीं होती; भीतर स्वरूपकी लीनतामेंसे बाहर निकलना जरा भी अच्छा नहीं लगता; आसपास जंगलके बाघ और सिंह दहाड़ रहे हों तथापि उनसे जरा भी नहीं डरते और स्वरूपकी स्थिरतासे किंचित् भी चलायमान नहीं होते। अहा! धन्य वह अद्भुत दशा! ३६.

*

चन्द्र तो स्वयं सोलह कलाओंसे पूर्ण है, उसे नित्य-राहु ढँककर रहता है; राहु ज्यों-ज्यों हटता जाये त्यों-त्यों चन्द्रकी एक-एक कला विकसित होती रहती है। चन्द्रमें दूज, तीज, चौथ आदि कलाके भेद अपनेसे नहीं किन्तु राहुके निमित्तकी अपेक्षासे हैं। इसी प्रकार ज्ञानस्वरूप आत्मा चन्द्रके समान अखण्ड परिपूर्ण है, उसमें पाँचवें, छट्ठे, सातवें गुणस्थानके भेदकी जो कलाएँ हैं वे अखण्ड आत्माकी अपेक्षासे नहीं हैं, किन्तु निमित्त ऐसा जो कर्मरूप राहु उसकी अपेक्षासे हैं। पुरुषार्थ द्वारा वह हटता जाता है इसलिये संयमकी कलाके भेद पड़ते हैं परन्तु अभेद आत्माकी अपेक्षासे वे भेद नहीं पड़ते। उन कलाके भेदों पर दृष्टि न रखकर सम्पूर्ण द्रव्य पर दृष्टि रखना वही कलाओंके विकासका कारण है। ३७.

*

कोई जीव नग्न दिगम्बर मुनि हो गया हो, वस्त्रका एक ताना-बाना भी न हो, परन्तु परवस्तु मुझे लाभदायी है ऐसा अभिप्राय है, तब तक उसके अभिप्रायमेंसे तीन कालकी एक भी वस्तु छूटी नहीं है। परके साथ एकत्वबुद्धि खड़ी है, परवस्तु मुझे लाभ करती है ऐसा अभिप्राय बना हुआ है, तब तक तीन काल तीन लोकके अनन्त पदार्थ उसके भावमेंसे नहीं छूटे हैं। ३८.

*

हे मोक्षके अभिलाषी! मोक्षका मार्ग तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप है। वह सम्यग्दर्शनादि शुद्धभावरूप मोक्षमार्ग अन्तर्मुख प्रयत्न द्वारा सधता है ऐसा भगवानका उपदेश है। भगवानने स्वयं प्रयत्न द्वारा मोक्षमार्ग साधा है और उपदेशमें भी यही कहा है कि 'मोक्षका मार्ग प्रयत्नसाध्य है।' इसलिये तू सम्यग्दर्शनादि शुद्धभावोंको ही मोक्षका पंथ जानकर सर्व उद्यम द्वारा उसे अंगीकार कर। हे भाई! सम्यग्दर्शनादि शुद्धभावोंसे रहित ऐसे द्रव्यलिंगसे तुझे क्या साध्य है? मोक्ष तो सम्यग्दर्शन आदि शुद्ध-भावोंसे ही साध्य है इसलिये उसका प्रयत्न कर। ३९.

*

परालम्बी दृष्टि वह बन्धभाव है और स्वाश्रयदृष्टि ही मुक्तिका भाव है। स्वसन्मुख दृष्टि रहनेमें ही मुक्ति है और बहिर्मुख दृष्टि होनेसे जो व्रत दान-भक्तिके भाव आयें वे सब पराश्रित होनेसे बन्धभाव हैं। वे सब शुभपरिणाम आये वह अलग बात है, किन्तु उन्हें रखनेयोग्य या लाभरूप मानना वह पराश्रयदृष्टि—मिथ्यादृष्टि है। ४०.

*

भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव समयप्राभृतमें कहते हैं कि—मैं जो यह भाव कहना चाहता हूँ उसे अन्तरके आत्मसाक्षीके प्रमाण द्वारा प्रमाण करना; क्योंकि यह अनुभवप्रधान शास्त्र है, उसमें मेरे वर्तते हुए स्वात्म-

वैभव द्वारा कहा जाता है। ऐसा कहकर छठवीं गाथा प्रारम्भ करते हुए आचार्य भगवान कहते हैं कि, 'आत्मद्रव्य अप्रमत्त नहीं है और प्रमत्त नहीं है अर्थात् इन दो अवस्थाओंका निषेध करता हुआ मैं एक अखण्ड ज्ञाता हूँ—यह अपनी वर्तमान वर्तती दशासे कहता हूँ'। मुनिपनेकी दशा अप्रमत्त और प्रमत्त इन दो भूमिकाओंमें हजारों बार आ-जा करती है; उस भूमिकामें वर्तते महामुनिका यह कथन है।

समयप्राभृत अर्थात् समयसाररूपी भेट। जैसे राजाको मिलनेके लिये भेट देनी पड़ती है उसी प्रकार अपनी परम उत्कृष्ट आत्मदशास्वरूप परमात्मदशा प्रगट करनेके लिये समयसार जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान चारित्र-स्वरूप आत्मा उसकी परिणतिरूप भेट देनेसे परमात्मदशा—सिद्धदशा—प्रगट होती है।

इस शब्दब्रह्मरूप परमागमसे दर्शाये हुए एकत्वविभक्त आत्माको प्रमाण करना, स्वीकार ही करना, कल्पना नहीं करना। इसका बहुमान करनेवाला भी महाभाग्यशाली है। ४१.

*

ज्ञान एवं आनन्दादि अनन्त पूर्ण शक्तिके भण्डार ऐसे सत्स्वरूप भगवान निज ज्ञायक आत्माके आश्रयमें जानेपर निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होता है तब उसके अनन्त गुणोंका अंश—आंशिक शुद्ध परिणमन—प्रगट होता है और सर्व गुणोंकी पर्यायोंका वेदन होता है। उसे श्रीमद् राजचन्द्र 'सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व' और पं० टोडरमलजी रहस्यपूर्ण चिट्ठीमें 'चतुर्थ गुणस्थानमें आत्माके ज्ञानादिक गुण एकदेश प्रगट हुए—ऐसा कहते हैं। वह बात बहिनके बोलमें (बहिनश्री चम्पाबहिनके वचनामृतमें) इस प्रकार आयी है;

"निर्विकल्प स्वानुभूतिकी दशामें आनन्दगुणकी आश्चर्यकारी पर्याय

प्रगट होनेसे आत्माके सर्व गुणोंका (यथासम्भव) आंशिक शुद्ध परिणमन प्रगट होता है और सर्व गुणोंकी पर्यायोंका वेदन होता है।"

भीतर आत्मा पूर्णानन्दका नाथ है उसकी जिसे दृष्टि हुई है उसे 'वस्तु अन्तरमें परिपूर्ण है' ऐसा अनुभव—वेदन होनेसे, अनन्त गुणोंका अंशतः यथासम्भव व्यक्तपना होनेसे, वह सम्यक्त्वी है। ४२.

*

विकार जीवकी ही पर्यायमें होता है उस अपेक्षासे तो उसे जीवका जानना; परन्तु जीवका स्वभाव विकारमय नहीं है, जीवका स्वभाव तो विकार रहित है। इस प्रकार स्वभावदृष्टिसे विकार जीवका नहीं है, परन्तु पुद्गलके लक्षसे होता है इसलिये वह पुद्गलका है ऐसा जानना। इस प्रकार दोनों पक्ष जानकर शुद्धस्वभावमें ढलनेसे पर्यायमेंसे भी विकार हट जाता है, और इस प्रकार जीव विकारका साक्षात् अकर्ता हो जाता है। इसलिये परमार्थतः जीव विकारका कर्ता नहीं है। ४३.

*

ज्ञानदर्शनस्वभावमात्र अभेद निज तत्त्वकी दृष्टि करने पर उसमें नवतत्त्वरूप परिणमन तो है नहीं। चेतनास्वभावमात्र ज्ञायकवस्तुमें गुणभेद भी नहीं हैं। इसलिये गुणभेद या पर्यायभेदको अभूतार्थ—असत्य कह दिया है। पर्याय पर्यायके रूपमें सत्य है, परन्तु लक्ष—आश्रय करनेके लिये असत्य है। दया-दानादिके भाव तो राग है, वह लक्ष करने योग्य नहीं है, परन्तु संवर-निर्जरारूप वीतराग निर्मल पर्याय भी लक्ष—आश्रय करने योग्य नहीं है; आश्रय करने योग्य—आलम्बन लेने योग्य तो एकमात्र त्रिकालशुद्ध ज्ञायक भाव है। ४४.

*

श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव जैसे वीतरागी सतके स्वानुभवके आनन्दमय प्रसादरूप यह 'समयसार' शास्त्र है; इसकी महिमा अद्‌भुत, अचिन्त्य

और अलौकिक है। अहो! यह समयसार तो अशरीरीभाव बतलानेवाला शास्त्र है; इसके भाव समझनेसे अशरीरी सिद्धपदकी प्राप्ति होती है। कुन्दकुन्दप्रभुकी तो क्या बात! परन्तु अमृतचन्द्र-आचार्यदेवने भी टीकामें आत्माकी अनुभूतिके अगाध गम्भीर भाव खोलकर जगत पर महान उपकार किया है। मोक्षका मूल मार्ग इन सन्तोंने जगतसमक्ष प्रसिद्ध किया है।. चैतन्यके कपाट खोल दिये है। ४५.

*

वस्तुस्थितिकी अचलित मर्यादाको तोड़ना अशक्य होनेके कारण वस्तु द्रव्यान्तर या गुणान्तररूपसे संक्रमणको प्राप्त नहीं होती; गुणान्तरमें पर्याय भी आ गई। वस्तु अपने आप स्वतन्त्र पलटे, अपनी शक्तिसे पलटे तब स्वतन्त्ररूपसे उसकी पर्याय खिलती है। कोई जबरन् पलट नहीं सकता या कोई जबरन समझाकर उसकी पर्यायको खिला नहीं सकता। यदि किसीको जबरन् समझाया जा सकता हो तो त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव सबको मोक्षमें न ले जायें! परन्तु तीर्थंकरदेव किसीको मोक्षमें नहीं ले जाते। स्वयं समझे तब अपनी मोक्षपर्याय खिलती है। ४६.

*

जगतमें जो कुछ सुन्दरता हो, जो कुछ पवित्रता हो, वह सब आत्मामें भरी है। श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवने समयसारमें कहा है:—

एकत्व-निश्चयगत समय, सर्वत्र सुन्दर लोकमें।
उससे बने बन्धनकथा, जु विरोधिनी एकत्वमें॥

—ऐसे सुन्दर आत्माको अनुभवमें लेनेसे उसके सर्व गुणोंकी सुन्दरता और पवित्रता एकसाथ प्रगट होती है। प्रत्येक समयकी पर्यायमें अनन्त गुणोंका स्वाद एकसाथ है; वह अनुभवमें एकसाथ समाता है; परन्तु विकल्प करके एक एक गुणके हिसाबसे आत्माके अनन्त गुणोंको पकड़ना

चाहे तो अनन्त कालमें भी पकड़में नही आयेंगे। एक आत्मामें उपयोग लगानेसे उसमें उसके अनन्त गुणोंकी पर्यायें निर्मलरूपसे अवश्य अनुभवमें आती हैं। हे भाई! ऐसे अनुभवकी अभिलाषा और उत्साह कर। बाहरकी तथा विकल्पकी अभिलाषा छोड दे, क्योंकि उससे चैतन्यके गुण पकड़में नहीं आते। उपयोगको—रुचिको बाहरसे समेटकर निश्चलरूपसे अंतरमें लगा, जिससे तुझे तत्क्षण विकल्प टूटकर अतीन्द्रिय आनन्द सहित अनन्तगुणस्वरूप निज आत्माका अनुभव होगा। ४७.

*

समयसारमें श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवने मात्र अध्यात्मरस भरा है। उन्हींकी परम्परासे इन योगसार तथा परमात्मप्रकाश आदि अध्यात्मशास्त्रोंकी रचना हुई है। समयसारादिकी टीका द्वारा अध्यात्मके रहस्य खोलकर अमृतके स्रोत प्रवाहित करनेवाले श्री अमृतचन्द्रसूरि पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें कहते हैं कि आत्माका निश्चय सो सम्यग्दर्शन, आत्माका ज्ञान सो सम्यग्ज्ञान और आत्मामें निश्चलस्थिति सो सम्यक्चारित्र;—ऐसे रत्नत्रय वह मोक्षमार्ग है और वह आत्माका स्वभाव ही है, उससे बन्धन नहीं होता। बन्धन तो रागसे होता है; रत्नत्रय तो राग रहित है, उनसे कर्मबन्ध नहीं होता, वे तो मोक्षके ही कारण हैं। इसलिये मुमुक्षुजन अंतर्मुख होकर ऐसे मोक्षमार्गका सेवन करो और परमानन्दरूप परिणमो। आज ही आत्मा अनन्तगुणधाम ऐसे स्वयंका अनुभव करो। ४८

*

प्रवचनसार और समयसारमें भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव तथा श्री अमृतचन्द्राचार्यदेवका अन्तर्नाद है कि हम जैसा कहते हैं वैसा ही वस्तुका स्वरूप है और वह सर्वज्ञके घरकी बात हम स्वानुभवसे कहते हैं। इस स्वरूपको समझनेसे, श्रद्धा करनेसे एक-दो भवमें अवश्य मोक्ष होता है

—इस प्रकार अप्रतिहत भावकी बात की है; पीछे गिर जानेकी बात नहीं है। जो स्वरूप असीम है, अनन्त है, स्वाधीन है, उसका भीतरसे यथार्थ निर्णय होनेके बाद फिर क्यों पीछे गिरेगा? जिस भावसे पूर्णकी श्रद्धा की है वही भाव (स्वानुभव) सम्पूर्ण निर्मल आत्मपद प्रदान करता है। ४९.

*

अपने पीछे कोई विकराल शेर झपट्टे मारता हुआ दौडता आ रहा हो तो वहाँ कैसी दौड़ लगाता है? क्या वहां थकान उतारनेके लिये खड़ा रहेगा? उसी प्रकार अरे! यह काल झपट्टे मारता हुआ चला आ रहा है और भीतर काम बहुतसे करना हैं ऐसा अपनेको अंतरमें लगना चाहिये। ५०.

*

ज्ञायकस्वभाव लक्षमें आये तब क्रमबद्ध पर्याय यथार्थरूपसे समझमें आ सकती है। जो जीव पात्र होकर अपने आत्महितके लिये समझना चाहता है उसे यह बात यथार्थ समझमें आ जाती है। जिसे ज्ञायककी श्रद्धा नहीं है, सर्वज्ञकी श्रद्धा नहीं है, सर्वज्ञकी प्रतीति नहीं है, अन्तरमें वैराग्य नहीं है और कषायकी मन्दता भी नहीं है ऐसा जीव तो ज्ञायक-स्वभावके निर्णयका पुरुषार्थ छोड़कर क्रमबद्धके नामसे स्वच्छन्दताका पोषण करता है। जो जीव क्रमबद्ध पर्यायको यथार्थरूपसे समझता है उसे स्वच्छन्दता हो ही नहीं सकती। क्रमबद्धको यथार्थ समझे वह जीव तो ज्ञायक हो जाता है, उसको कर्तृत्वके उछाले शांत हो जाते हैं और वह परद्रव्यका तथा रागका अकर्ता होकर ज्ञायकमें एकाग्र होता जाता है। ५१.

*

मृत्युका समय आयेगा वह कहीं पूछकर नहीं आयेगा कि लो अब तुम्हारा मरनेका समय आ गया है। अरे! यह संसार तो स्वप्न जैसा है; किसका कुटुम्ब और किसके धन-दोलत! यह शरीर भी एकदम क्षण-

भरमें छूट जायेगा। कुटुम्ब, कीर्ति और मकान सब यहीं पड़े रहेंगे। ज्ञायक भगवानको अन्तरसे पृथक् किया होगा तो मरणकालमें वह पृथक् रहेगा। यदि शरीरसे भिन्नता नहीं की होगी तो मरणके समय वह उसकी चपेटमें दब जायेगा। इसलिये अवसर है तो शरीरसे भिन्नता कर लेना योग्य है। ५२.

*

भाई! एक बार हर्ष तो ला कि अहो! मेरा आत्मा ऐसा परमात्मस्वरूप, ज्ञानानन्दकी शक्तिसे भरपूर है; मेरे आत्माकी शक्तिका घात नहीं हो गया है। 'अरेरे! मैं हीन हो गया, विकारी हो गया, अब मेरा क्या होगा?' ऐसे डर मत, उलझनमें न पड़, हताश न हो। एक बार स्वभावका उत्साह ला। स्वभावकी महिमा लाकर अपनी शक्तिको उछाल। ५३.

*

प्रश्न :—द्रव्यमें पर्याय नहीं है तो फिर पर्यायको क्यों गौण कराया जाता है?

उत्तर :—द्रव्यमें अर्थात् उसके ध्रौव्यांशमें पर्याय नहीं है, परन्तु उसका जो वर्तमान प्रगट परिणमित अंश उस अपेक्षासे तो उसमें पर्याय है। पर्याय सर्वथा है ही नहीं—ऐसा नहीं है। पर्याय है, परन्तु उसकी उपेक्षा करके, गौण करके 'नहीं है' ऐसा कहकर, उसका लक्ष छुड़ाकर, द्रव्यका—ध्रुव स्वभावका—लक्ष तथा दृष्टि करानेका प्रयोजन है। इसलिये द्रव्यको—ध्रुव स्वभावको मुख्य करके, भूतार्थ कहकर, उसकी दृष्टि कराई है; और पर्यायकी उपेक्षा करके, गौण करके, 'पर्याय नहीं है, असत्यार्थ है' ऐसा कहकर, उसका लक्ष छुड़ाया है। यदि पर्याय सर्वथा ही न हो तो गौण करना भी कहाँ रहता है? द्रव्य (ध्रौव्य) और पर्याय दो मिलकर सम्पूर्ण द्रव्य (वस्तु) वह प्रमाणज्ञानका विषय है। ५४.

*

शरीरके एक-एक तसूमें ९६-९६ रोग हैं; वह शरीर क्षणमें दगा दे जायेगा, क्षणमें छूट जायेगा। कुछ सुविधा हो वहाँ घुस जाता है, किन्तु भाई! तुझे एक बार कहीं जाना है वहाँ किसका मेहमान होगा? कौन तेरा परिचित होगा? उसका विचार करके अपना तो कुछ कर ले! शरीर स्वस्थ हो तब तक आँख नहीं खुलती, और क्षणमें देह छूटने पर अनजान स्थलमें चला जायेगा! छोटी-छोटीसी उम्रके लोग भी चले जाते हैं, इसलिये अपना कुछ कर ले! शास्त्रमें कहा है कि जब तक वृद्धावस्था न आये, शरीरमें व्याधिका जब तक प्रवेश न हो और इन्द्रियाँ जब तक शिथिल न हो जायें तब तक आत्महित कर लेना। ५५.

*

'आत्मा ही आनन्दका धाम है, उसमें अन्तर्मुख होनेसे ही सुख है' —ऐसी वाणीकी झङ्कार जहाँ कानोंमें पड़े वहाँ आत्मार्थी जीवका आत्मा भीतरसे झनझना उठता है कि वाह! यह भवरहित वीतरागी पुरुषकी वाणी! आत्माके परम शान्तरसको बतलानेवाली यह वाणी वास्तवमें अद्भुत है, अश्रुतपूर्व है। वीतरागी सन्तोंकी वाणी परम अमृत है, भवरोगकी नाशक अमोघ औषधि है। ५६.

*

शिष्य गुरुसे कहता है कि अहो प्रभु! आपने मुझ पर परम उपकार किया है, मुझ पामरको आपने निहाल कर दिया है, आपने मुझे तार दिया है आदि। अपने गुणकी पर्याय विकसित करनेके लिये व्यवहारमें गुरुके प्रति विनय एवं नम्रता करता है, गुरुके गुणोंका बहुमान करता है; और निश्चयसे अपने पूर्ण स्वभावके प्रति विनय, नम्रता तथा बहुमान करता है। निश्चयमें अपनेको पूर्ण स्वभावका बहुमान है इसलिये व्यवहारमें देव-शास्त्र-गुरुका बहुमान आये बिना नहीं रहता। देव-गुरु गुणोंमें विशेष हैं

इसलिये भीतर समझकर निमित्त पर आरोप देकर बोलता है कि 'आपने मुझे पार उतार दिया' वह अलग बात है, परन्तु यदि वैसा मान बैठे तो वह मिथ्या है। ५७.

*

शुद्ध चैतन्य ज्ञायकप्रभुकी दृष्टि, ज्ञान तथा अनुभव वह साधकदशा है। उससे पूर्ण साध्यदशा प्रगट होगी। साधकदशा है तो निर्मल ज्ञानधारा, परन्तु वह भी आत्माका मूल स्वभाव नहीं है; क्योंकि वह साधनामय अपूर्ण पर्याय है। प्रभु! तू पूर्णानन्दका नाथ—सच्चिदानन्द प्रभु—आत्मा है न! पर्यायमें रागादि भले हों, परन्तु वस्तु मूलस्वरूपसे ऐसी नहीं है। उस निज पूर्णानन्द प्रभुकी साधना—परमानन्दस्वरूपमें एकाग्रतारूप साधकदशाकी साधना—ऐसी कर कि जिससे तेरा साध्य—मोक्ष—पूर्ण हो जाये। ५८.

*

अनन्त गुणस्वरूप आत्मा, उसके एकरूप स्वरूपको दृष्टिमें लेकर, उसे (आत्माको) एकको ध्येय बनाकर उसमें एकाग्रताका प्रयत्न करना ही सर्वप्रथम शान्ति-सुखका उपाय है। ५९.

*

भक्ति अर्थात् भजना। किसे भजना? अपने स्वरूपको भजना। मेरा स्वरूप निर्मल एवं निर्विकारी—सिद्ध जैसा—है उसकी यथार्थ प्रतीति करके उसे भजना वही निश्चय भक्ति है, और वही परमार्थ स्तुति है। निचली भूमिकामें देव-शास्त्र-गुरुकी भक्तिका भाव आये वह व्यवहार है, शुभ राग है। कोई कहेगा कि यह बात कठिन लगती है। किन्तु भाई! अनन्त धर्मात्मा क्षणमें भिन्न तत्त्वोंकी प्रतीति करके, स्वरूपमें स्थिर होकर—स्वरूपकी निश्चय भक्ति करके—मोक्ष गये हैं, वर्तमानमें कतिपय जा रहे है और भविष्यमें अनन्त जीव उसी प्रकार जायेंगे। ६०.

सम्यग्दर्शन कोई अपूर्व वस्तु है। शरीरकी खाल उतारकर नमक छिडकनेवाले पर भी क्रोध नहीं किया—ऐसे व्यवहारचारित्र इस जीवने अनन्त बार पाले हैं, परन्तु सम्यग्दर्शन एक बार भी प्राप्त नहीं किया। लाखों जीवोंकी हिंसाके पापकी अपेक्षा मिथ्यादर्शनका पाप अनन्त-गुना है। सम्यक्त्व सरल नहीं है, लाखों-करोड़ोंमें किसी विरल जीवको ही वह होता है। सम्यक्त्वी जीव अपना निर्णय आप ही कर सकता है। सम्यक्त्वी समस्त ब्रह्माण्डके भावोंको पी गया होता है। ..सम्यक्त्व वह कोई अलग ही वस्तु है। सम्यक्त्व रहित क्रियाएं इकाई बिना शून्यके समान हैं। सम्यक्त्वका स्वरूप अत्यन्त ही सूक्ष्म है।.. हीरेका मूल्य हजारों रुपया होता है, उसके पहल पड़नेसे खिरी हुई रजका मूल्य सैकड़ों रुपया होता है; उसी प्रकार सम्यक्त्व-हीरेका मूल्य तो अमूल्य है, वह यदि मिल गया तब तो कल्याण हो जायेगा, परन्तु वह नहीं मिला तब भी 'सम्यक्त्व कोई अलग ही वस्तु है'—इस प्रकार उसका माहात्म्य समझकर उसे प्राप्त करनेकी उत्कण्ठारूप रज भी महान लाभ देती है।

जानपना वह ज्ञान नहीं है। सम्यक्त्व सहित जानपना ही ज्ञान है। ग्यारह अंग कण्ठाग्र हों परन्तु सम्यक्त्व न हो तो वह अज्ञान है। आजकल तो सब अपने-अपने घरका सम्यक्त्व मान बैठे हैं। सम्यक्त्वीको तो मोक्षके अनन्त अतीन्द्रिय सुखका नमूना प्राप्त हो गया है। वह नमूना मोक्षसुखके अनन्तवें भाग होने पर भी अनन्त है। ६१.

*

* साधक जीवकी दृष्टि *

अध्यात्ममें सदा निश्चयनय ही मुख्य है; उसीके आश्रयसे धर्म होता है। शास्त्रोंमें जहाँ विकारी पर्यायोंका व्यवहारनयसे कथन किया जाये वहाँ भी निश्चयनयको ही मुख्य और व्यवहारनयको गौण करनेका आशय है—

ऐसा समझना; क्योंकि पुरुषार्थ द्वारा अपनेमें शुद्धपर्याय प्रगट करने अर्थात् विकारी पर्याय टालनेके लिये सदा निश्चयनय ही आदरणीय है; उस समय दोनों नयोंका ज्ञान होता है परन्तु धर्म प्रगट करनेके लिये दोनों नय कभी आदरणीय नहीं हैं। व्यवहारनयके आश्रयसे कभी धर्म अंशतः भी नहीं होता, परन्तु उसके आश्रयसे तो राग-द्वेषके विकल्प ही उठते हैं।

छहों द्रव्य, उनके गुण और उनकी पर्यायोंके स्वरूपका ज्ञान करानेके लिये कभी निश्चयनयकी मुख्यता और व्यवहारनयकी गौणता रखकर कथन किया जाता है और कभी व्यवहारनयको मुख्य करके तथा निश्चयनयको गौण रखकर कथन किया जाता है; स्वयं विचार करे उसमें भी कभी निश्चयनयकी मुख्यता और कभी व्यवहारनयकी मुख्यता की जाती है; अध्यात्मशास्त्रमें भी जीवकी विकारी पर्याय जीव स्वयं करता है इसलिये होती है और वह जीवका अनन्य परिणाम है—ऐसा व्यवहारनयसे कहनेमें-समझानेमें आता है; परन्तु उस हर समय निश्चयनय एक ही मुख्य तथा आदरणीय है ऐसा ज्ञानियोंका कथन है। शुद्धता प्रगट करनेके लिये कभी निश्चयनय आदरणीय है और कभी व्यवहारनय आदरणीय है—ऐसा मानना वह भूल है। तीनों काल अकेले निश्चयनयके आश्रयसे ही धर्म प्रगट होता है ऐसा समझना।

साधक जीव प्रारम्भसे अन्त तक निश्चयकी ही मुख्यता रखकर व्यवहारको गौण ही करते जाते हैं, इसलिये साधकदशामें निश्चयकी मुख्यताके बलसे साधकको शुद्धताकी वृद्धि ही होती जाती है और अशुद्धता टलती ही जाती है। इस प्रकार निश्चयकी मुख्यताके बलसे पूर्ण केवलज्ञान होने पर वहाँ मुख्य-गौणपना नहीं होता और नय भी नहीं होते। ६२.

*

पहले निर्णय करो कि इस जगतमें सर्वज्ञताको प्राप्त कोई आत्मा है या नहीं? यदि सर्वज्ञ हैं, तो उनके वह सर्वज्ञतारूपी कार्य किस खानमेंसे निकला है? चैतन्यशक्तिकी खानमें सर्वज्ञतारूपी कार्यका कारण होनेकी शक्ति भरी पडी है। ऐसी चैतन्यशक्तिके सन्मुख होकर सर्वज्ञताका स्वीकार करने पर उसमें अपूर्व पुरुपार्थ आता है। 'सर्वज्ञताका स्वीकार करनेसे पुरुपार्थ उड जाता है' यह मान्यता तो एक महान भूल है। केवलज्ञान और उसके कारणकी प्रतीति करनेसे जिसको स्वसन्मुखताका अपूर्व पुरुपार्थ प्रगट होता है वह जीव निःशंक हो जाता है कि अपने आत्माके आधारसे सर्वज्ञकी प्रतीति करके मैने मोक्षमार्गका पुरुपार्थ प्रारम्भ किया है, और सर्वज्ञके ज्ञानमें भी इसी प्रकार आया है;—मै अल्प कालमें मोक्ष प्राप्त करनेवाला हूँ और भगवानके ज्ञानमें भी ऐसा ही आया है। ६३.

*

अहा! सन्त आत्माका सुन्दर एकत्व-विभक्त स्वरूप बतलाते हैं। अपूर्व प्रीति लाकर वह श्रवण करने योग्य है। जगतका परिचय छोडकर, प्रेमसे आत्माका परिचय करके भीतर उसका अनुभव करने योग्य है। ऐसे अनुभवमें परम शान्ति प्रगट होती है, और अनादिकी अशान्ति मिट जाती है। आत्माके ऐसे स्वभावका श्रवण-परिचय-अनुभव दुर्लभ है, परन्तु वर्तमानमें उसकी प्राप्तिका सुलभ अवसर आया है। इसलिये हे जीव! दूसरा सब भूलकर तू अपने शुद्ध स्वरूपको लक्षमें ले, और उसमें निवास कर। यही करने योग्य है। ६४.

*

सत्समागमसे आत्माकी पहिचान करके आत्मानुभव करो। आत्मानुभवका ऐसा माहात्म्य है कि परिपह आने पर भी जीवकी ज्ञानधारा विचलित नही होती। तीन काल और तीन लोककी प्रतिकूलताके ढेर एकसाथ सामने

आकर खडे हो जायें तथापि मात्र ज्ञातारूप रहकर वह सब सहन करनेकी शक्ति आत्माके ज्ञायकस्वभावकी एक समयकी पर्यायमें विद्यमान है। शरीरादि एवं रागादिसे भिन्नरूप जिसने आत्माको जाना उसे वे परिषहोंके ढेर किंचित् भी असर नहीं कर सकेंगे—चैतन्य अपनी ज्ञातृधारासे जरा भी विचलित नहीं होगा और स्वरूपस्थिरतापूर्वक दो घडी स्वरूपमें लीनता होगी तो पूर्ण केवलज्ञान प्रगट करेगा. जीवन्मुक्तदशा होगी और मोक्षदशा होगी। ६५.

*

रागके विकल्पसे खण्डित होता था वह जीव स्वरूपका निर्णय करके भीतर स्वरूपमें स्थिर हुआ वहाँ जो खण्ड होता था वह रुक गया और अकेला आत्मा अनन्त गुणोंसे भरपूर आनन्दस्वरूप रह गया। मै शुद्ध हूँ, मै अशुद्ध हूँ, मै बद्ध हूँ, मै अबद्ध हूँ—ऐसे विकल्प थे वे छूट गये और जो अकेला आत्मतत्त्व रह गया उसका नाम सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा वही समयसार है। समयसार यह पन्ने नहीं, अक्षर नहीं; वे तो जड हैं। आत्माके आनन्दमें लीनता ही समयसार है। आत्मस्वरूपका बराबर निर्णय करके विकल्प छूट जायें, पश्चात् अनन्तगुणसामर्थ्यसे भरपूर अकेला रहा जो निज शुद्धात्मतत्त्व वही समयसार है। ६६.

*

अहो धन्य यह मुनिदशा! मुनिराज कहते है कि हम तो चिदानन्द-स्वभावमें झूलनेवाले हैं; हम इस संसारके भोग हेतु अवतरित नहीं हुए हैं। हम तो अब अपने आत्मस्वभावकी ओर झुकते हैं। अब हमारा स्वरूप-स्थित होनेका समय आ गया है। अन्तरके आनन्दकन्दस्वभावकी श्रद्धा सहित उसमें रमणता करने हेतु जागृत हुए उस भावमें अब भङ्ग नहीं पडेगा। अनन्त तीर्थंकर जिस पथ पर विचरे उसी पथके हम पथिक हैं। ६७

*

हे भव्य! तू भावश्रुतज्ञानरूपी अमृतका पान कर। सम्यक् श्रुतज्ञान द्वारा आत्माका अनुभव करके निर्विकल्प आनन्दरसका पान कर, जिससे तेरी अनादि मोहतृषाका दाह मिट जाये। तूने चैतन्यरसके प्याले कभी नहीं पिये हैं, अज्ञानसे तूने मोह-राग-द्वेषरूपी विषके प्याले पिये हैं। भाई! अब तो वीतरागके वचनामृत प्राप्त करके अपने आत्माके चैतन्यरसका पान कर; जिससे तेरी आकुलता मिटकर सिद्धपदकी प्राप्ति हो। आत्माको भूलकर बाह्य भावोंका अनुभव वह तो विषका पान करने जैसा है; भले ही शुभराग हो, परन्तु उसके स्वादमें भी कहीं अमृत नहीं है, विष ही है। इसलिये उससे भी भिन्न ज्ञानानन्दस्वरूप आत्माको श्रद्धामें लेकर उसीके स्वानुभवरूपी अमृतका पान कर। अहा! श्रीगुरु वत्सलतासे चैतन्यके प्रेम-रसका प्याला पिलाते हैं। वीतरागकी वाणी आत्माका परम-शांतरस दिखानेवाली है। ऐसे वीतरागी शांत चैतन्यरसका अनुभव वह भावशुद्धि है। उसीके द्वारा तीन लोकमें सर्वोत्तम परम-आनन्दस्वरूप सिद्धपदकी प्राप्ति होती है। ६८.

*

मैं ज्ञायक हूँ.. ज्ञायक हूँ... ज्ञायक हूँ—इस प्रकार अन्तरमें घोटते रहना, ज्ञायककी ओर झुकना, ज्ञायकके सन्मुख एकाग्रता करना। अहाहा! पर्यायको ज्ञायकोन्मुख करना बहुत कठिन है, उसमें अनन्त पुरुषार्थ चाहिये। ज्ञायकतलमें पर्याय पहुँची, अहाहा! उसकी क्या बात! ऐसा पूर्णानन्दका नाथ प्रभु उसकी प्रतीतिमें, उसके विश्वासमें—भरोसेमें आना चाहिये कि अहो! एक समयकी पर्यायके पीछे इतना महान भगवान वह मैं ही हूँ। ६९.

*

संयोगका लक्ष छोड़ दे और निर्विकल्प एकरूप वस्तु है उसका

आश्रय ले। 'वर्तमानमें त्रिकाली ज्ञायक वह मैं हूँ' ऐसा आश्रय कर। गुण-गुणीके भेदका भी लक्ष छोड़कर एकरूप गुणीकी दृष्टि कर। तुझे समता होगी, आनन्द होगा, दुःखका नाश होगा। एक चैतन्यवस्तु ध्रुव है, उसमें दृष्टि लगानेसे तुझे मुक्तिका मार्ग प्रगट होगा। अभेद वस्तु कि जिसमें गुण-गुणीके भेदका भी अभाव है वहाँ जा, तुझे धर्म होगा, रागसे तथा दुःखसे छूटनेका मार्ग तुझे हाथ लगेगा। ७०.

*

अहा! मुनिदशा कैसी होती है उसका विचार तो करो! छठवें-सातवें गुणस्थानमें झूलते वे मुनि स्वरूपमें गुप्त हो गये होते हैं। प्रचुर स्वसंवेदन ही मुनिका भावलिंग है, और शरीरकी नग्नता—वस्त्र-पात्ररहित निर्ग्रन्थ दशा—वह उनका द्रव्यलिंग है। उनको अपवाद—व्रतादिका शुभ राग आता है, किन्तु वस्त्रग्रहणका अथवा अधःकर्म तथा उद्देशिक आहार लेनेका भाव नहीं होता। अहा! श्री ऋषभदेव भगवानको मुनिदशामें प्रथम छह महीनेके उपवास थे, फिर आहारका विकल्प उठता था, परन्तु मुनिकी विधिपूर्वक आहार नहीं मिलनेसे विकल्प तोड़कर भीतर आनन्दमें रहते थे। आनन्दमें रहना ही आत्माका कर्तव्य है। ७१.

*

हम दूसरोंका कुछ भी कर सकते हैं ऐसा माननेवाले चौरासीके अवतारमें रुलेंगे। आत्मा तो मात्र ज्ञाताद्रष्टा है; उसीका कार्य मैं कर सकता हूँ ऐसा नहीं माना और मैं परवस्तुका कर सकता हूँ ऐसा जिसने माना उसके अपने चैतन्यकी जागृति दब गई इसलिये उस अपेक्षासे वह जड है। इससे कहीं ऐसा नहीं समझना कि चैतन्य मिटकर जडद्रव्य हो जाता है। यदि आत्मा जड हो जाता हो तो 'तू समझ, आत्माको पहिचान' ऐसा सम्बोधन भी नहीं किया जा सकता। यह तो कई बार कहते हैं कि

आबालवृद्ध, राजासे रंक—सब आत्मा प्रभु हैं, सर्व आत्मा परिपूर्ण भगवान हैं, सर्व आत्मा वर्तमानमें अनन्त गुणोंसे भरे हैं; परन्तु उसकी प्रतीति न करे, पहिचाने नहीं और जड़के कर्त्तव्यको अपना कर्त्तव्य माने, जड़के स्वरूपको अपना स्वरूप माने, उसकी दृष्टिमें उसे जड़ ही भासित होता है इसलिये उसे जड कहा है। ७२.

*

अनादि-अनन्त ऐसा जो एक निज शुद्ध चैतन्यस्वरूप उसका स्वसन्मुख होकर आराधन करना ही परमात्मा होनेका सच्चा उपाय है। ७३.

*

नरकादिके दुःखोंका वर्णन वह कोई जीवोंको भयभीत करनेके लिये झूठा कल्पित वर्णन नहीं है। परन्तु तीव्र पापके फलको भोगनेके स्थान जगतमें विद्यमान हैं। जिस प्रकार धर्मका फल मोक्ष है, पुण्यका फल स्वर्ग है, उसी प्रकार पापका फल जो नरक वह स्थान भी है। अज्ञानपूर्वक तीव्र हिंसादि पाप करनेवाले जीव ही वहाँ जाते हैं, और वहाँ उत्पन्न होते ही महादुःख पाते हैं। उनकी वेदनाका चीत्कार वहाँ कौन सुने? पहले पाप करते हुए पीछे मुड़कर देखा हो, या धर्मकी परवाह की हो, तो शरण मिले न? इसलिये हे जीव! तू ऐसे पाप करनेसे चेत जाना! इस भवके बाद जीवको अन्यत्र कहीं जाना है—यह लक्षमें रखना। आत्माका वीतरागविज्ञान ही एक ऐसी वस्तु है कि जो तुझे यहाँ तथा परभवमें भी सुख प्रदान करे। ७४.

*

धर्मात्माओंके प्रति दान तथा बहुमानका भाव आये उसमें अपनी धर्मभावनाका घोटन होता है। जिसे स्वयं धर्मका प्रेम है उसे अन्य धर्मात्माके प्रति प्रमोद, प्रेम एवं बहुमान आता है। धर्म धर्मीजीवके

आधारसे है, इसलिये जिसे धर्मीजीवोंके प्रति प्रेम नहीं है उसे धर्मका ही प्रेम नहीं है। भव्य जीवोंको साधर्मी सज्जनोंके साथ अवश्य प्रीति करना चाहिये। ७५.

*

धर्मात्माको अपना रत्नत्रयस्वरूप आत्मा ही परमप्रिय है, संसार सम्बन्धी दूसरा कुछ भी प्रिय नहीं है। जिस प्रकार गायको अपने बछड़ेके प्रति तथा बालकको अपनी माताके प्रति कैसा प्रेम होता है, उसी प्रकार धर्मात्माको अपने रत्नत्रयस्वभावरूप मोक्षमार्गके प्रति अभेदबुद्धिसे परम वात्सल्य होता है। अपनेको रत्नत्रयधर्ममें परमवात्सल्य होनेसे अन्य रत्नत्रयधर्मधारी जीवोंके प्रति भी उनको वात्सल्य उमड़े बिना नहीं रहता। ७६.

*

बाह्य क्रियाकाण्डमें लोगोंको रुचि हो गई है, और अन्तरकी यह ज्ञायकवस्तु छूट गई है। वस्तु क्या है? उसका स्वरूप कैसा है? इत्यादि प्रकारसे उसका मंथन होना चाहिये। वस्तुस्वरूपको समझे बिना जीवोंका सीधा धर्म करना है! प्रतिमा धारण कर लेते हैं, हो सका तो साधु बन जाते हैं; बस, हो गया धर्म! किन्तु भाई! सम्यग्दर्शनके बिना प्रतिमा या साधुपना कैसा? आत्मार्थीका श्रवण-पठन-मनन सब मुख्यतः आत्माके लिये है, सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेके लिये है। ७७

*

प्रत्येक द्रव्य अपने द्रव्य-गुण-पर्यायसे है। जीव जीवके द्रव्य-गुण-पर्यायसे है और अजीव अजीवके द्रव्य-गुण-पर्यायसे है। इस प्रकार सभी द्रव्य परस्पर असहाय हैं; प्रत्येक द्रव्य स्वसहायी है तथा परसे असहायी है। प्रत्येक द्रव्य किसी भी परद्रव्यकी सहायता लेता भी नहीं है और

कोई भी परद्रव्यको सहायता देता भी नहीं है। शास्त्रमें 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' कथन आता है, परन्तु वह कथन उपचारसे है। वह तो उस-उस प्रकारके निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्धका ज्ञान करानेके लिये है। उस उपचारका सच्चा ज्ञान वस्तुस्वरूपकी मर्यादा समझमें आये तभी होता है, अन्यथा नहीं होता। ७८.

*

तालावकी ऊपरी सतह बाहरसे एकसी लगती है, परन्तु भीतर उतरकर उसकी गहराईका माप करने पर किनारे और मध्यकी गहराईमें कितना अंतर है वह ज्ञात होता है; उसी प्रकार ज्ञानी और अज्ञानीके वचन ऊपर-ऊपरसे देखनेमें समान लगते हैं, किन्तु अंतरका गम्भीर रहस्य देखने पर उनके आशयमें कितना अंतर है वह समझमें आता है। ७९.

*

चाहे जैसे संयोगमें, क्षेत्रमें या कालमें जो जीव स्वयं निश्चयस्वभावका आश्रय करके परिणमता है वही जीव मोक्षमार्ग तथा मोक्षको प्राप्त होता है; और जो जीव शुद्धस्वभावका आश्रय नहीं करता तथा पराश्रित ऐसे व्यवहारका आश्रय करता है वह जीव किसी संयोगमें, क्षेत्रमें या कालमें सम्यग्दर्शनादि प्राप्त नहीं करता। तात्पर्य यह है कि शुद्धनय त्यागने योग्य नहीं है, क्योंकि उसके अत्यागसे बन्ध नहीं होता और उसके त्यागसे बन्ध ही होता है। ८०.

*

परके लिये तो एक बार मृतकवत् हो जाना चाहिये। परमें तेरा कोई अधिकार ही नहीं है। अरे भाई! तू रागको तथा रजकणको नहीं कर सकता ऐसा ज्ञाताद्रष्टा पदार्थ है। ऐसे ज्ञाताद्रष्टास्वभावकी दृष्टि कर। चारों ओरसे उपयोगको समेटकर एक आत्मामें ही जा। ८१.

*

ध्रुवका मूल्य अधिक है। आनन्दकी पर्याय तो एक समयकी है और ध्रुवमें तो आनन्दके ढेर भरे हैं। ८२.

*

पं० भागचन्दजी कृत 'सत्तास्वरूप'में, अर्हन्तका स्वरूप जानकर गृहीत मिथ्यात्व टालनेका स्वरूप बडी अच्छी तरह समझाया है। परमार्थ-तत्त्वके विरोधी ऐसे कुदेव, कुगुरु तथा कुशास्त्रको अच्छा मानना वह गृहीत मिथ्यात्व है। मैं परका कर्ता हूँ, (कर्मसे) बाधित हूँ, परसे भिन्न—स्वतन्त्र नहीं हूँ, शुभरागसे मुझे लाभ होता है—ऐसी जो विपरीत मान्यता अनादिसे है वह अगृहीत मिथ्यात्व अथवा निश्चयमिथ्यात्व है। उस निश्चयमिथ्यात्वको हटानेसे पूर्व, जो गृहीत मिथ्यात्व अथवा व्यवहार मिथ्यात्व है उसे हटाना चाहिये। ८३.

*

परिणाम परिणामीसे (द्रव्यसे) भिन्न नहीं है, क्योंकि परिणाम और परिणामी अभिन्न वस्तु है—भिन्न-भिन्न दो नहीं है। पर्याय जिसमेंसे हो उससे वह भिन्न वस्तु नहीं हो सकती। सोना और सोनेका गहना दोनों अलग हो सकते हैं? कदापि नहीं होते। सोनेमेंसे अंगूठीकी अवस्था हुई, वहाँ अंगूठीरूप अवस्था कहीं रह गई और सोना अन्यत्र कहीं रह गया ऐसा हो सकता है? कभी नहीं होता। कोई कहे कि—अँगूठी तो सोनारने बनाई है, परन्तु सोनारने अँगूठी नहीं बनाई, किन्तु अँगूठी बनानेकी इच्छा सोनारने की है। इच्छाका कर्त्ता सोनार है, परन्तु अँगूठीका कर्त्ता सोनार नहीं है, सोनार तो मात्र निमित्त है, उसने अँगूठी नहीं बनाई है। अँगूठीका कर्त्ता सोना है, सोनेमेंसे ही अँगूठी हुई है; उसी प्रकार चैतन्यकी जो भी अवस्था होती है वह चैतन्यद्रव्यसे अभिन्न होनेसे उसका कर्त्ता चैतन्य है और जडकी जो भी अवस्था हो वह जड़ द्रव्यसे अभिन्न होनेके कारण उसका कर्त्ता जड़ है। इसलिये

ऐसा सिद्ध हुआ कि जो भी क्रियाएँ हैं वे सभी क्रियावान अर्थात् द्रव्यसे भिन्न नहीं हैं। वस्तुके विना अवस्था नहीं होती और अवस्थाके विना वस्तु नहीं हो सकती। ८४.

*

अध्यात्मशास्त्रके भाव कोई चाहे जिसके पाससे सुन ले अथवा अपने आप पढ़ ले तो स्वच्छन्दसे अपूर्व आत्मबोध प्रगट नहीं होता। गुरुगमरूपसे एक बार ज्ञानीके निकट साक्षात्—सीधा श्रवण करना चाहिये। 'दीपसे दीप जलता है।' सत् झेलनेके लिये अपना उपादान तैयार हो वहाँ ज्ञानीके निमित्तपनेका योग सहज होता ही है। श्रीमद्‌ने कहा है कि—

बूझी चहत जो प्यासको, है बूझनकी रीत;
पावे नहि गुरुगम विना, यही अनादि स्थित। ८५.

*

परमपारिणामिक भाव हूँ, कारणपरमात्मा हूँ, कारणजीव हूँ, शुद्धोपयोगोऽहं, निर्विकल्पोऽहं। ८६.

*

जिनवाणीमें मोक्षमार्गका कथन दो प्रकारसे है: अखण्ड आत्मस्वभावके अवलम्बनसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग प्रगट हुआ वह सच्चा मोक्षमार्ग है, और उस भूमिकामें जो महाव्रतादिका राग-विकल्प है वह मोक्षमार्ग नहीं है किन्तु उसे उपचारसे मोक्षमार्ग कहा है। आत्मामें वीतराग शुद्धिरूप जो निश्चय मोक्षमार्ग प्रगट हुआ वह सच्चा, अनुपचार, शुद्ध, उपादान एवं यथार्थ मोक्षमार्ग है, और उस काल वर्तते हुए अट्ठाईस मूलगुण आदिके शुभ रागको—वह सहचर तथा निमित्त होनेसे—मोक्षमार्ग कहना वह उपचार है, व्यवहार है। पं० श्री टोडरमलजीने कहा है न!—

"मोक्षमार्ग तो कहीं दो नहीं हैं, मोक्षमार्गका निरूपण दो प्रकारसे

है। जहां सच्चे मोक्षमार्गको 'मोक्षमार्ग' निरूपित किया है वह 'निश्चय-मोक्षमार्ग' है, और जहाँ मोक्षमार्ग तो है नहीं, परन्तु मोक्षमार्गका निमित्त है अथवा सहचारी है उसे उपचारसे मोक्षमार्ग कहा वह 'व्यवहार-मोक्षमार्ग' है; क्योंकि निश्चय-व्यवहारका सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है। सच्चा निरूपण सो निश्चय, उपचार निरूपण सो व्यवहार। इसलिये निरूपणकी अपेक्षासे दो प्रकार मोक्षमार्ग जानना। परन्तु एक निश्चयमोक्षमार्ग है तथा एक व्यवहार मोक्षमार्ग है—इस प्रकार दो मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है। ८७

*

जैनधर्मकी महत्ता यह है कि मोक्षके कारणभूत सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रादि शुद्ध भावोंकी प्राप्ति उसीमें होती है। उसीसे जैनधर्मकी श्रेष्ठता है। इसलिये हे जीव! ऐसे शुद्ध भाव द्वारा ही जैनधर्मकी महिमा जानकर तू उसे अंगीकार कर, और रागको-पुण्यको धर्म न मान। जैन धर्ममें तो सर्वज्ञ भगवानने ऐसा कहा है कि जो पुण्यको धर्म मानता है वह मात्र भोगकी ही इच्छा रखता है, क्योंकि पुण्यके फलमें तो स्वर्गादिके भोगोंकी ही प्राप्ति होती है; इसलिये जिसे पुण्यकी भावना है उसे भोगकी ही अर्थात् संसारकी ही भावना है, किन्तु मोक्षकी भावना नहीं है। ८८.

*

भरत चक्रवर्ती और बाहुबली दोनों भाइयोंमें युद्ध हुआ। साधारण लोगोंको तो ऐसा लगेगा कि दोनों सम्यग्ज्ञानी, दोनों सगे भाई, तथा उसी भवमें दोनों मोक्ष जानेवाले हैं, तो फिर यह क्या? परन्तु युद्ध करते समय भी भान है कि मै इस सबसे भिन्न हूँ; वे युद्धके ज्ञाता हैं। जो क्रोध होता है उस क्रोधके भी ज्ञाता है। अपने शुद्ध, पवित्र आनन्दघनस्वभावकी प्रतीति वर्तती है, परन्तु अस्थिरता होनेसे युद्धभूमिमें खडे हैं। भरत चक्रवर्ती जब जीत नहीं सके तब, बाहुबली पर चक्र

छोड़ते हैं। उसी समय बाहुबलीको वैराग्य जागृत होता है कि अरे! धिक्कार है इस राज्यको! इस जीवनमें राज्यके लिये यह क्या? ज्ञानी पुण्यसे भी सन्तुष्ट नहीं हैं और पुण्यके फलसे भी सन्तुष्ट नहीं हैं। बाहुबलीजी कहते हैं कि मैं चिदानन्द आत्मा परसे भिन्न हूँ, उसे यह नहीं होना चाहिये, यह शोभा नहीं देता! धिक्कार है ऐसे राज्यको! इस प्रकार वैराग्य आनेसे मुनिपना अंगीकार किया। बिल्ली जिस मुँहसे अपने बच्चेको पकडती है उसी मुँहसे चूहेको पकडती है, किन्तु 'पकड पकडमें फेर है', उसी प्रकार ज्ञानी और अज्ञानीकी क्रिया एक जैसी दिखायी देने पर भी भावोंमें बड़ा अन्तर होता है। ८९.

*

प्रत्येक द्रव्य स्वतन्त्र है, कोई किसीका कुछ कर नहीं सकता। स्वतन्त्रताकी यह बात समझनेमें मँहगी लगती है, परन्तु जितना काल संसारमें गया उतना काल मुक्ति प्रगट करनेमें नहीं चाहिये, इसलिये सत्य वह सुलभ है। यदि सत्य मँहगा हो तो मुक्ति किसकी होगी? इसलिये जिसे आत्महित करना हो उसे सत्य निकट ही है। ९०.

*

यह समयसार शास्त्र आगमोंका भी आगम है; लाखों शास्त्रोंका सार इसमें भरा है; जैनशासनका यह स्तंभ है; साधककी यह कामधेनु है; कल्पवृक्ष है; चौदह पूर्वका रहस्य इसमें समाया हुआ है। इसकी प्रत्येक गाथा छठ्ठे-सातवें गुणस्थानमें झूलते हुए महामुनिके आत्म-अनुभवमेंसे निकली है। ९१.

*

स्वरूपमें लीनताके समय पर्यायमें भी शान्ति और वस्तुमें भी शान्ति, आत्माके आनन्दरसमें शान्ति, शान्ति और शान्ति; वस्तु और पर्यायमें ओतप्रोत शान्ति। रागमिश्रित विचार था वह खेद छूटकर पर्यायमें और

वस्तुमें समता, समता और समता; वर्तमान पर्यायमें भी समता और त्रैकालिक वस्तुमें भी समता। आत्माका आनन्दरस बाहर और भीतर सर्व प्रकार प्रस्फुटित हो जाता है; आत्मा विकल्पके जालको लाँघकर आनन्द-रसरूप ऐसे अपने स्वरूपको प्राप्त होता है। ९२.

*

स्याद्वाद तो सनातन जैनदर्शन है; उसे जैसा है वैसा समझना चाहिये। वस्तु त्रैकालिक ध्रुव है; उसकी अपेक्षासे एक समयकी शुद्ध पर्यायको भी भले ही हेय कहते हैं; परन्तु दूसरी ओर, शुभ राग आता है—होता है; उसके निमित्त देव-शास्त्र-गुरुकी श्रद्धाका शुभ राग होता है। भगवानकी प्रतिमा होती है; उसे जो न माने वह भी मिथ्यादृष्टि है। भले ही उससे धर्म नहीं होता, परन्तु उसका उत्थापन करे तो मिथ्यादृष्टि है। शुभ राग हेय है, दुःखरूप है, परन्तु वह भाव होता है; उसके निमित्त भगवानकी प्रतिमा आदि होते हैं। उनका निषेध करे तो वह जैन-दर्शनको नहीं समझा है, इसलिये वह मिथ्यादृष्टि है। ९३.

*

ज्ञानीका आंतरिक जीवन समझनेके लिये अन्तरकी पात्रता चाहिये। पूर्वप्रारब्धके योगसे बाह्य संयोगोंमे खड़े होने पर भी धर्मात्माकी परिणति अन्तरमें कुछ और ही कार्य करती है। जो संयोगदृष्टिसे देखे उसे स्वभाव समझमें नहीं आयेगा। धर्मात्माकी दृष्टि संयोग पर नहीं किन्तु आत्माका स्वपर-प्रकाशक स्वभाव क्या है उस पर होती है। ऐसी दृष्टिवाले धर्मात्माका आंतरिक जीवन अन्तरकी दृष्टिसे समझमें आता है, बाह्य संयोगों परसे उसका माप नहीं होता। ९४.

*

भवभ्रमणका अन्त लानेका सच्चा उपाय क्या? 'द्रव्यसंयमसे ग्रीवक पायो, फिर पीछो पटक्यो', वहाँ क्या करना शेष रहा?—मार्ग कोई

अलग ही है; आजकल तो उलटेसे ही शुरुआत की जाती है। यह क्रिया-काण्ड मोक्षमार्ग नहीं है, परन्तु पारमार्थिक आत्मा तथा सम्यग्दर्शनादिके स्वरूपका निर्णय करके स्वानुभव करना वह मार्ग है; अनुभवमें विशेष लीनता वह श्रावकमार्ग है और उससे भी विशेष स्वरूपरमणता वह मुनि-मार्ग है। साथमें वर्तते बाह्य व्रत-नियम तो अपूर्णताकी—कचासकी प्रगटता है। अरेरे! मोक्षमार्गकी मूल बातमें इतना बड़ा अन्तर पड़ गया है। ९५.

*

अखण्ड द्रव्य और पर्याय दोनोंका ज्ञान होने पर भी अखण्ड-स्वभावकी ओर लक्ष रखना, उपयोगकी एकाग्रता अखण्ड द्रव्यकी ओर ले जाना, वह अंतरमें समभावको प्रगट करता है। स्वाश्रय द्वारा बन्धका नाश करती जो निर्मल पर्याय प्रगट हुई उसे भगवान मोक्षमार्ग अर्थात् धर्म कहते हैं। ९६.

*

अहो! अडोल दिगम्बरवृत्तिको धारण करनेवाले, वनमें बसनेवाले और चिदानन्दस्वरूप आत्मामें डोलनेवाले मुनिवर, जो कि छठवें-सातवें गुणस्थानमें आत्माके अमृतकुण्डमें निमग्न हुए झूलते हैं, उनका अवतार सफल है। ऐसे संत-मुनिवर भी वैराग्यकी बारह भावनाएँ भाते हुए वस्तुस्वरूपका चिंतवन करते हैं। अहा! तीर्थंकर भी दीक्षासे पूर्व जिनका चिंतवन करते हैं ऐसी वैराग्यरसपूरित यह बारह भावनाएँ भाते हुए किस भव्यको आनन्द नहीं होगा? और किस भव्यको मोक्षमार्गका उत्साह नहीं जागेगा! ९७

*

दृष्टिका विषय द्रव्यस्वभाव है, उसमें तो अशुद्धताकी उत्पत्ति है ही नहीं। सम्यक्त्वीको एक भी अपेक्षासे अनन्त संसारका कारण ऐसे मिथ्यात्व

एवं अनन्तानुबन्धी कषायका बन्ध नहीं है; परन्तु उस परसे कोई ऐसा ही मान ले कि उसको किंचित् भी विभाव तथा बन्ध नहीं है, तो वह एकान्त है। अंतरमें शुद्धस्वरूपकी दृष्टि तथा अनुभव होने पर भी अभी आसक्ति है वह दुःखरूप लगती है। रुचि एवं दृष्टि-अपेक्षासे भगवान आत्मा तो अमृतस्वरूप आनन्दका सागर है, उसके आंशिक वेदनके समक्ष शुभ और अशुभ दोनों राग दुःखरूप लगते हैं, अभिप्रायमें विष और काले नाग जैसे लगते हैं। ९८.

*

आत्मा अचिन्त्य सामर्थ्यवान है। उसमे अनन्त गुणस्वभाव है। उसकी रुचि हुए बिना उपयोग परमेंसे हटकर स्वमें नहीं आ सकता। जो पापभावोंकी रुचिमें पडे हैं उनकी तो बात ही क्या? परन्तु पुण्यकी रुचिवाले बाह्य त्याग करें, तप करें, द्रव्यलिंग धारण करें तथापि जब तक शुभकी रुचि है तब तक उपयोग परकी ओरसे पलटकर स्वोन्मुख नहीं हो सकता। इसलिये प्रथम परकी रुचि बदलनेसे उपयोग परकी ओरसे हटकर स्वमें आ सकता है। मार्गकी यथार्थ विधिका यह क्रम है। ९९.

*

आज श्री महावीर भगवानके निर्वाणकल्याणकका मंगल दिन है। महावीर परमात्मा भी, इन सब आत्माओं जैसे ही आत्मा थे; उन्हें सत्समागमसे आत्माका भान हुआ और क्रमशः साधनाके उन्नतिक्रममें चढते-चढते तीर्थंकर हुए। जिस प्रकार चौंसठपहरी पीपलको पीसते-पीसते वह चरपरी-चरपरी होती जाती है, उसी प्रकार आत्मामें जो परमान्द शक्तिरूपसे भरा है वह (स्वसन्मुखताके अन्तर्मुख) प्रयास द्वारा बाहर आता है। महावीर भगवानने, अपने आत्मामें जो पूर्ण परमानन्द भरा था उसे स्वयं अनुक्रमसे प्रयास करके प्रगट कर लिया; मन, वाणी और शरीरसे भिन्न पूर्ण ज्ञानानन्दमय जो निज तत्त्व उसे पूर्णरूपसे साध लिया।

जिनको पूर्ण परमानन्द प्रगट हो गया है ऐसे परमात्मा पुनः अवतार नहीं लेते, परन्तु जगतके जीवोंमेंसे कोई जीव उन्नतिक्रममें चढ़ते-चढ़ते जगद्गुरु 'तीर्थंकर' होता है। जगतके जीवोंमें धर्म प्राप्त करनेकी योग्यता विकसित होती है तब ऐसा उत्कृष्ट निमित्त भी तैयार होता है।

जिस भावसे तीर्थंकर नामकर्म बँधता है वह शुभ भाव भी आत्माको (वीतरागताका) लाभ नहीं करता। वह शुभ राग टूटेगा तब भविष्यमें वीतरागता तथा केवलज्ञान होगा। महावीर भगवानका जीव पूर्व तीसरे भवमें नग्न दिगम्बर भावलिंगी मुनि था। वहाँ मुनिरूपसे स्वरूपरमणतामें रमते थे तब, उसमेंसे बाहर आने पर ऐसा विकल्प उठा कि—अहा! ऐसा चैतन्यस्वभाव! उसे सब जीव कैसे प्राप्त करें! सर्व जीव ऐसा स्वभाव प्राप्त करो! वास्तवमें इसका अर्थ यह है कि—अहा! ऐसा मेरा चैतन्य-स्वभाव कब पूर्ण प्रगट हो? मैं पूर्ण कब होऊँ? अन्तरमें ऐसी भावनाका जोर है, और बाह्यसे ऐसा विकल्प आता है कि 'अहा! ऐसा स्वभाव सर्व जीव कैसे प्राप्त करें!' ऐसे उत्कृष्ट शुभ भावसे उनके तीर्थंकर नाम-कर्म बँध गया।

महावीर भगवानको केवलज्ञान हुआ किन्तु वाणी छासठ दिनके बाद खिरी। केवलज्ञान तीन काल, तीन लोक, स्व पर समस्त द्रव्य तथा उनके अनन्त भावोंको युगपद् एक समयमें हस्तामलकवत् अत्यन्त स्पष्ट-रूपसे जानता है। भगवानने दिव्यध्वनिमें कहा है कि—आत्मामें अखण्ड आनन्दस्वभाव भरा है; जिसमें ज्ञानादि अनन्त स्वभाव भरे हैं ऐसे चैतन्यमूर्ति निज आत्माकी श्रद्धा करे, उसमें लीनता करे, तो उसमेंसे केवलज्ञानका पूर्ण प्रकाश अवश्य प्रगट होता है।

महावीर भगवानके जो यह गीत गाये जा रहे हैं वे उन जैसे अपने स्वरूपको प्रगट करनेके लिये हैं। वैसे स्वरूपको समझे तो वर्तमानमें भी एकावतारीपना प्रगट किया जा सकता है। उस स्वरूपको जो प्रगट करेगा उसकी अवश्य मुक्ति होगी। १००.

—*—

समयसारमर्मज्ञ स्वानुभवविभूषित अध्यात्मयुगप्रवर्तक
पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीका किया हुआ

✻ विशाल शास्त्रस्वाध्याय ✻

१ समयसार
२ प्रवचनसार ☐
३ पंचास्तिकायसंग्रह ☐
४ नियमसार ☐
५ अष्टपाहुड ☐
६ द्रव्यसंग्रह ☐
७ कार्तिकेयानुप्रेक्षा ☐
८ मोक्षमार्गप्रकाशक ☐
९ अनुभवप्रकाश ☐
१० समाधिशतक ☐
११ इष्टोपदेश ☐
१२ भक्तामर-स्तोत्र ☐
१३ सत्तास्वरूप ☐
१४ परमात्मप्रकाश ☐
१५ नाटकसमयसार ☐
१६ योगसार (अमितगति) ☐
१७ सम्यग्ज्ञानदीपिका ☐
१८ पद्मनन्दिपंचविंशतिका ☐
१९ तत्त्वज्ञानतरंगिणी ☐
२० तत्त्वार्थसार ☐
२१ धवला (प्रथम भाग) ☐
२२ आत्मानुशासन ☐
२३ कलशटीका (पं० राजमलजीकृत) ☐
२४ छहढाला ☐
२५ योगसार (योगीन्दुदेव) ☐
२६ अमृतकलश
२७ गोम्मटसार
२८ ज्ञानार्णव ☐
२९ स्वात्मानुभवमनन
३० चिद्विलास ☐
३१ आत्मावलोकन
३२ भगवती आराधना
३३ तत्त्वभावना
३४ रयणसार
३५ द्वादशानुप्रेक्षा (कुन्दकुन्दाचार्य) ☐
३६ पंचाध्यायी
३७ तत्त्वार्थसूत्र
३८ सर्वार्थसिद्धि
३९ तत्त्वार्थराजवार्तिक
४० तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक
४१ आप्तमीमांसा
४२ पुरुषार्थसिद्धयुपाय ☐

४३ त्रिलोकसार
४४ तिलोयपण्णत्ति
४५ धवलाके सब ग्रन्थ
४६ महाबन्ध
४७ जयधवला (प्रथमभाग) ☐
४८ जयधवला (प्रकाशित सब ग्रन्थ)
४९ अर्थप्रकाशिका
५० परमाध्यात्मतरंगिणी
५१ आलापपद्धति
५२ सर्वार्थसिद्धिवचनिका
५३ तत्त्वानुशासन
५४ वैराग्यमणिमाला
५५ परमानन्दस्तोत्र
५६ स्वरूपसंबोधन
५७ आदिपुराण
५८ उत्तरपुराण
५९ हरिवंशपुराण
६० पद्मपुराण
६१ शान्तिनाथपुराण
६२ ऐकीभावस्तोत्र ☐
६३ कल्याणमन्दिरस्तोत्र ☐
६४ विषापहारस्तोत्र ☐
६५ रहस्यपूर्णचिट्ठि ☐
६६ परमार्थवचनिका ☐
६७ भरतेशवैभव
६८ उपादान-निमित्त-चिट्ठि ☐
६९ ब्रह्मविलास
७० विद्वज्जनबोधक
७१ पाहुडदोहा
७२ सावयधम्मदोहा
७३ चर्चासमाधान
७४ जिनसहस्रनाम
७५ रत्नकरंडश्रावकाचार
७६ सागारधर्मामृत
७७ अणगारधर्मामृत
७८ आचारसार
७९ चारित्रसार
८० मूलाचार
८१ लाटीसंहिता
८२ अमितगति–श्रावकाचार
८३ लब्धिसार
८४ पंचसंग्रह
८५ वसुबिन्दुप्रतिष्ठापाठ
८६ सुदृष्टितरंगिणी
८७ सप्तभंगीतरंगिणी
८८ भावदीपिका
८९ अध्यात्मपंचसंग्रह
९० बनारसिविलास
९१ अध्यात्मकमलमार्तंड
९२ ज्ञानानन्दश्रावकाचार
९३ नयचक्रादिसंग्रह

९४ जैनसिद्धान्तदर्पण
९५ प्रमेयरत्नमाला
९६ परीक्षामुख
९७ आप्तपरीक्षा
९८ न्यायदीपिका
९९ युक्त्यानुशासन
१०० स्वयंभूस्तोत्र
१०१ स्तुतिविद्या
१०२ दर्शनसार
१०३ आराधनासार
१०४ रत्नमाला
१०५ पात्रकेसरीस्तोत्र
१०६ क्रियाकोष
१०७ श्रीमद्राजचन्द्र
१०८ प्रतिष्ठासारसंग्रह
१०९ लघुतत्त्वस्फोट
११० पंचस्तोत्र
१११ प्रथमगुच्छक
११२ क्षपणासार
११३ मुक्तिदूत
११४ वरांगचरित
११५ धर्मोपदेशरत्नमाला
११६ नयदर्पण
११७ पंचास्तिकायदर्पण
११८ क्रियाकोष
११९ न्यायप्रदीप
१२० धर्मविलास
१२१ सुभौमचरित्र
१२२ सुलोचनाचरित्र
१२३ बहिनश्रीके वचनामृत □
१२४ जैनतत्त्वमीमांसा
१२५ मूलाराधना
१२६ उपासकाध्ययन
१२७ वसुनन्दिश्रावकाचार
१२८ जिनेन्द्रसिद्धांतकोश
१२९ तत्त्वार्थवृत्ति
१३० जैनधर्म
१३१ सर्वार्थसिद्धि–प्रश्नोत्तर
१३२ तत्त्वार्थसूत्र (भास्करनंदी)
१३३ तत्त्वार्थबोध
१३४ सिद्धान्तसारसंग्रह
१३५ पञ्चसंग्रह
१३६ सुभाषितरत्नसन्दोह
१३७ बुद्धिविलास
१३८ श्रावकधर्मसंग्रह
१३९ मुनिसुव्रतकाव्य
१४० कुन्दकुन्दप्राभृतसंग्रह
१४१ अध्यात्मपदसंग्रह
१४२ दौलतविलास
१४३ अध्यात्मरहस्य
१४४ भावसंग्रह
१४५ जिनशतक

१४६ स्याद्वादसिद्धि
१४७ लघीयस्त्रयसंग्रह
१४८ न्यायदीपिका
१४९ आत्मबोध
१५० तत्त्वार्थदीपिका
१५१ अर्धकथानक
१५२ अध्यात्मतरंगिणी
१५३ नीतिवाक्यामृत
१५४ सारसमुच्चय
१५५ धर्मध्यानदीपक
१५६ प्रायश्चित्तसंग्रह
१५७ प्रायश्चित्तसमुच्चय
१५८ धर्मप्रश्नोत्तर
१५९ समीचीन धर्मशास्त्र
१६० रत्नमाला
१६१ अध्यात्मवाणी
१६२ चर्चाशतक
१६३ यतिक्रियामंजरी
१६४ सिद्धान्तसारादिसंग्रह
१६५ भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव
१६६ प्रतिक्रमणग्रन्थत्रयी
१६७ सामायिकपाठ
१६८ सुशीला–उपन्यास
१६९ अनित्यपञ्चाशत्
१७० खानिया–तत्त्वचर्चा
१७१ रत्नमंजूषा
१७२ दशभक्ति
१७३ बृहत्सामायिकपाठ
१७४ धर्मशर्माभ्युदय
१७५ तत्त्वसार
१७६ कसायपाहुडसुत्तं
१७७ सहजसुखसाधन
१७८ जैनदर्शन
१७९ मदनपराजय
१८० धर्मामृत
१८१ द्रव्यदृष्टिप्रकाश
१८२ जैनसिद्धांतप्रवेशिका
१८३ जैन–लक्षणावली

—तदुपरान्त दूसरे अनेक जैन-जैनेतर साहित्यका स्वाध्याय किया था।

नोंध :

* समयसार उपर शास्त्रसभामें १९ वार प्रवचन दिये थे।

□ चिह्न द्वारा दर्शित शास्त्र पर भी (किसी पर तो अनेक वार) प्रवचन दिये हैं।

अध्यात्मरसना राजवी कहानगुरु

शासन तणा शिरोमणि स्तवना करुं 'गुरु कहान'नी;
तुज दिव्य मूर्ति झळहळे, अध्यात्मरसना राजवी. १

अध्यात्म-कल्पवृक्षनां फळनो रसीलो तुं थयो;
तुं शुद्धरससाधक बन्यो, अन्तर तणी सृष्टि लह्यो. २

तुं लोकसंज्ञा जीतीने, अलमस्त थई जगमां फर्यो;
परमात्मनुं ध्यान ज धरी, तुज आत्मने स्वच्छ ज कर्यो. ३.

प्रतिबन्ध टाळी लोकनो, आनन्दनी मोजे रह्यो;
तें शुद्ध चेतनधर्मनो अनुभव हृदयमांही लह्यो. ४.

अन्तर तणा आनन्दमां सुरता लगावी प्रेमथी;
शुभ द्रव्यभावे तप तप्येथी शुद्धि करी शुभ नेमथी. ५.

निन्दा करी ना कोईनी, निन्दा करी सहु तें सही;
शुद्धात्मरस–भोगी भ्रमर, शुभदृष्टि तारामां रही. ६.

औदार्यने तें आदरी जगमां जणाव्युं बोलथी;
आचारमां मूकी घणुं जोयुं अनुभव–तोलथी. ७.

तारा हृदयनी गूढता त्यां मूढ जननी मूढता;
जे आत्मयोगी होय ते जाणे खरे तव शुद्धता. ८.

पहोंच्यो अने पहोंचाडतो तुं लोकने शुद्ध भावमां;
अध्यात्मरसिया जे थया, बेठा खरे शुद्ध नावमां. ९.

दुनिया थकी डरतो नथी, आशा नथी, ममता जरी;
ज्यां हुं वसुं त्यां तुं नहीं—अे भावना विलसे खरी. १०.

स्याद्वाद पारावार छे, आनन्द अपरंपार छे;
साचा हृदयनो सन्त छे, परवा नथी, जयकार छे. ११

आशा नथी कीर्ति तणी, अपकीर्तिने गणतो नथी;
लोको मने ए शुं कहे त्यां लक्षने देतो नथी. १२

व्यवहारना भेदो घणा त्यां क्लेशने करतो नथी;
लागी लगनवा आत्मनी, बीजुं कशुं जोतो नथी. १३.

तें भावसंयम—बोटमां बेसी प्रयाण ज आदर्युं;
भवपथ—उदधि तरवा विषे तें लक्ष अन्तरमां धर्युं. १४

जे जे भर्युं तुज चित्तमां, ते बाह्यमां देखाय छे;
अध्यात्मरसरसिया जनोथी तुज हृदय परखाय छे. १५

एकान्तथी अध्यात्ममां जे शुष्क थईने चालतो,
चाबुक तेने मारीने व्यवहारमांही वाळतो. १६

गम्भीर तारी वाणीमां भावार्थ बहु ऊंडा छतां,
जे हृदय तारुं जाणता ते भाव तारो खेंचता. १७

तुज वदन-कमळेथी वहे उपदेशनां अमृत अहो!
अध्यात्म—अमृत—पानथी वारी जता कोटी जनो. १८.

उपकार तारा शुं कथुं? गुणगान तारां शुं करुं?
वन्दन करुं, स्तवना करुं, तुज चरणसेवाने चहुं. १९

आदरणीय पं० श्री हिंमतलाल जे. शाह द्वारा वि. सं. १९९०में प्रस्तुत 'आध्यात्मिक संत श्री कानजीस्वामी 'मेंसे

* कुछ अवतरण *

* प्रामाणिक व्यापारी जीवन *

छोटी उम्रमें ही माता-पिताका स्वर्गवास हो जानेसे वे (पूज्य गुरुदेवश्री) आजीविका हेतु अपने बड़े भाई खुशालभाईके साथ पालेजमें चालू दूकानमें काम करने लगे। धीरे धीरे दूकान अच्छी जम गई।

व्यापारमें उनका वर्तन प्रामाणिक था। एक बार (करीब १६ वर्षकी उम्रमें) उन्हें किसी कारणवश बडौदाकी अदालतमें जाना पड़ा था। वहाँ उन्होंने न्यायाधीशके समक्ष सत्य स्थिति स्पष्टतासे कह दी थी; उनके चेहरे पर झलकती हुई स्पष्टवादिता, निर्दोषता एवं निडरताका न्यायाधीशके मन पर प्रभाव पडा और उनके द्वारा कही गई सारी स्थिति सत्य है ऐसा विश्वास आनेसे वह सारी स्थिति सम्पूर्णरूपसे स्वीकार की।

* परिवर्तन *

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीने वि. सं. १९९१की चैत्र शुक्ला त्रयोदशी और मंगलवारके दिन 'परिवर्तन' किया—स्थानकवासी सम्प्रदायका त्याग किया। सम्प्रदायका त्याग करनेवालोंको कैसी-कैसी अनेक महा विपत्तियाँ पडती है, बालबुद्धि लोगोंकी ओरसे अज्ञानके कारण उन पर कैसी अघटित निन्दाकी झडियाँ बरसती हैं, उनका उन्हें पूरी तरह ध्यान था, परन्तु उन निडर एवं निःस्पृह महात्माने उसकी कोई परवाह नहीं की। सम्प्रदायके हजारों श्रावकोंके हृदयमें महाराजश्री अग्रस्थान पर विराजमान थे इसलिये अनेक श्रावकोंने महाराजश्रीसे 'परिवर्तन' न

करनेके लिये अनेक प्रकारसे प्रेमभाव सहित प्रार्थना की थी। परन्तु जिनके रोम-रोममें वीतराग प्रणीत यथार्थ सन्मार्गके प्रति भक्ति उछल रही थी वे महात्मा उस प्रेमभरी प्रार्थनाके प्रभावमें आकर, रागमें वहकर सत्को कैसे गौण होने देते? सत्के प्रति परम भक्तिमें सर्व प्रकारकी प्रतिकूलताका भय और अनुकूलताका राग अत्यन्त गौण हो गये। जगतसे विलकुल निरपेक्ष-रूपसे हजारोंकी मानवमेदिनीमें दहाड़ता हुआ सिंह सत्के हेतु सोनगढ़के एकान्त स्थानमें जाकर बैठ गया।

* सम्प्रदाय पर परिवर्तनका प्रभाव *

जो स्थानकवासी सम्प्रदाय कानजीस्वामीके नामसे गौरवान्वित होता था उसमें महाराजश्रीके 'परिवर्तन'से खलबली मच जाना स्वाभाविक था। परन्तु महाराजश्रीने १९९१ की साल तक सौराष्ट्रमें लगभग प्रत्येक स्थानकवासीके हृदयमें प्रवेश कर लिया था। महाराजश्रीके पीछे सौराष्ट्र पागल हो गया था। इसलिये 'महाराजश्रीने जो किया होगा वह समझ-कर ही किया होगा' ऐसा सोचकर धीरे-धीरे अनेक लोग तटस्थ हो गये। कुछ लोग देखने आते थे कि सोनगढमें क्या चल रहा है, परन्तु महाराजश्रीका परम पवित्र जीवन एवं अपूर्व उपदेश सुनकर वे स्तंभित हो जाते थे, टूटा हुआ भक्तिका प्रवाह पुनः वहने लगता था। कोई-कोई तो पश्चात्ताप करते कि—'महाराज! आपके सम्बन्धमें विलकुल कल्पित बातें सुनकर हमने आपकी वहुत आशातना की है, वहुत कर्म बाँधे हैं, हमें क्षमा करना।' इस प्रकार ज्यों-ज्यों महाराजश्रीके पवित्र उज्ज्वल जीवन तथा आध्यात्मिक उपदेश सम्बन्धी बात लोगोंमें फैलती गई त्यों-त्यों अधिकाधिक लोगोंको महाराजश्रीके प्रति मध्यस्थता होती गई और अनेकोंकी साम्प्रदायिक मोहके कारण दवी हुई भक्ति पुनः प्रगट होती गई। मुमुक्षु एवं बुद्धिशाली वर्गकी परम भक्ति तो महाराजश्रीके प्रति पहलेकी ही भाँति

रही थी। अनेक मुमुक्षुओंके जीवनाधार कानजीस्वामी सोनगढ़ जाकर रहने लगे, तो मुमुक्षुओंका चित्त सोनगढ़की ओर आकर्षित हुआ। धीरे-धीरे मुमुक्षुओंका प्रवाह सोनगढकी ओर बहने लगा। साम्प्रदायिक मोह अत्यन्त दुर्निवार होने पर भी, सत्के अर्थी जीवोंकी संख्या त्रिकाल अत्यल्प होने पर भी, साम्प्रदायिक मोह तथा लौकिक भयको छोडकर सोनगढकी ओर बहता हुआ सत्संगार्थी जनोंका प्रवाह दिन-प्रतिदिन वेगपूर्वक बढ़ता ही जा रहा है।

※ समयसार, कुन्दकुन्दाचार्य और सीमधर भगवानके प्रति अपार भक्ति ※

परमपूज्य अध्यात्मयोगी गुरुदेवश्रीको समयसारजीके प्रति अतिशय भक्ति है, महाराजश्री समयसारजीको उत्तमोत्तम शास्त्र मानते हैं। समयसारजीकी बात करते हुए भी उन्हें अति उल्लास आ जाता है। समयसारजीकी प्रत्येक गाथा मोक्ष प्रदान करे ऐसी है ऐसा वे कहते हैं। भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेवके सर्व शास्त्रों पर उनको अत्यन्त प्रेम है। 'भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेवका हम पर महान उपकार है, हम उनके दासानुदास हैं' ऐसा वे अनेक बार भक्तिभीने अन्तरसे कहते हैं। श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव महाविदेहक्षेत्रमें सर्वज्ञ वीतराग श्री सीमंधर भगवानके समवसरणमें गये थे और वहाँ वे आठ दिन रहे थे—इस विषयमें महाराजश्रीको अणुमात्र शंका नहीं है। वे कोई बार पुकार कर कहते हैं : कल्पना करना नहीं, इन्कार करना नहीं, यह बात ऐसी ही है; मानो तब भी ऐसी ही है, न मानो तब भी ऐसी ही है। याथातथ्य बात है, अक्षरशः सत्य है, प्रमाणसिद्ध है।' श्री सीमंधर प्रभुके प्रति गुरुदेवको अपार भक्ति है। कभी-कभी सीमंधरनाथके विरहमे परम भक्तिवंत गुरुदेवके नेत्रोंसे अश्रुकी धारा बहती है।

※ अन्तर-विकास और मुमुक्षुओं पर परम-उपकार ※

परमपूज्य गुरुदेवश्रीके ज्ञान पर सम्यक्ताकी मुहर तो बहुत समयसे लग गई थी। वह सम्यग्ज्ञान सोनगढके विशेष निवृत्तिवाले स्थानमें अद्भुत सूक्ष्मताको प्राप्त हुआ; नवीन-नवीन ज्ञानशैली सोनगढ़में खूब विकसित हुई। अमृतकलशमें जैसे अमृत घुल रहा हो वैसे ही गुरुदेवके परम पवित्र अमृतकलशस्वरूप आत्मामें तीर्थंकरदेवके वचनामृतोंका खूब घोलन-मंथन हुआ। वह मथा हुआ अमृत कृपालु गुरुदेव अनेक मुमुक्षुओंको परोसते हैं और निहाल करते हैं। समयसार, प्रवचनसार आदि ग्रन्थों पर प्रवचन करते हुए गुरुदेवके प्रत्येक शब्दमें इतनी गहनता, सूक्ष्मता और नवीनता निकलती है कि वह श्रोताओंके उपयोगको भी सूक्ष्म बनाती है और विद्वानोंको आश्चर्यचकित करती है। जो अनन्त आनन्दमय चैतन्यघन दशा प्राप्त करके तीर्थंकरदेवने शास्त्रोंकी प्ररूपणा की, उस परम पवित्र दशाका सुधास्यन्दी स्वानुभूतिस्वरूप पवित्र अंश अपने आत्मामें प्रगट करके सद्गुरुदेव विकसित ज्ञानपर्याय द्वारा शास्त्रमें विद्यमान गहन रहस्य खोलकर मुमुक्षुओंको समझाकर अपार उपकार कर रहे है। सैकडों शास्त्रोंके अभ्यासी विद्वान भी गुरुदेवकी वाणी सुनकर उल्लास आ जानेसे कहते हैं, 'गुरुदेव! आपके वचनामृत अपूर्व हैं, उनका श्रवण करते हुए हमें तृप्ति ही नहीं होती। आप चाहे जो बात समझावो उसमेंसे हमें नई-नई जानकारी प्राप्त होती है। नवतत्त्वोंका स्वरूप या उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यका स्वरूप, स्याद्वादका स्वरूप या सम्यक्त्वका स्वरूप, निश्चय-व्यवहारका स्वरूप या व्रत-नियम-तपका स्वरूप, उपादान-निमित्तका स्वरूप या साध्य-साधनका स्वरूप, द्रव्यानुयोगका स्वरूप या चरणानुयोगका स्वरूप, गुणस्थानका स्वरूप या बाधक-साधकभावका स्वरूप, मुनिदशाका स्वरूप या केवलज्ञानका स्वरूप—जिस-जिस विषयका स्वरूप आपके श्रीमुखसे हम सुनते हैं उसमें हमें अपूर्वभाव दृष्टि-

गोचर होते हैं। हमने शास्त्रोंमेंसे जो अर्थ निकाले थे वे बिलकुल ढीले, जड-चेतनकी मिलावटवाले, शुभकी शुद्धमें खतौनी करनेवाले, संसारभावके पोषक, विपरीत एवं न्याय विरुद्ध थे; आपके अनुभवमुद्रित अपूर्व अर्थ टंकणक्षार जैसे, शुद्ध सुवर्ण सदृश, जड-चेतनको पृथक् करनेवाले, शुभ और शुद्धका स्पष्ट विभाग करनेवाले, मोक्षभावके ही पोषक, सम्यक् एवं न्याय-युक्त हैं। आपके प्रत्येक शब्दमें वीतरागदेवका हृदय प्रगट होता है; हम प्रत्येक वाक्यमें वीतरागदेवकी विराधना करते थे। हमारा एक भी वाक्य सच्चा नहीं था। शास्त्रमें ज्ञान नहीं है, ज्ञानपर्यायमें ज्ञान है—इस बातका अब हमें साक्षात्कार होता है। शास्त्रोंका गाया हुआ सद्गुरुका माहात्म्य अब हमारी समझमें आता है। शास्त्रोंके ताले खोलनेकी कुंजी वीतरागदेवने सद्गुरुको सौंपी है। सद्गुरुका उपदेश प्राप्त किये बिना शास्त्रोंका रहस्य समझना अत्यन्त-अत्यन्त दुर्लभ है।

※ अध्यात्ममस्तीसे भरपूर चमत्कारी व्याख्यानशैली ※

परमकृपालु गुरुदेवका ज्ञान जैसा अगाध एवं गम्भीर है वैसी ही उनकी व्याख्यानशैली चमत्कारपूर्ण है। वे जो बात कहना चाहते हैं उसे बडी स्पष्टतासे, अनेक सादा उदाहरण देकर, शास्त्रीय शब्दोंका कमसे कम प्रयोग करके समझाते हैं कि सामान्य मनुष्य भी उसे सरलतासे समझ जाता है। अत्यन्त गहन विषयको भी अत्यन्त सुगम रीतिसे प्रतिपादित करनेकी गुरुदेवमें विशिष्ट शक्ति है। तथा महाराजश्रीकी व्याख्यान-शैली इतनी रसमय है कि जैसे सर्प मुरलीके नाद पर मुग्ध हो जाता है उसी प्रकार श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाते है, समय कहाँ चला जाता है उसकी खबर भी नहीं रहती। स्पष्ट एवं रसमय होनेके साथ साथ महाराजश्रीका प्रवचन श्रोताओंमें अध्यात्मका प्रेम उत्पन्न करता है। महाराजश्री प्रवचन करते हुए अध्यात्ममें ऐसे तन्मय हो जाते है, परमात्मदशाके प्रति ऐसी

भक्ति उनके मुख पर दिखती है कि श्रोता उससे प्रभावित हुए विना नहीं रहते। अध्यात्मकी जीवन्तमूर्ति गुरुदेवके शरीरके रोम-रोमसे मानों अध्यात्मरस झरता है; उस अध्यात्ममूर्तिकी मुखमुद्रा, नेत्र, वाणी, हृदय—सब एकतार होकर अध्यात्मकी वर्षा करते हैं और मुमुक्षुओंके हृदय उस अध्यात्मरससे भीग जाते हैं।

* इस कालमें मुमुक्षुओंके महाभाग्य *

गुरुदेवका व्याख्यान सुनना वह एक जीवनका लाभ है। उनका व्याख्यान सुननेके बाद अन्य व्याख्याताओंके व्याख्यानमें रस नहीं आता। उनका व्याख्यान सुननेवालेको इतना तो स्पष्ट लगता है कि 'ये पुरुष कोई भिन्न प्रकारके हैं, जगतसे वे कुछ अलग ही कहते है, अपूर्व कहते हैं। इनके कथनमें कोई अजब दृढ़ता और जोर है। ऐसा कही सुना नही है।' महाराजश्रीके व्याख्यानसे अनेक जीव अपनी-अपनी पात्रतानुसार लाभ ले जाते हैं, कुछको सत्‌के प्रति रुचि जागृत होती है. किन्हीं-किन्हींको सत्-समझके अंकुर फूटते हैं और किन्ही विरल जीवोंकी तो दशा ही बदल जाती है।

अहो! ऐसा अलौकिक पवित्र अंतःपरिणमन—केवलज्ञानका अंश, और ऐसा प्रबल प्रभावना-उदय—तीर्थंकरत्वका अंश, इन दोका सयोग इस कलिकालमें देखकर रोमांच होता है। मुमुक्षुओंका महापुण्य अभी तप रहा है।

* भारतवर्षके आँगनमें कल्पवृक्ष *

अहो! इन परम प्रभावक अध्यात्ममूर्तिकी वाणीकी तो क्या बात, उनके दर्शन भी महापुण्यका पुंज उछले तब प्राप्त होते हैं। उन अध्यात्मयोगीके समीपमें सांसारिक आधि-व्याधि-उपाधि आ नहीं सकते।

संसारतप्त प्राणी वहाँ परम विश्रान्ति पाते हैं और सांसारिक दुःख मात्र कल्पनासे ही उत्पन्न किये उन्हें भासने लगते हैं। जो वृत्तियाँ महा प्रयत्नसे भी नहीं दबतीं उनका गुरुदेवके सान्निध्यमें बिना प्रयत्नके शमन हो जाता है, ऐसा अनेकानेक मुमुक्षुओंका अनुभव है। आत्माका निवृत्तिमय स्वरूप, मोक्षका सुख आदि भावोंकी जो श्रद्धा अनेक तर्कोंसे नहीं होती वह गुरुदेवके दर्शनमात्रसे हो जाती है। गुरुदेवका ज्ञान और चारित्र मुमुक्षु पर महा कल्याणकारी प्रभाव डालता है। सचमुच भारत वर्षके आँगनमें शीतल छायावाला, वांछित फलदायी कल्पवृक्ष फला है। भारत देशके महाभाग्य खुले हैं।

※ विहार द्वारा धर्मप्रभावना ※

.विहारके समय मार्गमें आनेवाले अनेक गामोंमें धर्मप्रभावक पूज्य गुरुदेव वीतराग प्रणीत सद्धर्मका डंका बजाते गये और सत्पात्रोंके कर्णपट खोलते गये। गाँव-गाँवमें लोगोंकी भक्ति गुरुदेवके प्रति उल्लसित होती थी और विहारमें आनेवाले बड़े-बड़े शहरोंमें अत्यन्त भव्य स्वागत होता था। गुरुदेवका प्रभावना-उदय देखकर, जिस काल तीर्थंकरदेव विचरते होंगे उस धर्मकालमें धर्मका, भक्तिका, अध्यात्मका कैसा वातावरण फैल जाता होगा उसका तादृश चित्रण कल्पनाचक्षुके समक्ष खड़ा होता था।

※ भारतवर्षका गौरव कानजीस्वामी ※

हजारों धर्मपिपासु जीवोंकी तृषा शांत कर सके ऐसी अद्भुत शक्तिके धारक पवित्रात्मा पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी भारतवर्षकी महान प्रतिभाशाली विभूति है, उनके परिचयमें आनेवालों पर उनके प्रतिभायुक्त व्यक्तित्वका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। वे अनेक सद्गुणोंसे अलंकृत हैं। उनकी कुशाग्रबुद्धि प्रत्येक वस्तुके हार्दमें उतर जाती है। उनकी स्मरणशक्ति वर्षों पहलेकी बातको तिथि-वार सहित याद रख सकती

है। उनका हृदय वज्रसे भी कठोर और कुसुमसे भी कोमल है। वे अवगुणके समक्ष अनमित होने पर भी सहज गुण देखते ही नम पड़ते हैं। बालब्रह्मचारी पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी एक अध्यात्ममस्त आत्मानुभवी पुरुष हैं। अध्यात्ममस्ती उनकी रग-रगमें व्याप्त है। आत्मानुभव उनके प्रत्येक शब्दमें झलकता है। उनके हरएक श्वासमें 'वीतराग! वीतराग!' की ध्वनि उठती है। कानजीस्वामी भारतवर्षके अद्वितीय रत्न हैं। भारतवर्ष कानजीस्वामीसे गौरवान्वित है।

—※—   (—पूज्य गुरुदेवके अभिनन्दन ग्रन्थमेंसे)

※ उस देशको भी धन्य है ※

तव पादपकज जहं पड़े उस देशको भी धन्य है।
उन ग्राम-पुरको धन्य है, तव मात कुल भी वद्य है॥
तेरे किये दर्शन अरे! वे लोग भी कृतपुण्य हैं।
तव चरणमें स्पर्शित हुई जो धूलि वह भी धन्य है॥

तेरी मति, तेरी गति, चारित्र्य लोकातीत है।
आदर्श साधक तू हुआ, वैराग्य वचनातीत है॥
वैराग्यमूर्ति, शान्तमुद्रा, ज्ञानका अवतार तू।
ओ देवके देवेन्द्र प्यारे! गुणकथन तव क्या करूं॥

अध्यात्मकी वार्ता करे, अध्यात्मकी दृष्टि धरे।
निज देह-अणुअणुमें अहो! अध्यात्मरस अमृत भरे॥
अध्यात्ममें तद्रूप बन अध्यात्मको फैला रहे।
काया तथा वाणी-हृदय अध्यात्ममें रेला रहे॥

जहं जहं तुम्हारी दृष्टि वहां आनन्दके झरने वहे।
छाया प्रसरती शान्तिकी, तू शान्तमूर्ते! जहं रहे॥
अध्यात्ममूर्ति, शान्तमुद्रा, ज्ञानका अवतार तू।
ओ महानदेव देवेन्द्र प्यारे! गुणकथन तव क्या करूं॥

सम्यग्दर्शन और स्वानुभूतिकी
* विधि और पुरुषार्थ *

[निज कल्याणके लिये प्रयत्न करनेवाले जिज्ञासुओंको सम्यग्दर्शन और स्वानुभूतिका स्वरूप उसे प्राप्त करनेकी सत्य विधि और उसके लिये सम्यक् पुरुषार्थ कैसा होता है—यह समझनेकी भावना होती है। उन विषयोंका तलस्पर्शी सुन्दर निरुपण पूज्य गुरुदेवने समयसारकी १४४वीं गाथा पर वि. सं. २००० में दिये हुये प्रवचनोंमें किया है। मुमुक्षुओंको उसके अध्ययनसे सम्यग्दर्शन और स्वानुभूतिकी विधि और पुरुषार्थ संबंधी मार्गदर्शन मिले इस हेतुसे वे प्रवचन यहां देनेमें आये हैं।]

पक्षातिक्रान्त ही समयसार है—ऐसा नियमसे सिद्ध होता है—ऐसा अब कहते हैं:—

सम्मद्दंसणणाणं एसो लहदित्ति णवरि ववदेसं।
सव्वणयपक्खरहिदो भणिदो जो सो समयसारो ॥१४४॥

सम्यक्त्व और सुज्ञान की, जिस एकको संज्ञा मिले।
नयपक्ष सकल विहीन भाषित, वो समयका सार है ॥१४४॥

अर्थः—जो सर्व नयपक्षोंसे रहित कहा गया है वह समयसार है; इसीको-(समयसारको ही) केवल सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान-ऐसी संज्ञा (नाम) मिलती है। (नाम पृथक् होने पर भी वस्तु एक ही है)।

यह गाथा बहुत ऊँची है। यह गाथा तो कर्ताकर्मकी बहुत-बहुत बात करते-करते और परके साथ कर्ताकर्मभावको छोडना कहते-कहते आई है। परन्तु लोग कहते हैं कि हमें यह समझमें नहीं आता इसलिये दूसरा कुछ करनेके लिए कहो। परन्तु भाई! पाप करना तो कोई कहता ही नहीं, अशुभ भावकी अपेक्षा शुभभावोंमें रुके वह ठीक है, परन्तु

प्रथम स्वभावको समझना चाहिये; क्योंकि स्वभावके भान द्वारा विकारका अन्त आता है। शुभभाव वह विकार है, विकारसे स्वभाव समझमें नहीं आता किन्तु ज्ञान द्वारा समझमें आता है। शुभभावसे पुण्यबन्ध होता है परन्तु भवका अन्त नहीं आता। शरीरकी क्रिया मै कर सकता हूँ, विकारकी क्रिया मैं कर सकता हूँ—वह बात तो दूर रही, परन्तु यह तो आँगनमें आकर मैं शुद्ध हूँ और मे शुद्ध नहीं हूँ—ऐसे दो पक्षोंके रागमें रुकेगा वहाँ तक विकार दूर नहीं होगा और विकार दूर हुये विना सहज–स्वभावकी प्राप्ति नही होगी; सहज स्वभावकी प्राप्तिके विना वीतराग नहीं होगा और वीतरागताके विना मुक्ति नहीं होगी। प्रथम सहज ज्ञानस्वरूपका निर्णय करनेके लिये में बद्ध हूँ और मे अबद्ध हूँ—ऐसे विचार आते अवश्य हैं, निर्णय करनेके लिए विचारोका मंथन आता अवश्य है, और वैसा करनेसे जो समझण हो वह तो ज्ञानकी पर्याय है, परन्तु साथमें जो राग है वह विकार है। अपूर्ण ज्ञानमें विचार होता है और विचारके साथ राग होता है; इसलिये उस अपूर्ण ज्ञानकी पर्याय जितना आत्माका अखण्ड स्वरूप नहीं है; आत्मा तो परिपूर्ण ज्ञानसामर्थ्यसे भरपूर है; वर्तमानमें ही बेहद सामर्थ्यसे परिपूर्ण–ऐसे आत्मा पर लक्ष करनेसे निर्मल पर्याय प्रगट होती है। आत्माकी परिपूर्ण दृष्टिमें अपूर्ण पर्याय आदरणीय नहीं है। स्वरूपमें स्थित होनेसे रागमिश्रित विचार छूट जाते हैं; जब तक रागमिश्रित विचारोंमें रुकता है तब तक स्वरूपका स्वाद नहीं ले सकता। साधक-दशामें रागमिश्रित विचार आते अवश्य हैं, परन्तु स्वरूपका अनुभव करते समय वे विचार छूट जाते हैं। अशुभ परिणामोंसे बचनेके लिये रागमिश्रित शुभ विचारोंमें रुकता अवश्य है, परन्तु स्वरूपके अनुभवके समय वे विचार भी छूट जाते हैं।

कोई कहेगा कि हमें सच्चा वस्तुस्वरूप समझनेका क्या काम है? हम तो शुभभाव करते रहेंगे। परन्तु भाई! शुभभावोंसे पुण्य होगा अच्छे

संयोग मिलेंगे परन्तु वे संयोग और शुभभाव मरणके समय जागृति किस प्रकार रखायेंगे ?

मरते समय कुछ भी भान नहीं रहेगा, असाध्य हो जायेगा। स्वभावका भान नहीं है, शुद्ध धर्मकी खबर नहीं है—उसका फल तो मूढ़ता ही आयेगा न ! शुभाशुभ भाव करे उसके फलमें संयोग मिलते हैं अर्थात् बाह्य संयोग मिलते हैं, परन्तु उसके फलमें आत्माकी जागृति नहीं मिलती; क्योंकि शुभभाव तो विकार है, और विकारका फल संयोग मिलता है, परन्तु यदि आत्माके शुद्ध स्वभावका भान किया हो तो आत्मामेंसे आत्माकी जागृति रहे। सारे जीवन भर शुभभाव किए हों परन्तु मरण समय असाध्य हो जाता है क्योंकि देहसे आत्माको पृथक् स्वीकार नहीं किया है, देहाध्यास नहीं तोड़ा है, शुभराग करने योग्य मानता है, शुभाशुभ परिणामोंसे भिन्न आत्माको स्वीकार नहीं किया है, परके साथ एकत्वबुद्धि है इससे मूढ़ हो जाता है। परसे भिन्न आत्माका यदि भान हो तो परसे पृथक् रहकर आत्माकी जागृति रख सकता है। जिसे भिन्न चिदानन्द आत्माका भान नहीं है वह जीवित होते हुए भी असाध्य है और मरते समय भी असाध्य हो जाता है। मैं चिदानन्द आत्मा ज्ञानस्वभावी हूँ, मैं शरीररूप नहीं हूँ, वचनरूप, मनरूप, शुभाशुभ विकाररूप मैं नहीं हूँ—ऐसा पृथक् आत्माका जिन्हें भान नहीं है वे सब असाध्य हैं। इसलिये आचार्यदेव कहते हैं कि—यह जो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहलाता है—उसका भान कर, उसे प्रगट कर ! और वे कहते हैं कि जो सर्व नयपक्षोंसे रहित कहा गया है वही समयसार है, और इसी समयसारको केवल सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहते हैं। नाम भिन्न है तथापि वस्तु एक है।

आत्मा परसे भिन्न, शुद्ध–पवित्र, ज्ञानमूर्ति है—ऐसा निर्णय करके जो उसमें स्थित हुआ उसीको सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहते हैं। नाम

भिन्न हैं तथापि वस्तु एक ही है। मैं शुद्ध हूँ या अशुद्ध हूँ, बद्ध हूँ या अबद्ध हूँ—ऐसे पक्षोंमें लगा रहे, तथापि उन पक्षोंके छूट जाने पर अनन्त गुण–पर्यायकी मूर्ति चैतन्यस्वरूपमें स्थित होनेसे मात्र अकेला आत्मा रह जावे वही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है।

जो वास्तवमें समस्त नयपक्षों द्वारा खण्डित न होनेसे जिसका समस्त विकल्पोंका व्यापार रुक गया है—ऐसा है—वह समयसार है। वास्तवमें इस एकको ही केवल सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानका नाम मिलता है। (सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान समयसारसे भिन्न नहीं—एक ही है।)

जो समस्त नयपक्षों द्वारा खण्डित होता था,—मैं शुद्ध हूँ, मैं एक हूँ, और गुण तथा पर्यायसे अनेक भी हूँ—ऐसे विकल्पोंसे खण्डित होता था, रागमिश्रित पक्षसे स्वरूपका भग हो जाता था,—वह जब समस्त नयपक्षोंके विकल्पोंको पुरुषार्थसे रोक देनेसे खण्डित नहीं हुआ–तब अखण्डित हुआ। समस्त विकल्पोंका व्यापार रुक गया है और अपने अखण्डित स्वरूपका अनुभव करता है वही समयसार है, वही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है; सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान समयसारसे पृथक् नहीं हैं।

यह केवलज्ञानीकी बात नही परन्तु चौथे गुणस्थानकी बात है, सम्यग्दृष्टि और सम्यग्ज्ञानीकी बात है।

रागके विकल्पसे खण्डित होता था वह स्वरूपका निर्णय करके स्वरूपमें स्थित हुआ–वहाँ जो खण्ड होता था वह रुक गया और मात्र आत्मा अनन्त गुणोंसे भरपूर आनन्दस्वरूप रह गया। मैं शुद्ध हूँ, मैं अशुद्ध हूँ; मै बद्ध हूँ और मैं अबद्ध हूँ—ऐसे विकल्पोंसे छूट गया और अकेला आत्मतत्त्व रह गया—उसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है,

और वही समयसार है। समयसार यह पृष्ठ या अक्षर नहीं हैं; यह पृष्ठ तो जड़ हैं। आत्माके आनन्दमें लीनता वह समयसार है। स्वरूपका बराबर निर्णय करके विकल्प छूट जायें, पश्चात् अनन्तगुणसामर्थ्यसे भरपूर मात्र आत्मतत्त्व रहा वही समयसार है।

कोई कहेगा कि यह तो आप परमात्माकी बात करते हो; केवलज्ञानीकी बात करते हो। परन्तु भाई! यह तो एक अंशकी बात है, मात्र वानगीकी बात है, अभी पूरा करना तो शेष रहा है, इससे अनन्तगुना पुरुषार्थ शेष रहा है। अभी पूर्ण स्थिरता प्रगट नहीं हुई है, पूर्ण वीतरागरूप स्थिरता तो आंशिक स्थिरतामें वृद्धि करते-करते होती है। यह तो मात्र अंश प्रगट हुआ है, अभी श्रावकत्वकी स्थिरता, मुनित्वकी स्थिरता, केवलज्ञानकी स्थिरता—वह सब शेष हैं। यह तो मात्र चौथी भूमिकाकी बात है। ऐसा निर्विकल्प अनुभव होनेके पश्चात् राजपाठ करे, गृहस्थाश्रममें हो, तथापि परसे निराले आत्माका भान उसके वर्तता रहता है इससे वह ज्ञाता रहता है, इसलिए वह आत्मामें रहा है परन्तु गृहस्थाश्रममें नहीं रहा है। निर्विकल्प अनुभव सदैव नहीं रहता, अन्तर्मुहूर्त रहता है; पश्चात् राज्य, व्यापारादि विकल्प उठते हैं परन्तु उनका वह कर्ता नहीं होता, स्वरूपका पृथक् भान रहता है। व्यापार, धन्धा, राजपाट करते समय भी कभी कभी स्वरूपमें उपयोग स्थिर होता है, परन्तु चौथा गुणस्थान है इसलिये विशेष स्थिरता नहीं होती।

स्वयं जातिका वणिक हो, परन्तु जब बालक हो तब किसानके घर भी जाता है और वह खाने-पीनेको दे तो खाता-पीता है, क्योंकि उसे खबर नहीं होती कि मैं वणिक हूँ। और जब बड़ा हुआ तब खबर हुई कि मैं वणिक हूँ, मुझे किसानके यहाँ नहीं खाना-पीना चाहिये; वह पानी पीनेसे अपवित्र हो जाऊँगा—ऐसा बड़े होने पर ध्यान आता है और वृद्ध होने पर तो सभी प्रकारके व्यवहारका ध्यान आ जाता है। उसी प्रकार अनादि अज्ञानसे मैं कौन हूँ और पर कौन है—इसकी खबर

न होनेसे परका अभिमान करता है; पर मेरा है और मैं परका हूँ, पर मेरा कर सकता है और मैं परका कर सकता हूँ—इस प्रकार बालभावसे अज्ञानका भोजन-पानी पीता है, परन्तु जहां भान हुआ कि मैं परसे निराला, निर्विकल्प चैतन्यज्योति आत्मा हूँ, मैं परका कुछ नहीं कर सकता और न पर मेरा ही कुछ कर सकता है—ऐसा भान हुआ कि वहां जवान हुआ—वह जवानीकी चाल है। यह चौथी भूमिकाकी बात है, सम्यग्दर्शनकी बात है, यह आत्मजागृतिकी बात है; अभी स्थिरता शेष है, अंशतः स्वरूपाचरणचारित्र प्रगट हुआ है, परन्तु अभी पांचवीं और छठवीं-सातवीं भूमिकाकी स्थिरता प्रगट नहीं हुई है अर्थात् अभी चारित्र प्रगट नहीं हुआ है, क्रमानुसार पांचवी—छठवीं—सातवीं भूमिकाकी स्थिरता प्रगट करके आगे बढ़कर वीतराग हो—केवलज्ञान प्रगट करे वह वृद्धपना है। इस १४४ वीं गाथामें तो सम्यग्दर्शनकी बात है, आत्माके अनुभवकी बात है, पूर्ण स्थिरताकी बात नहीं है।

सम्यग्दर्शन प्रगट करनेके लिये—आत्माका अनुभव करनेके लिये प्रथम क्या करना चाहिये वह आचार्यदेव कहते हैं। प्रथम श्रुतज्ञानके अवलम्बनसे ज्ञानस्वभाव आत्माका निर्णय करना चाहिये।

प्रथम क्या करना चाहिए वह आचार्यदेवने कहा है। प्रत्येक जीव सुखकी इच्छा करता है, किन्तु पूर्ण सुख किसने प्रगट किया है? वैसा पूर्ण पुरुष कौन है? उसकी पहिचान करना चाहिये, और उस पूर्ण पुरुषने सुखका स्वरूप क्या कहा है—उसे जानना चाहिए। उस सर्वज्ञ पुरुषके कहे हुए वाक्य—वह आगम है। इसलिए प्रथम आगममें सुखका स्वरूप क्या कहा है उसे जानकर उसका अवलम्बन करके, ज्ञानस्वभाव आत्माका निर्णय करना चाहिये; निर्णय है वह पात्रता है और आत्माका अनुभव उसका फल है। इस गाथामें पात्रता और उसका फल—दोनों बताये हैं।

ऐसा निर्णय करनेकी जहाँ रुचि हुई वहाँ अन्तरमें कषायका रस मन्द पड़ ही जाता है। तत्त्वविचार द्वारा कषायका रस मन्द पड़े विना इस निर्णय पर नहीं पहुँचा जा सकता। प्रथम श्रुतज्ञानका अवलम्बन करना—ऐसा कहकर आचार्यदेवने सच्चा आगम क्या है? उसका कहनेवाला पुरुष कौन है? इत्यादि सभी निर्णय करनेको कह दिया है; सच्चे देव-गुरु-शास्त्र कौन हैं? उन सबका निर्णय आ जाता है। ज्ञानस्वरूप आत्माका निर्णय करनेमें सच्चे देव-गुरु-शास्त्रका निर्णय करना आदि सब एक साथ आ जाता है।

प्रथम श्रुतज्ञानका अवलम्बन करना कहकर आचार्यदेवने उसमे बहुत-बहुत समाविष्ट किया है। सच्चे देव-गुरु शास्त्र और मिथ्या देव-गुरु-शास्त्रको पहिचानकर उसका निर्णय करना कि यह सच्चे हैं और यह मिथ्या हैं। जिस आगममें एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कुछ भी कर सकता है—ऐसा कहा हो वह आगम सच्चा नहीं कहलाता, उसे कहनेवाला गुरु भी सच्चा नहीं है, ऐसा बतलानेवाला देव भी सच्चा नहीं है; लेकिन दोनों तत्त्व भिन्न हैं, प्रत्येक तत्त्व स्वाधीन है, कोई तत्त्व किसी तत्त्वके आधारसे नहीं है, कोई तत्त्व किसी तत्त्वका कुछ भी करे तो तत्त्व पराधीन हो जाये परन्तु ऐसा तो बनता नहीं है। प्रत्येक तत्त्व स्वाधीन है। एक तत्त्व दूसरे तत्त्वका कुछ नहीं कर सकता—ऐसा वस्तुका स्वरूप बतानेवाला देव भी सच्चा है, गुरु भी सच्चा है और शास्त्र भी सच्चा है—ऐसी पहचान करके देव-गुरु शास्त्र कथित जो आत्माका स्वरूप है उसका विचार करके अपने द्वारा, श्रुतज्ञानके अवलम्बन द्वारा ज्ञानस्वभाव आत्माका निश्चय करना चाहिये। वह निश्चय ऐसा अपूर्व करना कि जिस निश्चयके फलमें आत्माका अनुभव हो, केवलज्ञान हो, केवलदर्शन हो और अनन्त गुण प्रगट हों। आगम द्वारा, सद्गुरु द्वारा निर्णय करना उस निर्णय करनेमें रागका अंशतः अभाव होकर निर्णय होता है, परन्तु निर्णयके

समय बुद्धिपूर्वकके सर्व विकल्प नहीं छूट जाते, स्वभावमें स्थित नहीं हो जाता, परन्तु जब निर्णय करता है उस समय भी आत्मासे आत्माका निर्णय करता है। मन और रागकी गौणता करता है; आत्माको अधिक करता है और रागको गौण करता है—अर्थात् अंशतः रागसे मुक्त होकर स्वतः अधिक होकर आत्मासे आत्माका निर्णय करता है। परन्तु जब स्वरूपमें स्थिर हो जाता है तब बुद्धिपूर्वकके विकल्प छूट जाते हैं—बुद्धिपूर्वकका मनका निमित्त छूट जाता है और चिद्रूप—चिदानन्दमें उपयोग लीन होता है।

जो आगम आत्माका ज्ञानलक्षण न बताये किन्तु विकारलक्षण बताए, पराधीन लक्षण बताये—वह आगम मिथ्या है. निमित्त ही उपादान है—ऐसा बताये वह आगम मिथ्या है। यदि निमित्त कार्य कर देता हो तो निमित्त निमित्तरूप नहीं रहा परन्तु उपादान हो गया; निमित्त मात्र उपस्थितिरूप हो तो निमित्त कहलाये। यदि निमित्त उपादानका कार्य कर देता हो तो वह (निमित्त) उपादान हो गया, परन्तु निमित्तरूप नहीं रहा। सूर्य-विकासी कमल खिले तब सूर्य की उपस्थिति होती है परन्तु सूर्य कुछ कमल को खिला नहीं देता सूर्य कमलको नहीं खिला देता, परन्तु जब कमल खिले तब सूर्यकी उपस्थिति होती ही है—ऐसा सम्बन्ध है। जो शास्त्र आत्माका स्वाधीन लक्षण बतलाए वह शास्त्र सच्चा है वह स्वाधीन स्वरूप बतानेवाला देव भी सच्चा है और वैसा स्वाधीन स्वरूप बतानेवाला गुरु भी सच्चे हैं।

आचार्यदेव कहते हैं कि प्रथम श्रुतज्ञानका अवलम्बन लेना, श्रवण-मनन करना और सत्समागम करना। आगमके आधारसे ज्ञानस्वभाव आत्माका निश्चय करना। जीवोंको रुचि नहीं है, यदि रुचि हो तो पुरुषार्थ किए बना नहीं रहे। अरे! आत्माकी रुचि कर! मरण समय कौन शरण होगा? भेड़-बकरीकी तरह मरण हो वह कहीं मरण कहलाता है? लखपती

या करोड़पती हो, सैंकडों आदमी पास खड़े हों फिर भी मर जाता है, वहां कौन शरण है? घोर वेदनामें असाध्य होकर मर जाता है, उस समय कौन शरण है? यदि आत्माकी जागृति होगी तो वह साथ आयेगा। प्रथम आत्माकी सच्ची जिज्ञासा करे, सत्य कहाँ है उसे खोजे, सच्चे देव कौन हैं? सच्चे गुरु कौन हैं? सच्चे शास्त्र कौन हैं? उन्हें शोधे, और वे जो बता रहे हैं उसका निर्णय करनेके लिये समय निकाले, फिर निर्णय करे कि मैं परसे निराला, स्व-परका ज्ञाता, अनन्त गुणमूर्ति आत्मा हूँ। यह राग-द्वेष मेरा स्वभाव नहीं है, परका अच्छा-बुरा करना मेरा स्वभाव नहीं है, परका कर्ता होना मेरा स्वभाव नहीं है, परका स्वामित्व रखना मेरा स्वभाव नहीं है; मैं तो 'ज्ञानस्वभावी आत्मा हूँ'; स्व-परका ज्ञायक हूँ, किन्तु किसी भी प्रकार परका कर्ता नहीं हूँ—ऐसा निर्णय प्रथम श्रुतज्ञानसे करना चाहिए।

प्रथम सच्चा निर्णय किए विना निर्विकल्प अनुभव नहीं होता। सत् स्वरूप प्रगट करनेमें सच्चे देव, गुरु और शास्त्रका निमित्त आया। सच्चे पुरुषार्थसे सच्चे निर्णयका निमित्त भी आया, वह अन्तरका निमित्त हुआ; सच्चा निर्णय कारण हुआ और पश्चात् अनुभव आया। सच्चा निश्चय करनेके पश्चात् भी आत्माकी प्रगट प्रसिद्धिके लिये, आत्माकी शांति और आनन्दके वेदनके लिए अन्तरोन्मुख किस प्रकार होता है—वह आचार्यदेव कहते हैं। इस टीकाका भाव बहुत ऊँचा है। जब आत्माकी प्रगट प्रसिद्धि करना हो तब परकी प्रसिद्धि छोड़ना चाहिये। आत्माके अनुभवके उपभोगके लिये सच्चा निर्णय करनेके पश्चात् स्वोन्मुख किस प्रकार होता है—वह आचार्यदेव कहते हैं।

सच्चा निश्चय करनेके पश्चात्, आत्माकी प्रगट प्रसिद्धिके लिए पर प्रसिद्धिके कारण जो इन्द्रियों द्वारा और मन द्वारा प्रवर्तमान बुद्धियाँ हैं उन्हें मर्यादामें लाकर जिसने मतिज्ञान-तत्त्वको (मतिज्ञानके स्वरूपको)

आत्मसम्मुख किया है—ऐसा, तथा नानाप्रकारके नयपक्षोंके आलम्बनसे होनेवाले अनेक विकल्पो द्वारा आकुलता उत्पन्न करनेवाली श्रुतज्ञानकी बुद्धिओंको भी मर्यादामें लाकर श्रुतज्ञान तत्त्वको भी आत्मसम्मुख करता हुआ, अत्यन्त विकल्प रहित होकर, तत्काल निजरससे ही प्रगट होनेवाला, आदि-मध्य-अन्त रहित, अनाकुल, केवल, एक सम्पूर्ण विश्वके ऊपर मानों तैरता हो—ऐसे अखण्ड प्रतिभासमय, अनन्त, विज्ञानघन, परमात्मारूप समयसारका जब आत्मा अनुभवन करता है उसी समय वह सम्यक्-रूप दिखाई देता है (श्रद्धामें आता है) और ज्ञात होता है; इससे समयसार ही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है।

आत्मा आनन्दमूर्ति-आनन्दका रसकन्द है, इन्द्रियों और मन द्वारा प्रवर्तमान बुद्धि—वह परकी प्रसिद्धिका कारण है—परकी प्रसिद्धि करनेवाले हैं; इन्द्रिय और मन द्वारा प्रवर्तित जो बुद्धि है वह परके ऊपर लक्ष्य करनेवाली है; पर लक्ष्यमें स्त्री, कुटुम्ब, देव, गुरु, शास्त्र—सब आ जाते हैं, वह सब परकी प्रसिद्धि है। पाँचों इन्द्रियाँ और मनकी ओर प्रवर्तित जो बुद्धि है, उसे पर लक्ष्यमें जानेसे रोके और आनन्द-सागर आत्माकी ओर उन्मुख करे वह आत्मारूपी आनन्दके हिमालयमें प्रविष्ट होनेकी सीढियों पर चढ रहा है।

परपदार्थोंकी प्रसिद्धिके कारण इन्द्रियाँ और मन हैं, उनसे प्रवर्तित जो बुद्धि है उसे स्वोन्मुख करके मतिज्ञानको अर्थात् मतिज्ञानके व्यापारको आत्मसन्मुख किया है। कैसी अद्भुत सरस बात ली है! किसी बलवान योगमें अद्भुत शैलीसे अद्भुत गाथाकी रचना हुई है कितना उत्तम सिद्धान्त दिया है! कि मै ज्ञानस्वभावी आत्मा हूँ ऐसा निश्चय करके प्रगट पर्यायमें आनन्द लानेके लिये, परकी ओर—पाँच इन्द्रियों और मनकी ओर झुकते हुए भावको स्वभावोन्मुख किया है। उपयोग परोन्मुख होता है उसे

स्वोन्मुख कर लेना;—इस प्रकार मतिज्ञानके व्यापारको आत्मसन्मुख किया।

उपयोग, मन और इन्द्रियोंकी ओर लगा हो तब मन दिखाई नहीं देता, परन्तु उस समय बाह्य पदार्थ लक्षमें आते हैं, इससे समझ लेना चाहिये कि अभी उपयोगकी लीनता परकी ओर है; मतिज्ञानके व्यापारका योग परकी ओरसे छूटकर आत्मस्वभावमें हो तब आत्मस्वभाव लक्षमें आता है। मैं ज्ञानस्वभावी आत्मा हूँ—ऐसा निर्णय करके उपयोग परकी ओरसे छूटकर स्वभावोन्मुख होता है और आत्मामें लीन होता है, तब आत्माका अनुभव होता है।

अब श्रुतज्ञानको आत्मसन्मुख करते हैं। अनेक प्रकारके नयपक्षके अवलम्बनसे होनेवाले अनेक प्रकारके विकल्प, जो कि—बद्ध, अबद्ध, शुद्ध, अशुद्ध, एक, अनेक इत्यादि नयपक्ष हैं, जो आकुलताको उत्पन्न करनेवाले हैं, उनमें प्रवर्तित जो ज्ञानका व्यापार है उसे रोककर श्रुतज्ञानके व्यापारको स्वोन्मुख करता है। यहाँ आत्माके आनन्दकी बात लेना है इससे आकुलताको उत्पन्न करनेवाले नयपक्ष—ऐसा कहा है। मतिज्ञानका व्यापार परकी ओर भी सामान्य है और स्वकी ओर भी श्रुतज्ञानकी अपेक्षासे सामान्य है; श्रुतज्ञानके व्यापारमें अनेक तर्कणायें होती हैं—इससे यदि श्रुतज्ञानका व्यापार परकी ओर जाये तो विकल्पके भङ्ग-भेद आते हैं, शुद्ध, अशुद्ध, बद्ध, अबद्ध, इत्यादि नय-पक्षके विकल्प होते हैं और वे आकुलताको उत्पन्न करनेवाले हैं; और उस श्रुतज्ञानका व्यापार यदि अन्तरस्वभावोन्मुख हो तो विकल्पतरग टूटकर आनन्दतरंग उठती है, आनन्दका सागर उछलता है, शांतिके झरने झरते हैं, समाधिका स्वाद आता है।

मै आत्मा शुद्ध हूँ, अशुद्ध हूँ, बद्ध हूँ, मुक्त हूँ, नित्य हूँ, अनित्य हूँ, एक हूँ, अनेक हूँ—वैसी रागकी वृत्ति भी दुःखदायक है, आकुलता रूप है,—वैसे अनेक प्रकारके श्रुतज्ञानके भावोंको मर्यादामें लाकर, मै

ऐसा हूँ और वैसा हूँ—ऐसे विचारोंको पुरुषार्थ द्वारा रोककर, परोन्मुख होते उपयोगको स्वोन्मुख करके, नयपक्षके रागके भङ्गको आत्माके स्वभाव-रसके भान द्वारा दूर करके, श्रुतज्ञानको भी आत्मसन्मुख करता है उस समय वह अत्यन्त विकल्प रहित होकर तत्काल निजरससे प्रगट होनेवाले आदि-मध्य-अन्त रहित आत्माके परम आनन्द अमृतरसका वेदन करता है। आदि-मध्य-अन्त रहित अर्थात् आत्माका प्रारम्भ नहीं है इससे अन्त भी नही है; तब फिर जिसे प्रारम्भ और अन्त न हो उसका मध्य क्या होगा? आत्मा अनादिसे वहीका वही है, अखण्डानन्द अनन्तगुणोंका पिण्ड, आदि-मध्य-अन्त रहित आत्मवस्तु है।

प्रथम, आत्माका यथार्थ निर्णय करके पश्चात् पर प्रसिद्धिका जो कारण है—ऐसी इन्द्रिय और मन द्वारा प्रवर्तती बुद्धि; उसे मर्यादामें लाता है। पश्चात् उस मतिज्ञानके व्यापाररूप बुद्धिको अर्थात् मतिज्ञानके व्यापारको आत्मसन्मुख करता है और अनेक प्रकारके नयपक्षके अवलम्बनसे—अनेक प्रकारके विकल्पोंसे आकुलता उत्पन्न होती है—ऐसी श्रुतज्ञानकी बुद्धिको भी मर्यादामें लाकर श्रुतज्ञानको भी आत्मसन्मुख करता है। इस प्रकार दोनों ज्ञानके व्यापारको आत्मसन्मुख करके अत्यन्त विकल्परहित होता है। उसी क्षण आत्मस्वभाव निजरससे प्रगट होता है, आदि-मध्य और अंत रहित आत्माका अनुभव करता है, विकल्पोंका एकत्व छूट जानेसे केवल एकरूप, सम्पूर्ण विश्वके ऊपर मानों तैरता हो—ऐसा आत्माका अनुभव करता है। तैरता अर्थात् विश्वके ऊपर मानो अलग-असंग होकर तैरता हो ऐसा अखण्ड प्रतिभासमय आत्माका अनुभव करता है। विकल्पमें रुकता था वहाँ खण्ड पड़ता था, वह छूट जानेसे अखण्ड प्रतिभासमय आत्माका अनुभव करता है। अनन्त गुणोंकी पर्यायें जिसमें एक साथ उछल रही हैं—ऐसे अनन्त गुणस्वरूप आत्माका अनुभव करता है, विज्ञानघन-स्वभाव आत्माका अनुभव करता है। विकल्पकी ओर ज्ञान जुड़ता था तब अस्थिर होता था, अब

ज्ञान जम गया। जिसमें विकल्प प्रविष्ट नहीं हो सकता—ऐसे निविड ज्ञानरूप अर्थात् विज्ञानघनरूप आत्माका अनुभव करता है। ऐसे परमात्मारूप समयसारका आत्मा जब अनुभव करता है, उसी समय आत्मा सम्यक्त्वरूप दिखाई देता है (श्रद्धामें आता है।) वह समयसार ही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। वही भगवानके दर्शन हैं, वही ईश्वरके दर्शन है—वही परमात्माके दर्शन है। उसी समय आत्माके यथार्थ दर्शन होते हैं और यथार्थ श्रद्धामें आता है।

अनन्त गुण-पर्यायसे परिपूर्ण जो तत्त्व है उसे अपूर्ण, विकारी और पूर्ण पर्यायकी अपेक्षाके विना लक्षमें लेना वह द्रव्यदृष्टि है, वही यथार्थदृष्टि है। उस दृष्टिपूर्वक मतिज्ञान और श्रुतज्ञानके व्यापारको आत्मसन्मुख किया वह व्यवहार है, प्रयत्न करना वह व्यवहार है, स्वोन्मुख होना वह व्यवहार है। इन्द्रियाँ और मनकी ओर रुकनेवाला ज्ञान, अल्प विकसित ज्ञान; उस ज्ञानके व्यापारको स्वोन्मुख करना वह व्यवहार है। सहज शुद्धपारिणामिकस्वभाव एकरूप है। परिपूर्ण तत्त्वमें साध्य साधकके भङ्ग नहीं पड़ते। तत्त्व यदि अपूर्ण हो तो साध्य साधकके भङ्ग पड़ते हैं, परन्तु तत्त्व तो परिपूर्ण है, तथापि पर्यायमें अपूर्णता है। विकार है इसलिये प्रयास करना रहता है, साधक अवस्था रहती है। पर्यायदृष्टिसे साध्य-साधकके भी भङ्ग पड़ते हैं। परिपूर्ण तत्त्वदृष्टि होने पर भी पर्यायमें अपूर्णता होनेसे बीचमें साधक अवस्था आये विना नहीं रहती। पर्यायदृष्टिसे अपूर्णता है, विकार है; उसे तत्त्वदृष्टिके बल पूर्वक दूर करके निर्मल करता है और अनुक्रमसे पूर्ण निर्मलता प्रगट करता है। यथार्थदृष्टि होनेके पश्चात साधक अवस्था बीचमें आये विना नहीं रहती। आत्माका भान करके स्वभावमें एकाग्र होता है तभी परमात्मारूप समयसारका अनुभव करता है, आत्माके अपूर्व आनन्दका अनुभव करता है, आनन्दके झरने झरते हैं।

[विधि और पुरुषार्थ]

कोई कहे कि—ऐसा आनन्द हो तो बाहरसे उछल पड़े न? अरे भाई! यह कहीं संसारके हर्षकी बात नहीं है। यह तो अकषाय, निराकुल आनन्दकी बात है, हर्ष करना तो आकुलता है। यह तो सहज आनन्दकी बात है, आत्माके सहज आत्मस्वभावकी बात है। आनन्दकी बात आये वहाँ लोगोंको ऐसा लगता है कि कुछ बाहरसे उछलना तो चाहिए न? परन्तु अरे भाई! आनन्दका वेदन करता हूँ—ऐसा विकल्प भी राग है, आकुलता है। आनन्दका तो सहज वेदन होता है और जागृत स्वरूप ज्ञानमें ज्ञात होता है। जागृत आत्मा उसे जानता है—उसका वेदन करता है। आत्माका सुख अन्तरमें है; वह बाह्यमें रूपी पदार्थमें, इन्द्रियोंमें, या शरीरमें नहीं उछल पडता। आत्माके आनन्दका वेदन आत्मामें होता है, बाहर उछलकर नहीं आता।

आत्मा ज्ञानघन है; जब तक उसका निश्चय न हो तब तक श्रुतज्ञानका अभ्यास करना, और निश्चय होनेके पश्चात् एकाग्रताका अभ्यास करना,—ऐसा प्रयत्न करनेसे परमात्मारूप समयसारके दर्शन होते हैं।

सच्चे देव-गुरु शास्त्रका निर्णय करके, आत्मा क्या है उसका निर्णय करना चाहिए। मतिज्ञान और श्रुतज्ञानके पर्यायके भेद जितना आत्मा नहीं है, परन्तु सामान्य ज्ञानमात्र—अखण्ड ज्ञानमात्र आत्मा है। ज्ञातारूपसे जानना ही आत्माका स्वरूप है, परका कुछ भी करना आत्माका स्वरूप ही नहीं है। जिसने परका कर्तृत्व स्वीकार किया है उसने आत्मस्वभावका सच्चा निर्णय नहीं किया है। परका अकर्ता, स्वभावका कर्ता, स्व-पर ज्ञायक—ऐसे आत्माका यथार्थ निर्णय करनेके पश्चात् आगे बढा जा सकता है। प्रथम देवको जाने, गुरुको जाने, धर्मको जाने, पुण्य-पापके भावोंको जाने, नव तत्त्वोंमेंसे अकेले पृथक् आत्माको जो जाने उसने आत्माका सच्चा निश्चय किया है। ऐसा निश्चय करनेके पश्चात् प्रगट अनुभव करनेके लिये इन्द्रियों और मनमें प्रवर्तमान बुद्धिको मर्यादामें लाकर फिर आत्म-

सन्मुख करना चाहिए। दुःख इत्यादिके जो भाव होते हों उन्हें प्रथम मर्यादामें लाये और पश्चात् ज्ञानको आत्मसन्मुख करे। मै शुद्ध हूँ, मै अशुद्ध हूँ, मै बद्ध हूँ, मैं अबद्ध हूँ—ऐसे विकल्पोंको छोडकर मात्र एक आनन्दमूर्ति आत्मा रह गया, उसका अनुभव करे वह परमात्माके दर्शन हैं, वही सम्यग्दर्शन है। यह बारहवें गुणस्थानकी बात नहीं है। आचार्यदेवने टीकामें 'सम्यग्दृश्यते'—ऐसा शब्द रखा है, इसलिए श्रद्धाकी बात है, चौथे गुणस्थानकी बात है। जब परमात्मारूप समयसारका आत्मा अनुभव करता है, उसी समय श्रद्धामें आता है। पश्चात् बाह्यमें लक्ष्य आये तब विकल्प आते हैं, परसे भिन्न ज्ञायकका भान रहता है, श्रद्धा रहती है परन्तु उपयोग बिल्कुल आत्मामें जमा हुआ नहीं होता। जब आत्माके स्वभावमें स्थित होता है तब परमात्मारूप आत्माका साक्षात् अनुभव करता है। यह सम्यग्दर्शन आत्माका है, शुभरागका नहीं-घर, वस्त्रादिका नहीं है। जिसे सच्ची जिज्ञासा जागृत हुई हो और जो पुरुषार्थ करे—वह प्रगट कर सकता है।

जिसे आत्माका हित करना हो उसे प्रथम आगमका अभ्यास करके आत्मस्वभावका सच्चा निर्णय करना चाहिए। सर्वज्ञ परमात्मा कौन हैं? उनकी वाणी कैसी है?—उसका निर्णय करना चाहिये। सच्चे गुरु कैसे होते है? सच्चे शास्त्र कैसे होते हैं?—उसका निर्णय करना चाहिये और देव-गुरु-शास्त्र द्वारा कहे गये आत्मस्वभावका निर्णय करना चाहिए। संसारमे भी पहले तो परीक्षा ही करते हैं न? चाहे जिस वस्तुको लेने जाये वहाँ परीक्षा करके माल लेते हैं। उसी प्रकार आत्मस्वभावका भी यथार्थ निर्णय करना पड़ेगा। आत्मा ज्ञानस्वरूप है—ऐसा कहनेमें आनन्द, बल, स्थिरता आदि सभी गुण आ जाते हैं। ज्ञान गुण और आत्माकी अर्थात् गुण-गुणीकी अभेददृष्टिसे देखो तो ज्ञानमात्र आत्मा कहनेमें समस्त गुण आ जाते हैं।

मैं ज्ञानमात्र आत्मा हूँ—ऐसा निश्चय करके पश्चात् स्वोन्मुख होता है। पांच इन्द्रियाँ और मनकी ओर जो मतिज्ञानका व्यापार प्रवर्तित होता था उसे ज्ञानमात्रमें मिला देता है। पाँच इन्द्रियाँ और मन जब तक बाह्यमें काम करते हैं तब तक राग है। कान द्वारा शास्त्रके शब्द सुने, आँख द्वारा प्रतिमाजीके दर्शन करे—वह सब इन्द्रियोंका विषय है, वह सब राग है। निर्विकल्प अनुभवके समय वह राग छूट जाता है। बाह्य पदार्थोंमें जो लक्ष है उसे छोड़कर आत्मोन्मुख होना, ज्ञान, शब्द, रस, रूप इत्यादिको ज्ञेय करते हुए उसे स्व-ज्ञेयोन्मुख करना, इन्द्रियोंसे जो बोध होता है—उसे स्वभावोन्मुख करना, इन्द्रियोंसे जो ज्ञान होता है उसे ज्ञानमात्रमें मिलाना, अकेले ज्ञानस्वभावमें लीन करना चाहिए। उसी प्रकार श्रुतज्ञानको भी स्वभावसन्मुख करना चाहिए। मैं बद्ध हूँ या अबद्ध हूँ; शुद्ध हूँ या अशुद्ध हूँ—ऐसे विकल्पोंमें रुकना वह राग है; यह विकल्प मिटाकर श्रुतज्ञानको स्वोन्मुख करना, स्वमें लीन होना। स्वमें लीन होनेसे समस्त विकल्प छूट जाते हैं और अखण्ड प्रतिभासमय आत्माका अनुभव होता है, निर्विकल्प आनन्दका अनुभव होता है। यह धर्म है, धर्मका उपाय है। इसके बिना जो भी व्रत और चारित्र हैं वे सभी बालव्रत, बालतप और बालचारित्र हैं।

संसारमें जीव दुःखका वेदन कर रहे हैं। यदि सुख हो तो पर-पदार्थकी इच्छामात्र न हो। यदि आनन्द प्रगट हो तो परकी इच्छा ही न हो; सुखकी इच्छा होती है इसलिए वे दुःखी हैं। वास्तविक सुख आत्मामें है, उसके प्रगट होने पर दुःख दूर होते हैं। प्रथम आत्म-स्वभावका निर्णय करके पश्चात् उसमें लीन हो तो आत्माके अपूर्व आनन्दका अनुभव हो। इसलिये यदि सुखकी आवश्यकता हो तो पुरुषार्थ करके, विकल्प तोड़कर आत्मामें लीन होना; उससे अपूर्व आनन्दका अनुभव होगा। वही सम्यग्दर्शन है, वही सम्यग्ज्ञान है और वही समयसार है।

सम्यग्दर्शन (–सम्यक्त्व) गुण आत्माका ही है इसलिए आत्मामें होता है, बाहर नहीं। सम्यग्दर्शन संप्रदाय तथा वस्त्रादिमें नहीं किन्तु आत्मामें है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान पृथक् वस्तुएँ नहीं हैं। यहाँ सम्यग्दर्शन प्रगट करनेका कितना अच्छा उपाय बतलाया है। यही प्रथम उपाय है।

बालक, युवक या वृद्ध—सभीको करने योग्य तो यही है। सत्य-शरण यही है, अन्य कोई शरण नहीं है। मै ज्ञानस्वभाव हूँ—ऐसा निर्णय करके, उसमें स्थित होना, स्थित होकर आत्माका अनुभव करना ही मोक्षका उपाय है, दूसरा कोई मोक्षका उपाय नहीं है। इतनी भक्ति करना या इतनी दया करना—वह मोक्षका उपाय है—ऐसा आचार्यदेवने नहीं कहा है; परन्तु सच्ची प्रतीति करके उसमें स्थित होना, उसे आचार्य देवने मोक्षका उपाय कहा है। सच्चा समझनेके पश्चात्, सम्यग्ज्ञान होनेके पश्चात्, जब तक अपूर्ण है तब तक शुभपरिणाम आयेंगे; वह भक्ति भी करेगा, दया, दान, पूजा, भक्तिके परिणाम आयेंगे, परन्तु वह मोक्षका उपाय नहीं है। बीचमें आते अवश्य हैं, परन्तु वह आगे जानेका मार्ग नहीं है। सच्चे ज्ञानके विना आत्मा उत्तर नही देता। सच्चा स्वरूप समझे विना भव-बन्धनकी बेड़ी नहीं टूटती। कदाचित् पुण्य-परिणाम करेगा तो करोड़पतिके घरमें जन्म लेगा परन्तु उससे क्या हुआ? वह सब तो धूल-धाणीके समान है। उससे कहीं भव बन्धनका अभाव नहीं होगा। भव-बन्धनका अभाव तो सच्चे स्वरूपकी प्रतीति करके उसमें स्थिरता करनेसे ही होता है; और वही सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान है। उसके अतिरिक्त अन्य कोई सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान नहीं है।

अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहते हैं:—

(शार्दूलविक्रीडित)

आक्रामन्नविकल्पभावमचलं पक्षैर्नयानां विना
सारो यः समयस्य भाति निभृतैरास्वाद्यमानः स्वयम् ।
विज्ञानैकरसः स एष भगवान्पुण्यः पुराणः पुमान्
ज्ञानं दर्शनमप्ययं किमथवा यत्किंचनैकोऽप्ययम् ॥९३॥

अर्थ :—नयोंके पक्षोंसे रहित, अचल निर्विकल्प भावको प्राप्त करता जो समयका (आत्माका) सार प्रकाशित करता है—वह यह समयसार (शुद्ध आत्मा)—जो कि निभृत (निश्चल, आत्मलीन) पुरुषों द्वारा स्वयं आस्वाद्यमान है (स्वाद लिया जाता है, अनुभवन किया जाता है) वह—विज्ञान ही जिसका एक रस है—ऐसा भगवान है, पवित्र पुराणपुरुष है। ज्ञान कहो या दर्शन—वह यही (समयसार) है; अधिक क्या कहा जाये ? जो कुछ है वह यह एक ही है—(मात्र पृथक्-पृथक् नामोंसे कहा जाता है) ।

देखो तो ! यह कलश कितना ऊँचा है ! कितना सरल है ! यह तो अभी निम्नदशाकी बात है, धर्मके प्रारम्भवालेकी यह बात है, चतुर्थ भूमिकावालेकी यह बात है । जिन लोगोंने यथार्थ तत्त्व न सुना हो उन्हें ऐसा लगता है कि यह तो बहुत उच्च कक्षाकी बात है; परन्तु भाई ! तुझे अपनी महिमा नहीं जमी है, अपना माहात्म्य तुझे नहीं आया है, इससे ऐसा लगता है ।

प्रश्न :—अपना माहात्म्य स्वयं करता है या भगवानका ?

उत्तर :—वास्तवमें स्वयं अपने स्वभावका माहात्म्य करता है । भगवानका माहात्म्य करता है—वैसा कहना वह व्यवहार है । शुभराग आता है इससे सामनेवाले निमित्त पर आरोप करने माहात्म्य करता है, इसलिये ऐसा कहा जाता है कि भगवानका माहात्म्य करता है; परन्तु

जिसे आत्माका माहात्म्य हो उसीको सच्चा भगवानका माहात्म्य आता है। अपने आत्माका माहात्म्य–महिमाकी जिसे प्रतीति हुई है और आत्माकी पूर्णताकी तीव्र आकांक्षा जिसे जागृत हुई है—उसीको पूर्ण सर्वज्ञ वीतरागके प्रति सच्ची भक्ति आती है, बहुमान और अन्तरसे उत्साह उसीको आता है।

जीवोंको अपना माहात्म्य ही नहीं आता; अपना मकान यदि अच्छा बना हो तो उसका माहात्म्य आता है, दूसरोंको भी वह मकान माहात्म्यसे दिखाता है, घरमें कोई अच्छी वस्तु हो तो दूसरोंको बतलाता है। अरे भाई! उस धूलके चित्रका तो तुझे माहात्म्य है, परन्तु तेरा चित्र अन्दर कैसा है, उसका कुछ माहात्म्य है या नहीं? अपने चैतन्य भगवानका अपनेको जब तक माहात्म्य न आये तब तक किसी प्रकार कल्याण नहीं हो सकता।

यहाँ इस कलशमें कहते हैं कि शुद्ध, अशुद्ध, बद्ध, अबद्ध, निर्मल, समल इत्यादि नयोंके विकल्प आते हैं, उनसे रहित, अचल, असंख्यप्रदेशी, चैतन्यमूर्ति आनन्दघन आत्मा, निर्विकल्प भावको प्राप्त होता हुआ जो समयका सार है उसे प्रकाशित करता है। राग-द्वेषके जो विकल्प हैं वह आत्माका सार नहीं है। शुभाशुभ विकल्पोंसे रहित, आकुलता रहित, निर्विकल्पस्वरूप, अमृत-आनन्दमय आत्माका अनुभवन करनेमें समयका सार प्रकाशित होता है। वह समयका सार कैसे पुरुषों द्वारा आस्वाद्यमान है? निश्चल, आत्मलीन पुरुषों द्वारा आस्वाद्यमान है, अचञ्चल पुरुषों द्वारा स्वयं आस्वाद्यमान है, धीर पुरुषों द्वारा वह आस्वाद्यमान है। (वह अनुभव क्रिमके वशसे होता है?) जो स्वरूपमें स्थित है और धीर हैं—वैसे पुरुषोंके वशसे आत्मस्वरूप आस्वाद्यमान है।

जैसे किसी लम्बे सूतमें गांठ लग गई हो, तब उस गांठको

निकालनेके लिए कितना धीर होना चाहिये; उसी प्रकार अनन्तकालकी भ्रान्तिकी गांठ निकालनेके लिए तो भारी धैर्य होना चाहिए। अनन्त गुण-पर्यायका पिण्ड आत्मा धीर पुरुषों द्वारा अनुभवमें आता है। जिस प्रकार मणिदीप चाहे जैसे पवनके झोंकोंसे भी नहीं हिलता, उसी प्रकार चाहे जैसे बाह्य संयोगोंमें भी न डिगें—ऐसे अचल, आत्मलीन पुरुषों द्वारा आत्मरस आस्वाद्यमान है। यह विज्ञान ही एक जिसका रस है, अचिंत्य और अपूर्व जिसका आत्मरस है—ऐसा भगवान आत्मा है, वह पुराण-पुरुष है, प्राचीनसे प्राचीन है—नवीन प्रगट नही होता; (उसे ज्ञान कहो, दर्शन कहो, चारित्र कहो, सत् कहो, शान्ति कहो, आनन्द कहो वह यह समयसार ही है)। जैसे सोनेको पीला कहो, चिकना कहो, भारी कहो—जो कुछ कहो वह सोना ही है, (उसीप्रकार आत्माके संवेदनमें आचार्यपद कहो, उपाध्यायपद कहो, मुनिपद या सम्यक्‌पद—जो कुछ कहो वह यह एक ही है; चारित्र, आराधना, समाधिमरण, वीर्य, अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, सिद्ध और अरिहन्तपद भी यही है)।

(विकल्पको पद नहीं कहा जाता। विकल्पको अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय नहीं कहा जाता। विकल्पको सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान नहीं कहा जाता)। स्वरूपानुभवमें ही यह समस्त पद आते हैं। अनुभवके अतिरिक्त यह पद क्या कहीं बाहर होगा? बाहरसे पद दिया जाता है वह व्यवहार है, परमार्थसे इसीमें समस्त पद आ जाते हैं। अनुभव अंशतः पूर्णता तक बढता अवश्य है, लेकिन सभी पदोंमें अनुभव तो यही है। अधिक क्या कहें? जो कुछ है वह यही है; उसे स्वभाव कहो, अनुभव कहो, साक्षात्कार कहो या साक्षात् प्रभुके दर्शन कहो—जो कुछ कहो वह सब यही है। अधिक क्या कहें? जो कुछ कहो वह यह एक ही है, मात्र पृथक्‌-पृथक् नामसे कहा जाता है।

अब विशेष कहते हैं कि प्राप्तकी प्राप्ति है, कहीं अप्राप्तकी प्राप्ति नहीं है। सत् तो है ही परन्तु उसका लक्ष हट गया था, स्वभावमेंसे च्युत हो गया था, मान्यतामें फेर आ गया था—वह ज्ञानमें आ मिलता है; भूल हुई थी उसे टालकर उपयोग आत्माके साथ मिल जाता है। वस्तु तो जैसी ही है वैसी है, परन्तु पर्याय स्वभावमें आ मिलती है।

यह आत्मा ज्ञानसे च्युत हुआ था, वह ज्ञानमें ही आ मिलता है—ऐसा अब कहते हैं:—

(शार्दूलविक्रीडित)

दूरंभूरिविकल्पजालगहने भ्राम्यन्निजौघाच्च्युतो,
दूरादेव विवेकनिम्नगमनान्नीतो निजौघं बलात् ।
विज्ञानैकरसस्तदेकरसिनामात्मानमात्मा हरन्
आत्मन्येव सदा गतानुगततामायातयं तोयवत् ॥ ९४ ॥

अर्थ:—जिस प्रकार पानी अपने समूहसे च्युत हुआ दूर गहनवनमें बह रहा हो उसे दूरसे ही ढालवाले मार्ग द्वारा अपने समूहकी ओर बलपूर्वक ढाला जाता है। पश्चात् वह पानी, पानीको पानीके समूहकी ओर खींचता हुआ प्रवाहरूप होकर अपने समूहमें आ मिलता है; उसीप्रकार यह आत्मा अपने विज्ञानघन स्वभावसे च्युत होकर प्रचुर विकल्पजालके गहनवनमें दूर भ्रमण करता था, उसे दूरसे ही विवेकरूपी ढालवाले मार्ग द्वारा अपने विज्ञानघन स्वभावकी ओर बलपूर्वक मोड़ा गया। केवल विज्ञानघनके ही रसिक पुरुषोंको जो एक विज्ञानरसवाला ही अनुभवमें आता है—ऐसा वह आत्मा, आत्माको आत्मामें खींचता हुआ (ज्ञान ज्ञानको खींचता हुआ प्रवाहरूप होकर) नित्य विज्ञानघन स्वभावमें आ मिलता है।

आचार्यदेव अब दृष्टान्त देते हैं—जैसे पानी अपने समूहसे च्युत हुआ अर्थात् पानीके प्रवाहकी धारा कहीं उल्टी-सीधी निकल गई, फिर

वह गहनवनमें फिरता रहता है और यदि ढालू-मार्ग मिल जाये तो ढालवाले मार्गमें चला जाता है और पानीमें मिल जाता है। दूरसे ही ढालू मार्गमें बलपूर्वक मोड़ा जाये अर्थात् ढालू मार्ग हो उसमें थोड़ी लकीर बनावे तो पानी पानीमें जाये, पानी पानीके बलसे, पानीको, पानीके समूहकी ओर खींचता हुआ पानीमें जाकर मिलता है। ढालू मार्गमें पानी ढले और फिर पीछेका पानी वेग देता है अर्थात् धकेलता है इससे पानी प्रवाहरूप होकर पानीमें जाकर मिल जाता है। इसीप्रकार आत्मा विज्ञान-घनसे च्युत हुआ है और विकल्पजालके गहनवनमें भ्रमण करता है;—ऐसा कहकर आचार्यदेव यह कहते हैं कि—आत्मा बिल्कुल शुद्ध नहीं है, अवस्थामें भूल है। यदि अवस्थामें भूल न हो तो यह संसार किसका? यदि अवस्थामें भूल न हो तो अवस्थामें मलिनता होगी ही कैसे? इसलिए आत्माने भूल की थी, उससे विमुख होता है। आत्माका स्वभाव तो ज्ञान-आनन्दका कन्द है, विकल्पजाल आत्माका स्वभाव नहीं है, आत्मा विज्ञानघन, अरूपी ज्ञान-आनन्दकी मूर्ति है। ऐसे स्वभावसे च्युत होकर भ्रांतिमें और राग-द्वेषकी वृत्तिओंमें भ्रमण करता है; शरीर, इन्द्रियाँ, शुभाशुभविकल्प—यह सब मैं ही हूँ—इस प्रकार भ्रान्ति द्वारा विकल्पजालके गहनवनमें फिरता रहता है, प्रचुर विकल्पजालमें फँसा रहता है।

स्त्री, पुत्र, कुटुम्बादिके लिए कुछ कर दूँ—ऐसा अज्ञानी मानता है, परन्तु परका कुछ नहीं कर सकता और व्यर्थका अभिमान करता रहता है; चाहे जितने धक्के खाए लेकिन विकल्पजालसे नहीं निकलता। मकड़ी जिस प्रकार जालमें फँसती है उसी प्रकार यह तृष्णाके जालमें उलझता है। अपने विज्ञानघनस्वभावसे च्युत हुआ प्रचुर विकल्पजालके गहनवनमें दूर भ्रमण करता था। जिस प्रकार पानी अपने क्षेत्रको छोड़कर दूर गया था, उसीप्रकार आत्मा अपना क्षेत्र छोड़कर दूर नहीं गया है परन्तु स्वभावसे दूर गया है, नयके विकल्पमें, पुण्य-पापके विकल्पजालमें दूर

भ्रमण करता है। अनन्त भव कीड़े-मकोड़े, नारकी, देव इत्यादिके किए तथापि विकल्पजालका अन्त नहीं आया। मनुष्य भवमें आया परन्तु यदि आत्माका भान नहीं किया तो पूरी आयु बीत जाने पर भी विकल्पोंका अन्त नहीं आता, विकल्पजाल नही टूटता; परन्तु जहाँ स्व-परका विवेक किया वहाँ स्वरूपमें जा मिलता है और विकल्पजाल टूट जाता है।

दूरसे ही विवेक किया अर्थात् विकल्पोंमें नहीं मिला; विकल्प हैं अवश्य परन्तु स्वसे पृथक् ऐसे विकल्पोंका भेदज्ञान करके विकल्पोंको गौण किया। मै शुद्ध हूँ, ज्ञायक हूँ, आनन्दघन हूँ,—इस प्रकार स्व-परका विवेक करके स्वोन्मुख हुआ और विकल्पोंसे विमुख हुआ।

विवेक किया अर्थात् अपनेको पकड़ा; परन्तु अभी स्थिरता नहीं हुई, सम्यग्ज्ञान हुआ है। [प्रारम्भमें आगमका ज्ञान करता था तभीसे विवेक प्रगट करनेका प्रयत्न करने लगा है। प्रथमसे ही विवेक प्रगट करनेका वह मार्ग है]। प्रयत्न द्वारा यथार्थ विवेक प्रगट करके जो विकल्पोंके गहनवनमें रुका था उसे, मै ज्ञानस्वरूप हूँ, परसे पृथक् करनेके ढालू मार्गकी ओर मोडते हैं, बलसे अपनेमें विवेक करके मोड़ते हैं। 'बलसे'— ऐसा कहनेमें आचार्यदेवका तात्पर्य यह है कि तेरे पुरुषार्थसे कार्य होता है।

यहाँ पानीका दृष्टान्त लागू होता है। पानी पत्थरोंको तोड़ डालता है, उसीप्रकार सम्यग्ज्ञान भावकर्म और द्रव्यकर्मरूपी पत्थरोंको तोड डालता है। जैसा पानीका प्रवाह है वैसा ही ज्ञानका प्रवाह है, जो ज्ञान परसन्मुख दूर रहता था उसे स्वसन्मुखतासे स्वरूपमें नजदीक प्रवाहित किया जा सकता है।

विज्ञानघन स्वभावकी ओर बलपूर्वक मोड़नेमें आया अर्थात् अपने पुरुषार्थसे तू ज्ञानस्वभावकी ओर उन्मुख हुआ, ज्ञानस्वभावरूप हुआ। तेरे पुरुषार्थके बिना कोई भी ऐसा नहीं है जो तुझे विज्ञानघन स्वभावका

स्वाद दे; यदि ज्ञानकी दिशा अपने स्वभावसन्मुख कर तो तेरा स्वाद तुझे अनुभवमें आयेगा।

[विज्ञानघनके रसिकको विज्ञानघनमें ही शांति है, उसीमें रस है, उसीमें लीन होता है; वह उसीका अनुभव करता है और प्रयत्न भी उसीका करता है। ऐसा आत्मा आत्माको आत्मामें खींचता हुआ (ज्ञान ज्ञानको खीचता हुआ प्रवाहरूप होकर) नित्य विज्ञानघन स्वभावमें आ मिलता है।

जिसके पास पूँजी नहीं होती वह प्रथम तो मिट्टीकी कुन्डियोंमें चने, मूँगफली आदि थोडीसी चीजें रखकर उनका व्यापार करता है; ऐसा व्यापार करते-करते एक वर्षमें दो सौ रुपये बढते हैं, थोडी पून्जी हो जाती है और फिर वह पूञ्जी बढ़ाता रहता है, इसी प्रकार [प्रथम आगम द्वारा और श्रीगुरुके उपदेश द्वारा विवेक प्रगट करनेका प्रयत्न करे, प्रयत्न करते-करते विवेक प्रगट होता है]। विवेक प्रगट होने पर विकल्प और मै दोनों पृथक् हैं—ऐसा भेदज्ञान करके, विकल्पोंको गौण करके, यह मेरा नहीं है, मेरा नही है—इस प्रकार परभावोंका अस्वीकार करते हुए बलसे ज्ञान-उपयोगको स्वोन्मुख करता है। प्रथम तो पुरुपार्थ करके बलसे स्वोन्मुख करता है, और फिर तो वेग आत्माकी ओर जमा कि आत्मा आत्माको आत्मामें खींचता हुआ आत्मामें आकर मिल जाता है; फिर तो पूञ्जी पून्जीको बढाती है; उसी प्रकार आत्मामें जमा कि वहाँ निजस्वरूपका उपयोग करता है और बुद्धिपूर्वकके विकल्प छूट जाते हैं। इस प्रकार साधकदशामें वृद्धि होते-होते वीतराग होने तक स्थिरता बढ़ती जाती है, और फिर पून्जी पून्जीको बढाती है।

प्रारम्भमें छोटा व्यापार करे अर्थात् आगम द्वारा और श्रीगुरुके उपदेश द्वारा विवेक प्रगट करनेका प्रयत्न करे और विवेक प्रगट होनेके पश्चात् तो पून्जीसे पून्जी बढ़ती जाती है।

पुरुषार्थ द्वारा यथार्थ विवेक, यथार्थ प्रतीति प्रगट करके जो यह सत्, यह अस्ति, यह ज्ञान है सो मैं हूँ; यह विकल्प-राग मैं नहीं हूँ, यह आकुलता मैं नहीं हूँ—इस प्रकार अस्वीकार करता, भ्रवस्वभावमें परकी नास्ति स्वीकार करता और अपने सत्स्वरूपमें अपनी अस्ति स्वीकार करता हुआ ढालवाले मार्गमें ज्ञानज्ञानको खींचता हुआ ज्ञानमें आ मिलता है।

जिस प्रकार पानीको ढाल मिला कि वह दौड़ता है; आगेका पानी खींचता है और पीछेका पानी उसे धकेलता है, इस प्रकार जाकर पानी पानीमें मिल जाता है; इसी प्रकार आत्मामें ढालवाला मार्ग (नीचा नहीं किन्तु ढाल अर्थात् सीधा रास्ता, विवेकरूपी ढाल) अर्थात् विवेकका सीधा मार्ग हो गया, विवेकी ज्ञान स्थिर होता हुआ अर्थात् ज्ञान ज्ञानको खींचता हुआ प्रवाहरूप होकर सदैव विज्ञानघन स्वभावमे आ मिलता है।

स्वभावकी ओर झुकता हुआ, स्वभावका बहुमान करता हुआ, स्वभावोन्मुख होता हुआ, परसे भेदज्ञान करता हुआ, स्व-परका विवेक करता हुआ,—स्व-परको पृथक् करता हुआ ज्ञान-उपयोग भगवान आत्मामें मिल जाता है, बढ़ते-बढ़ते नित्य विज्ञानघनस्वभावमें पूर्ण होता है।

आचार्यदेवने यहाँ किसी ऐसी शैलीसे रचना की है कि–प्रथम आगमज्ञान कर, पश्चात् मैं ज्ञानस्वभावी आत्मा हूँ—ऐसा निश्चय कर, पश्चात् अनुभव कर—ऐसा क्रम इसमें दिया है। देखो, इसमें 'काल या कर्म बाधा देते हैं'—आदि कुछ नहीं आया, मात्र पुरुषार्थ ही आया है।

आत्मा परका माहात्म्य होनेसे मिथ्यात्वके मार्गद्वारा स्वभावसे बाहर निकलकर, विकल्पोंके मार्गमें भ्रमण करता था, उसे वहाँसे पृथक करनेके विवेकवाले मार्ग द्वारा स्वयं अपनेको खींचता हुआ, रागका संगठन तोड़ता, स्वयं ही अपने स्वभाव द्वारा स्वभावमें स्थिरता करता हुआ विज्ञानघन स्वभावमे आ मिलता है, स्वयं विज्ञानघन होता है वहाँ विकल्प छूट जाते हैं।

सदा द्रष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्ति माही दरव–गुण–पर्याय विलसे,
निजालबीभावे परिणति स्वरूपे जइ भळे,
निमित्तो वहेवारो चिदघन विषे काइ न मळे
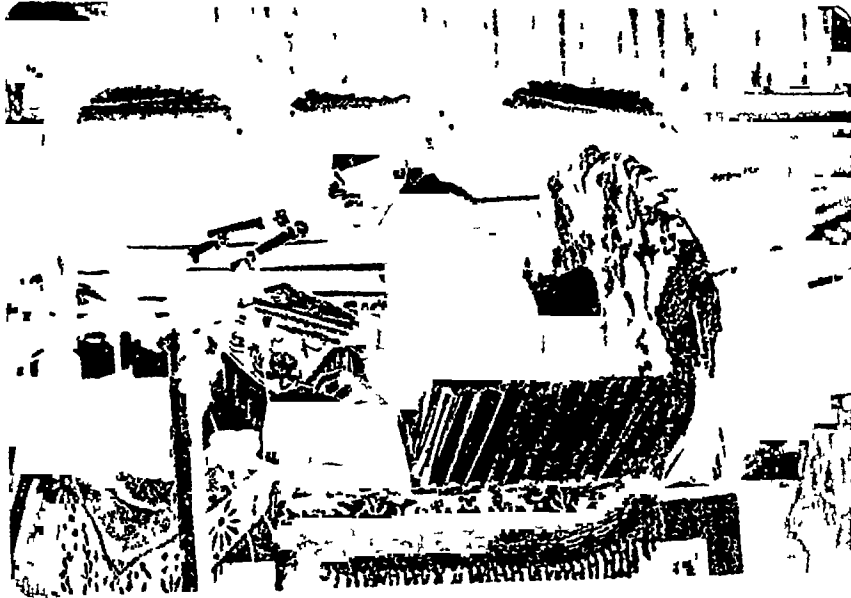
* परमागममंदिरनी प्रतिष्ठा प्रसंगे प्रवचनामृत पीरसता कहानगुरु*

पू. गुरुदेव श्री कानजीस्वामी
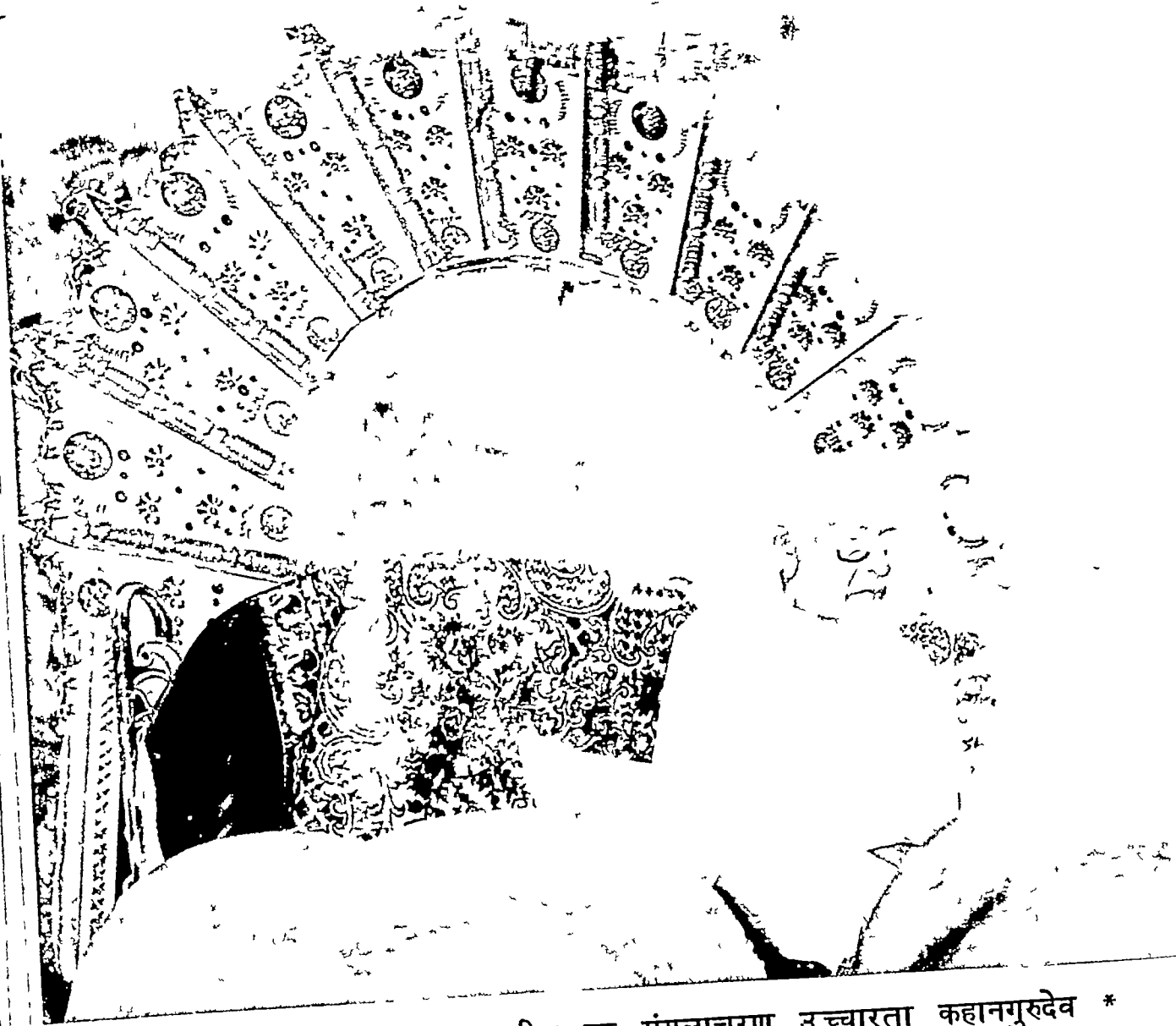
* कमलाकार भव्य प्रवचनपीठ पर मंगलाचरण उच्चारता कहानगुरुदेव *

द्रव्य सकळनी स्वतंत्रता जग माही गजावनहारा,
वीरकथित स्वात्मानुभूतिनो पथ प्रकाशनहारा,
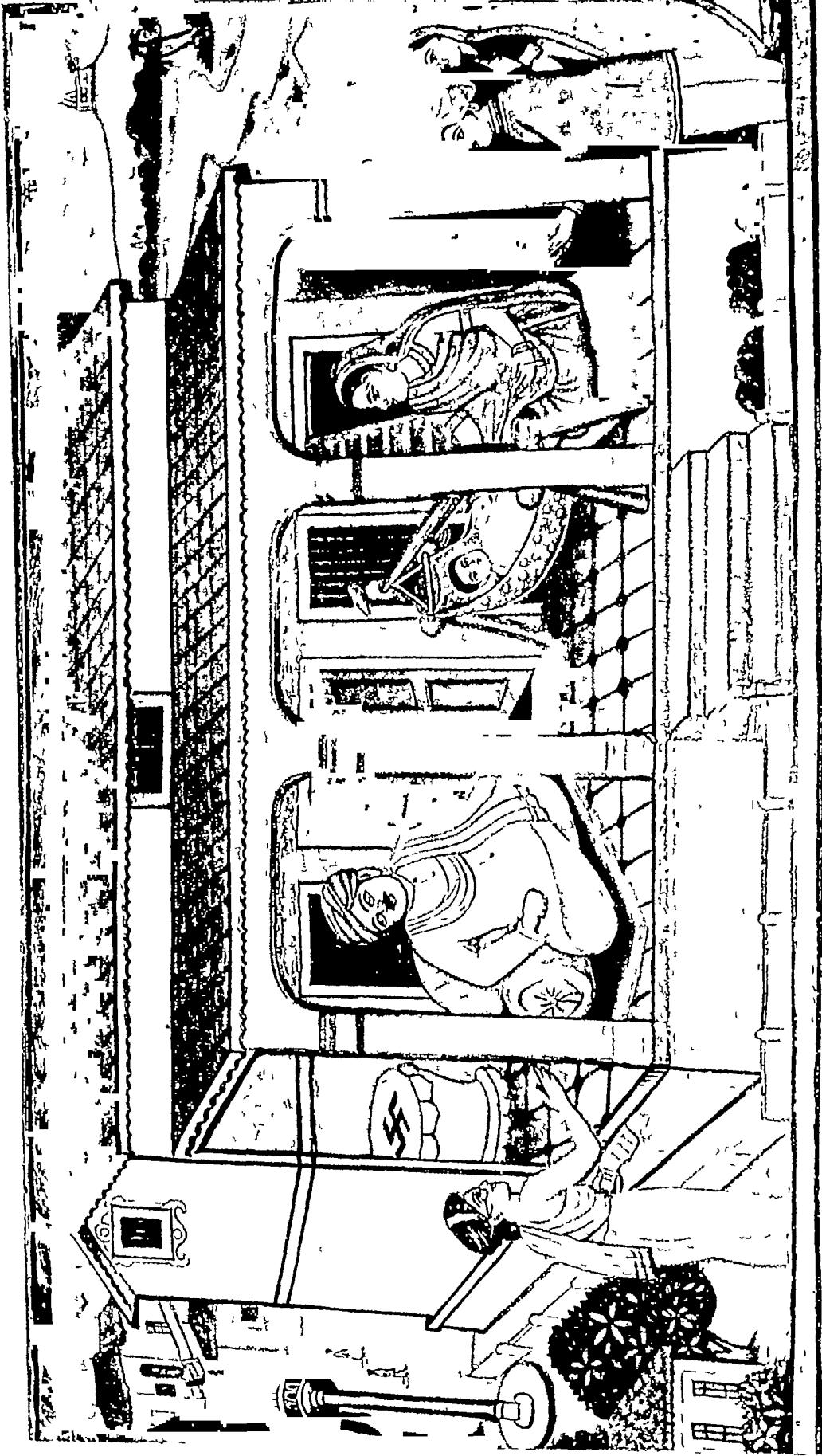
*

[१] भावनगर जिल्लाना उमराळा गाममा कहानकुवरनु जन्मधाम उजमबा माता हालरडु गाता गातां कहानकुवरने हींचोळे छे; कहानकुवरना जोष जोवा आवेला ज्योतिषीने पिताश्री मोतीचंदभाइ प्रसन्नचित्ते आवकारे छे, सगासबधी तेजस्वी बाळकने निहाळीने प्रमुदित थाय छे
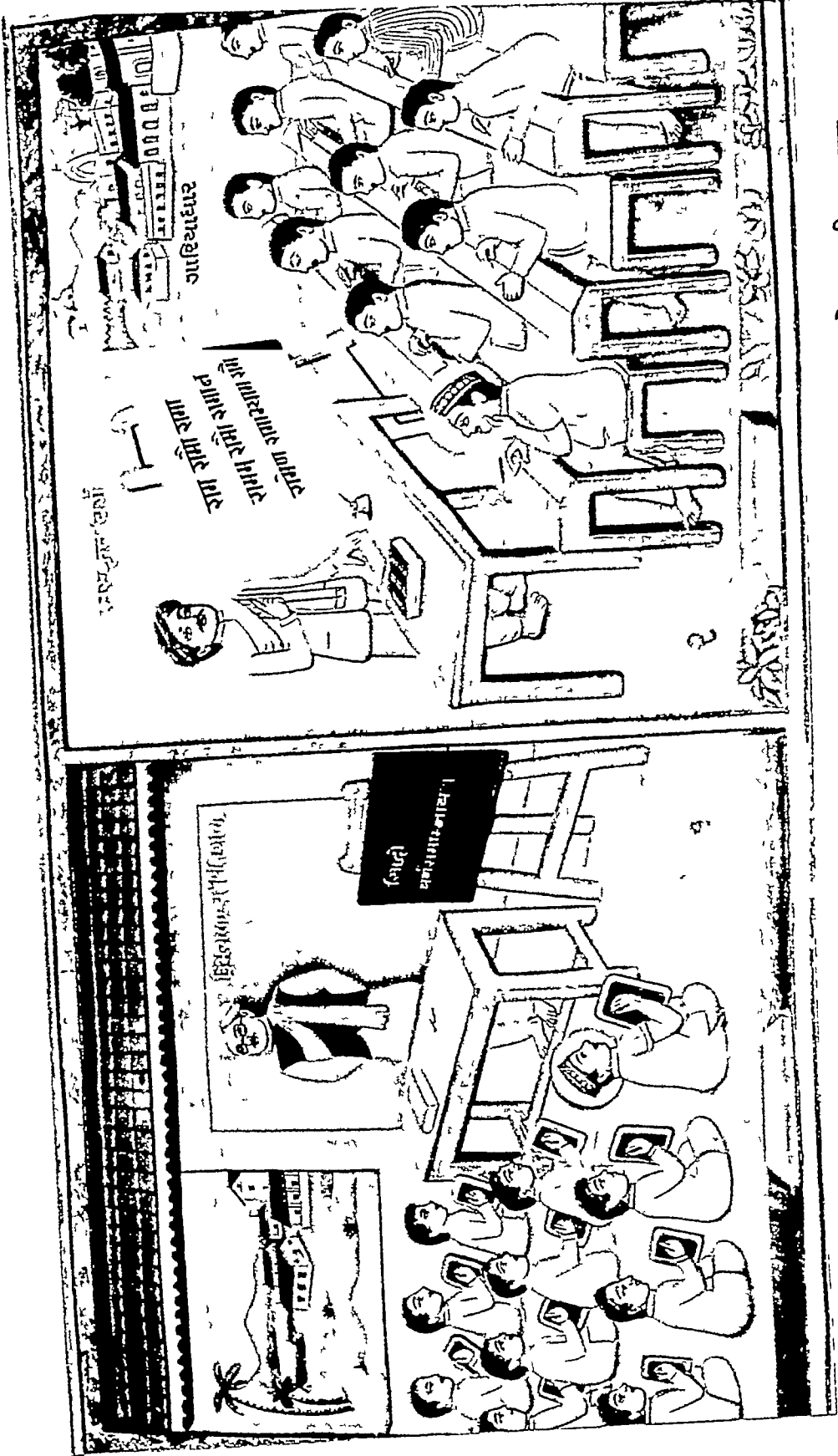
कहानगुरु—जीवनदर्शन

[२] १ जन्मधाम उमराळानी धूडी निशाळ, ज्या कहानकुवर प्रथम ज 'सिद्धो वर्णसमाम्नाय' ए पाठ शीख्या हता
२ पूर्वना धर्मसंस्कारी कहानकुंवरने गारियाधार गामना संस्कृतवर्गमा 'आमा आत्मानु काइ आवतु नथी' एम लागवाथी, आत्मज्ञानहेतुशून्य संस्कृत भाषाना भणतरमा रस पडतो नथी

कहानगुरु—जीवनदर्शन
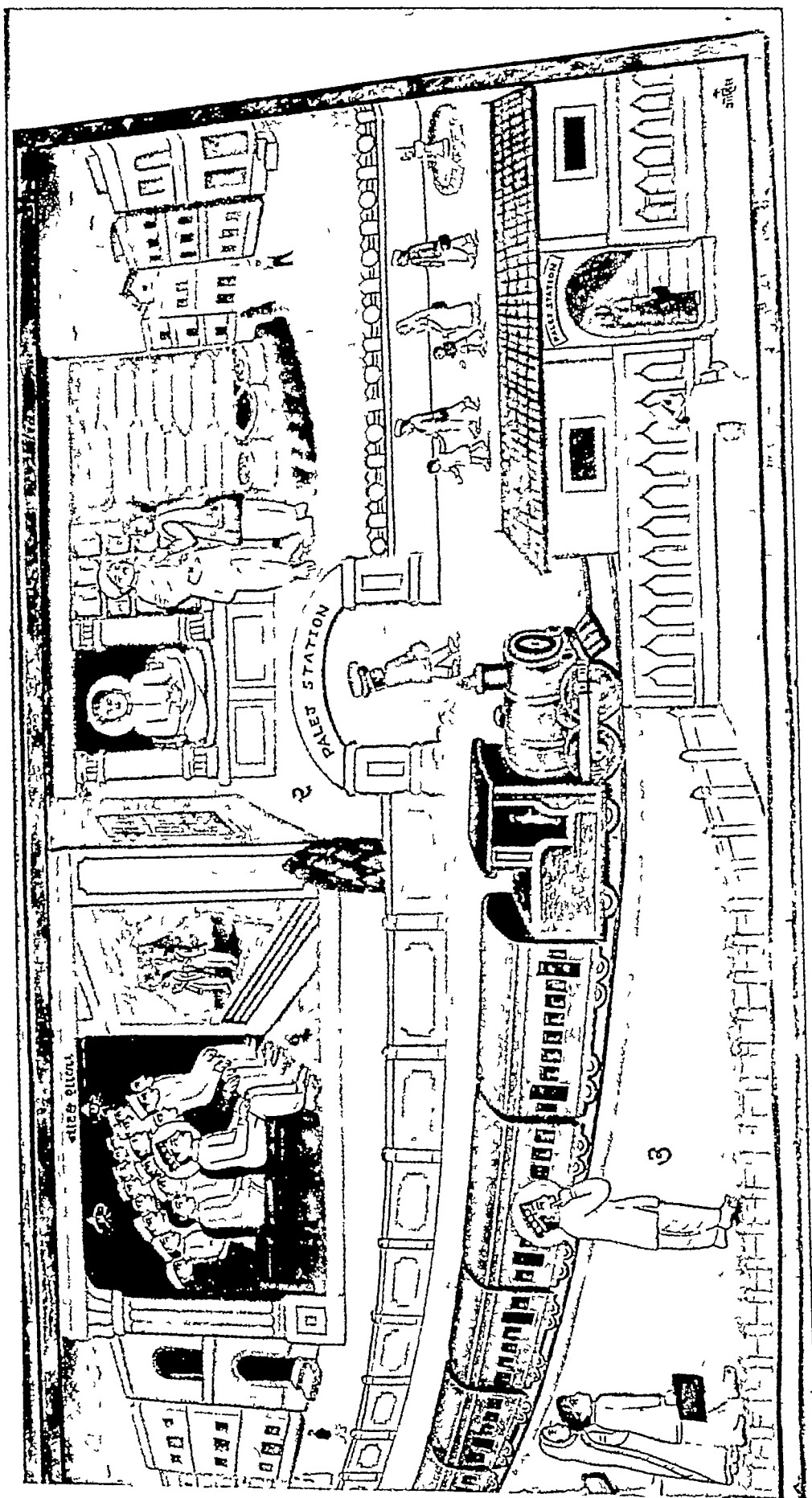
[४] (१) कहानकुवर नाटक जोतां पण वैराग्यभावथी भिजाता (२) अेक वार रामलीला जोइने वैराग्यनी धूनथी 'शिवरमणी रमनार तुं, तु ही देवनो देव' — अे पक्तिथी शरू थतु अेक वैराग्यरसझरतुं काव्य सहज रचाइ जाय छे. (३) दीक्षा लेवाना भाव होवाथी योग्य गुरुनी शोध माटे प्रवासे नीकळे छे

कहानगुरु–जीवनदर्शन
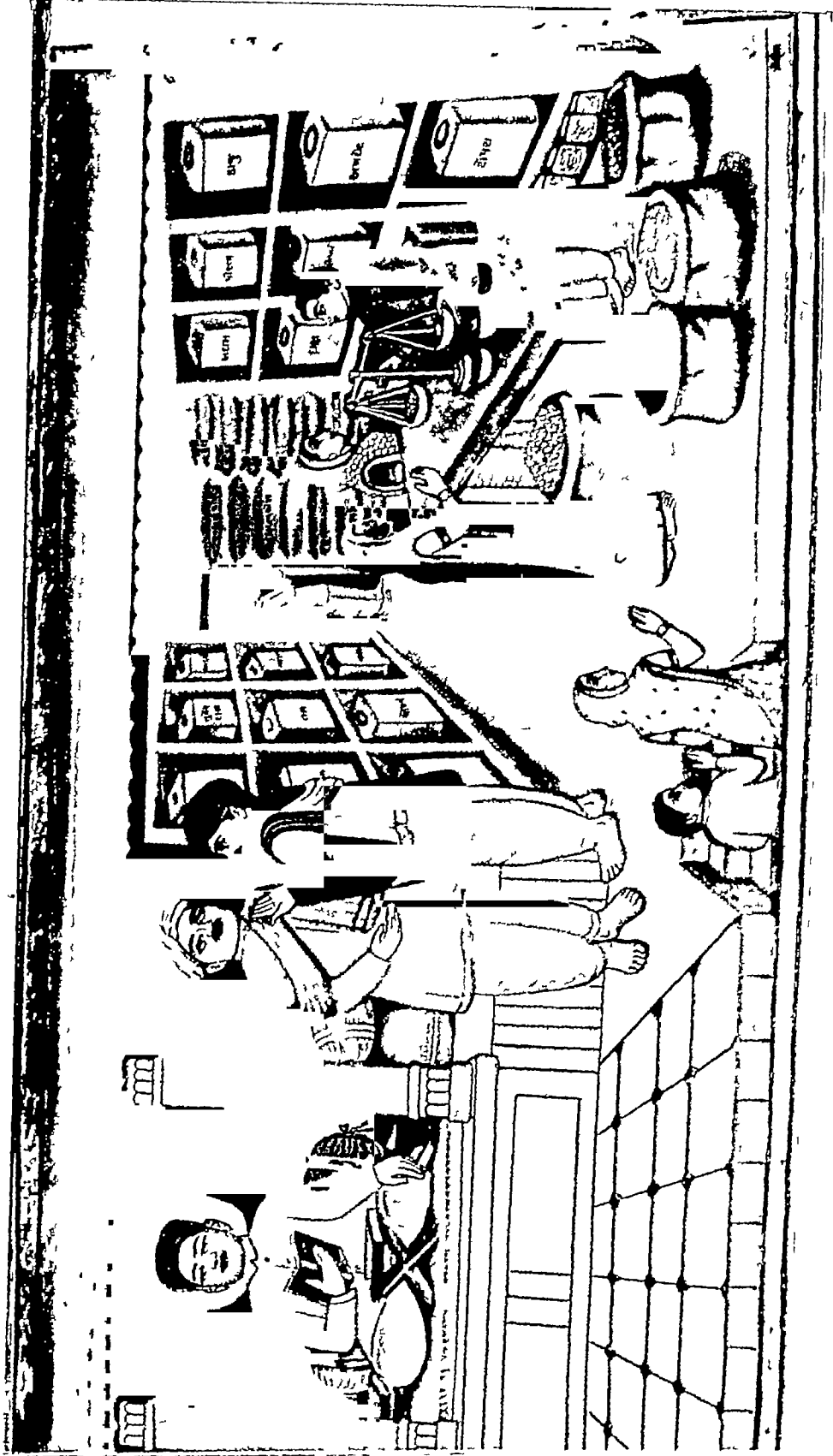
[३] भरूच जिल्लाना पालेज गाममां दुकान पर पण धर्मरसिक कहानकुवर वेपारनी उपेक्षापूर्वक धार्मिक ग्रथोनुं वाचन करे छे

कहानगुरु—जीवनदर्शन
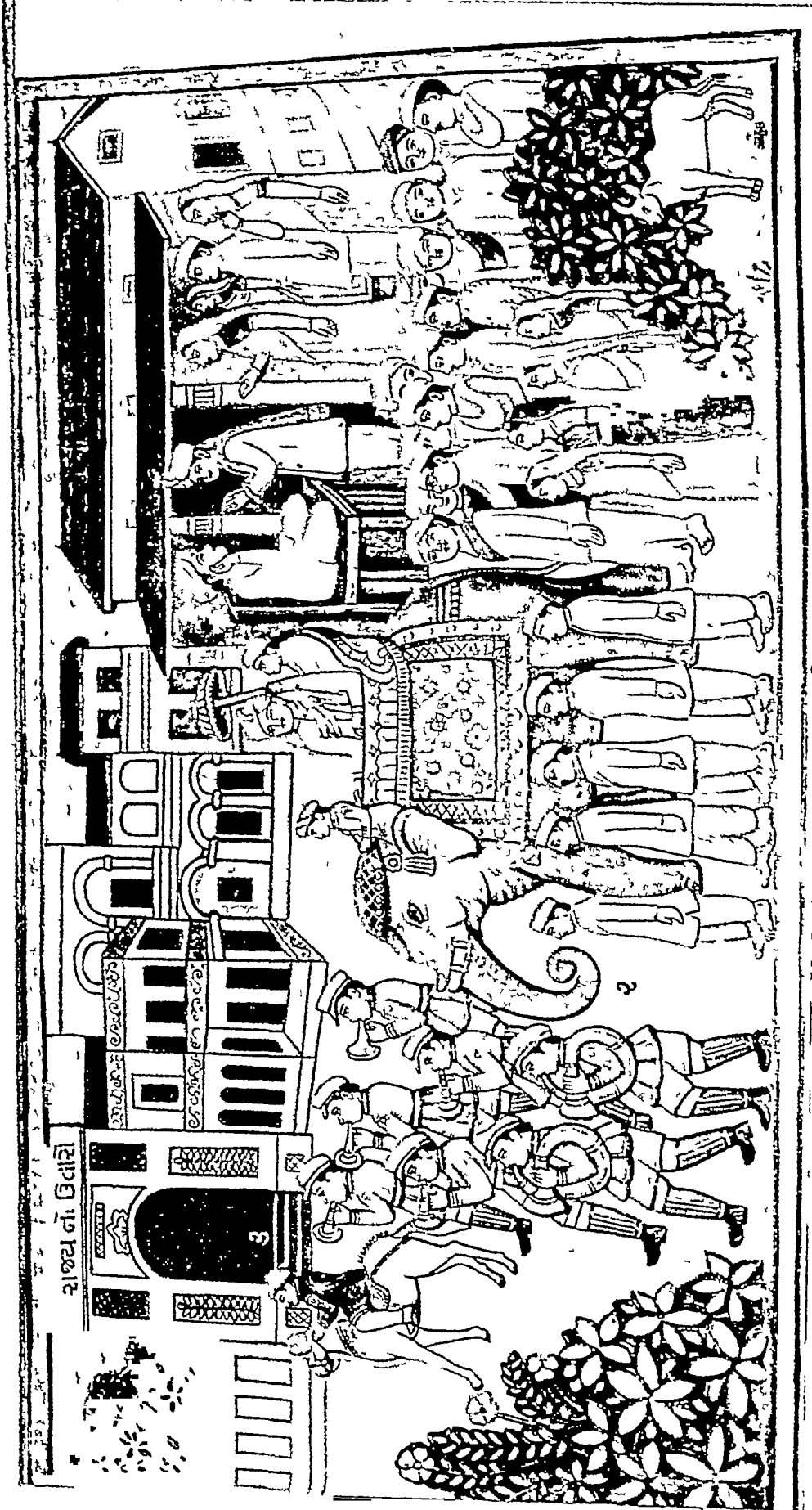
[५] वैरागी कहानकुंवर वडील बंधु खुशालभाइ पासे दीक्षानी अनुज्ञा मागे छे. (२) जन्मभूमि उमराळामां हाथीने होद्दे दीक्षानो भव्य वरघोडो. (३) दीक्षाविधिस्थळ – राज्यनो उतारो.

[६] पूर्वना धर्मसस्कारी पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीना अतर्जीवनमा, श्रीमद्‌भगवत्कुदकुदाचार्यदेवप्रणीत परमागम समयसारना गहन अवगाहन वडे थयेलुं परम पावन परिवर्तन (२) श्री समयसारना प्रणेता भगवान कुदकुदाचार्यदेव प्रत्ये गुरुदेवनी अगाध भक्तिनु चित्र द्वारा दिग्दर्शन (३) सोनगढना अेकात स्थळमां — 'स्टार ऑफ इन्डिया' नामना जूना मकानमा — श्री पार्श्वनाथप्रभुना चित्रपट समक्ष गुरुदेवे करेलु सप्रदाय 'परिवर्तन' (४)

कहानगुरु—जीवनदर्शन
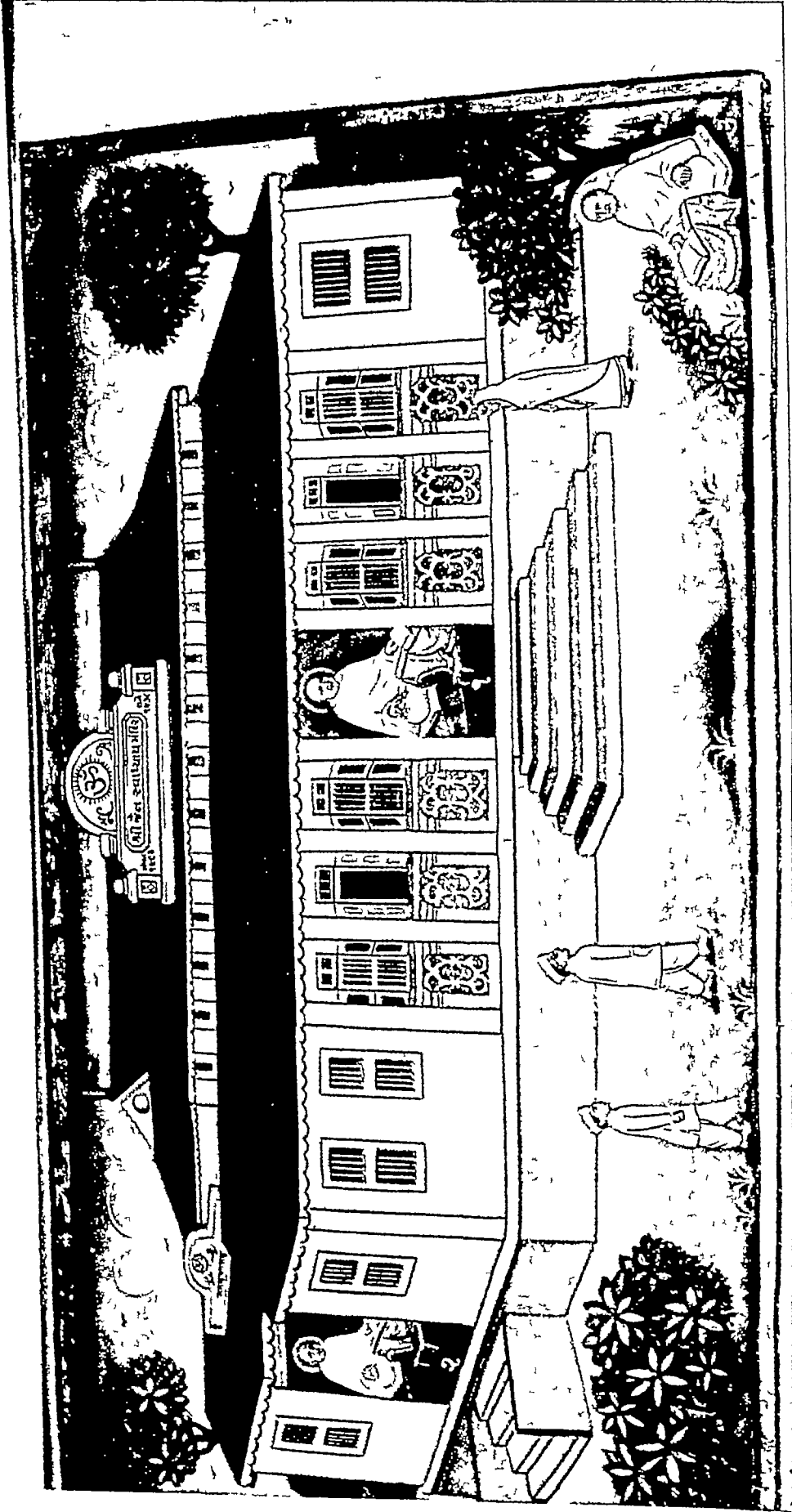
[७] पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीना निवासनुं ने प्रवचननुं स्थान . स्वाध्यायमंदिर. पूज्य गुरुदेव – (१) स्वाध्यायमंदिरना प्रवचनखंडमां प्रवचन आपता; (२) स्वाध्याय–ध्यानखंडमां स्वाध्याय–ध्यानरत; (३) वृक्षतळे स्वाध्यायरत

[८] सोनगढना जिनमदिरमां गुरुदेव श्री कानजीस्वामी द्वारा परमपूज्य श्री सीमधरादि जिनेन्द्रभगवतोने अतिशय भक्तिभाव सहित वंदना (२) पूज्य गुरुदेवश्रीनु शास्त्रप्रवचन, तथा गुरुदेवना पुनित प्रतापे विशाळ शास्त्रभडार.
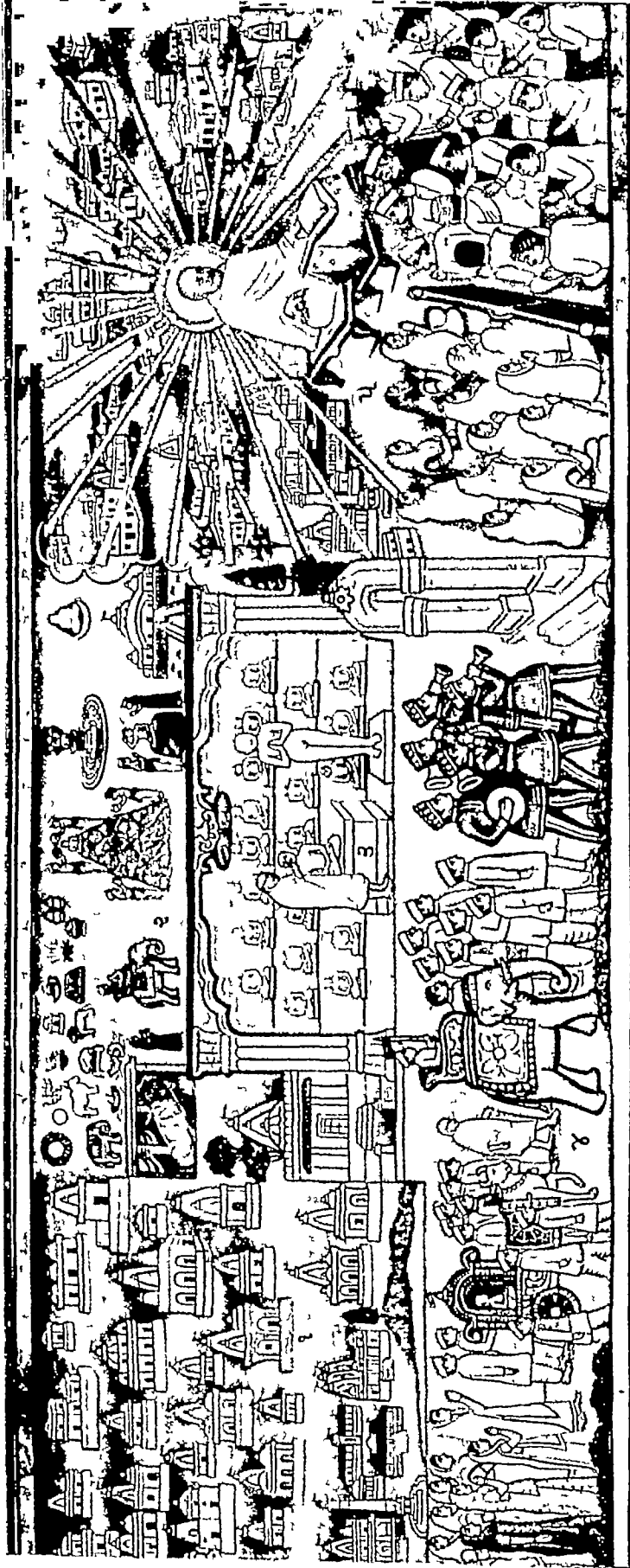
[१] पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीना पावन प्रतापे सौराष्ट्र तेम ज अन्य प्रांतोमां नवनिर्मित दिगंबर जिनमंदिरो; (२) जिनेन्द्र–पंचकल्याणक; (३) पूज्य गुरुदेवना पवित्र करकमळे जिनबिंब–अंकन्यासविधि; (४) भव्य जिनेन्द्ररथयात्रा, (५) देश–विदेशव्यापी ज्ञानकिरणो प्रसारनार, जिनशासनप्रभावक, स्वात्मानुभवी पूज्य गुरुदेव द्वारा पंचकल्याणक–प्रतिष्ठामहोत्सव प्रसंगे अध्यात्मरसझरतुं जिनेन्द्रभक्तिभीनुं भाववाही प्रवचन.
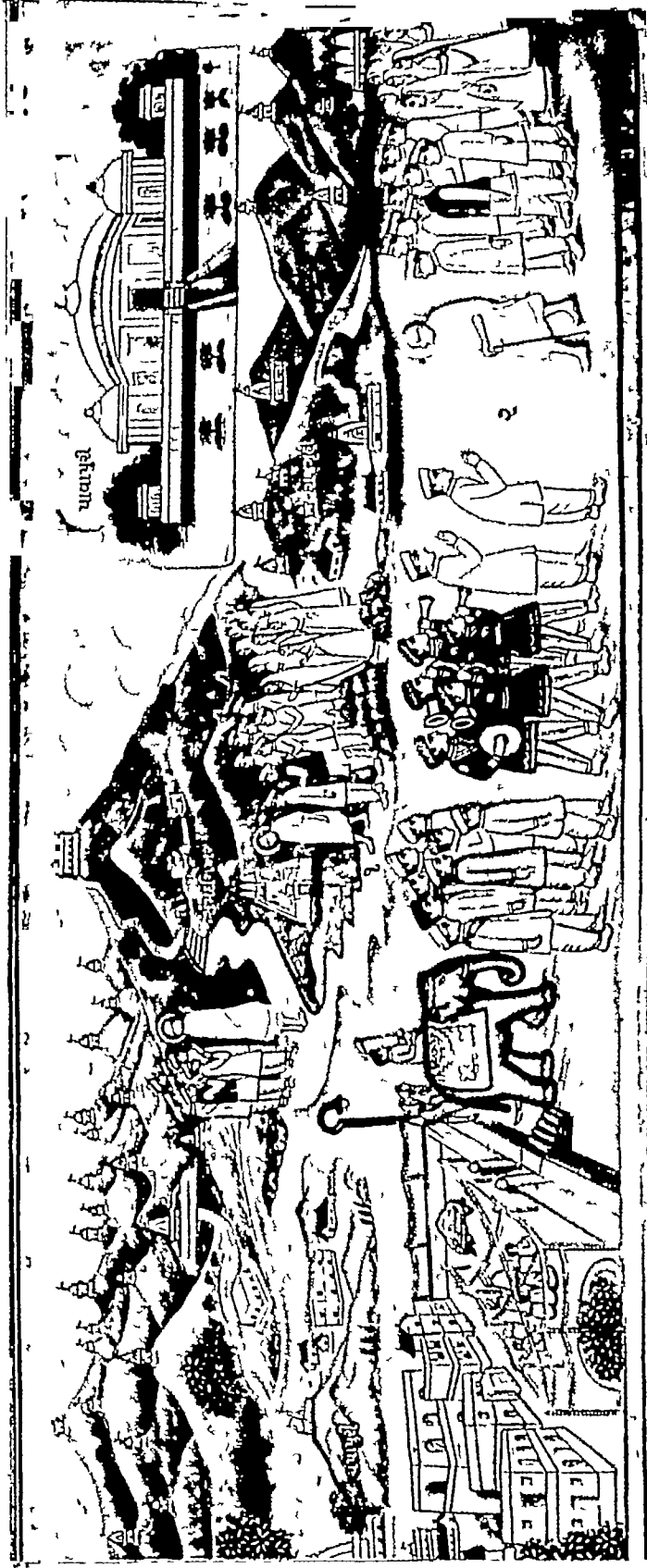
पू. गुरुदेव श्री कानजीस्वामी

[१०] (१) सहस्राधिक भक्तोना विशाळ संघ सहित पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी द्वारा श्री सम्मेदशिखर, राजगृही, पावापुरी, चंपापुरी, मंदारगिरि आदि पूर्व–उत्तर भारतना जैन तीर्थोनी भक्तिभावभीनी अनुपम यात्रा (२) नगरे नगरे पूज्य गुरुदेवश्रीना भावभीना अद्‌भुत स्वागत तथा अध्यात्मतत्त्वरसभरपूर प्रभावक प्रवचनो (वि स २०१३)

कहानगुरु—जीवनदर्शन

[११] (१) जंबूद्वीपना पूर्वविदेहक्षेत्रमां बिराजमान वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा श्री सीमंधर भगवाननी समवसरणसभामां भरतक्षेत्रना दिगंबर जैनाचार्य श्री कुंदकुंदमुनिराज अने विदेहक्षेत्रना गुणियल राजकुमार. (२) श्री सीमंधरप्रभु अने कुंदकुंदयोगीराज पासेथी उपलब्ध ज्ञानधोधनो पुनित प्रवाह गुरुदेव श्री कानजीस्वामी द्वारा भारतवर्षमां — देशोदेशमां फेलाय छे अने अध्यात्मज्ञाननी हरियाळी छवाइ जाय छे.

कहानगुरु—जीवनदर्शन
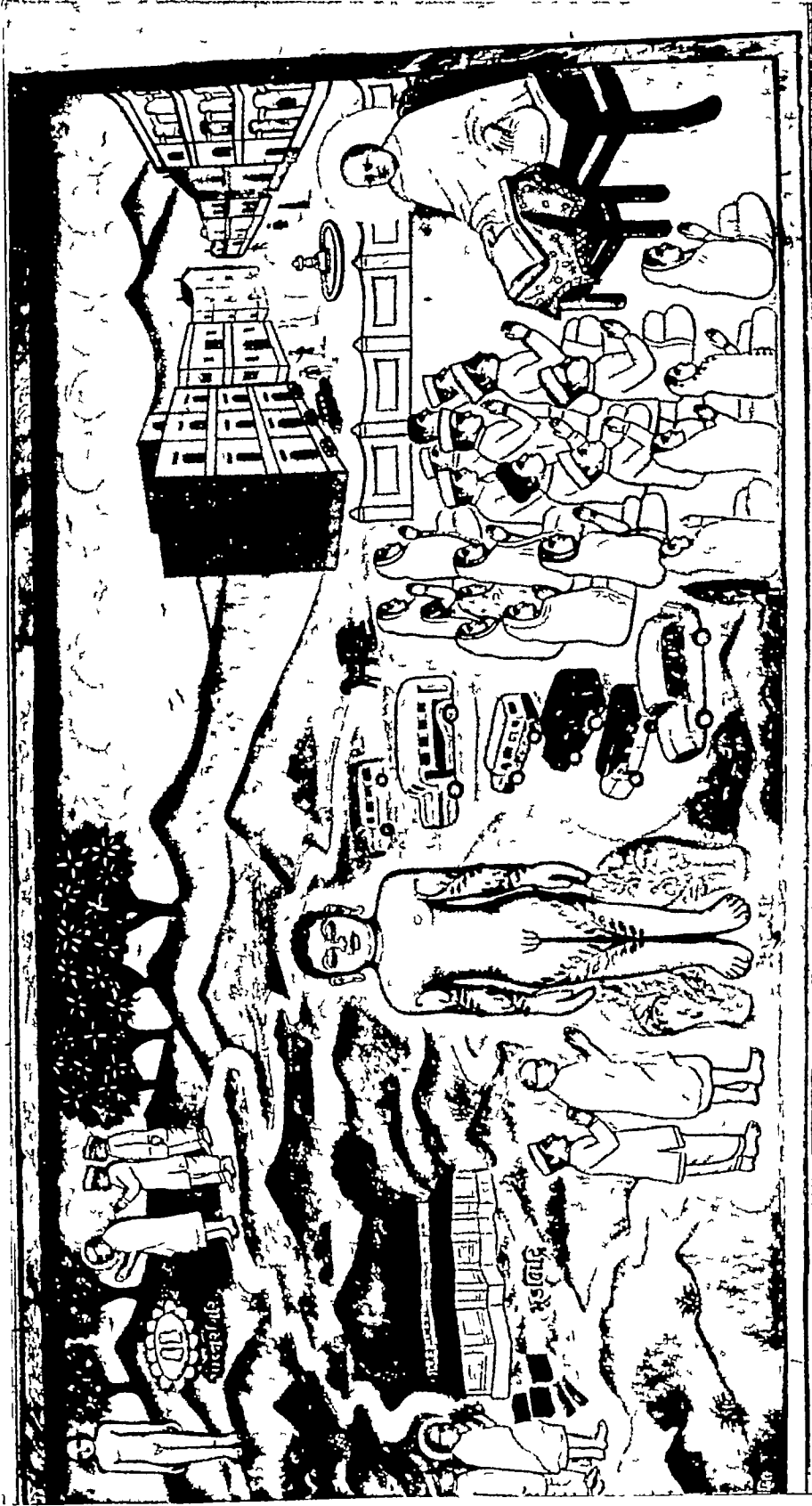
[१२] (१) पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी द्वारा सहस्राधिक भक्तोना विशाळ संघ सहित विश्वप्रसिद्ध श्री बाहुबली (श्रवणबेलगोला), रत्ननिर्मित जिनप्रतिमाओ तथा ताडपत्रलिखित प्राचीन जैनशास्त्रोना भंडारो वगेरे वैभवयुक्त मूडबिद्रि, समयसार आदि अध्यात्म श्रुतना प्रणेता श्रीमद्भगवत्—कुदकुदाचार्यदेवनी (तेमना चरणचिह्नथी विभूषित) तपोभूमि पोन्नूरगिरि आदि दक्षिण भारतवर्षना जैनतीर्थोनी मंगलयात्रा, तथा यात्राप्रवासमां नगरे नगरे पूज्य गुरुदेवश्रीनां अध्यात्मरसझरता अद्भुत प्रवचनो (वि स २०१५)

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीका

* सातिशय प्रभावनायोग *

आत्मा प्रभावनीयो रत्नत्रयतेजसा सततमेव ।
दानतपोजिनपूजाविद्यातिशयैश्च जिनधर्मं ॥

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप रत्नत्रयके तेज द्वारा आत्मा ही, तथा दान, तप, जिनपूजा विद्या और अतिशय के द्वारा जिनधर्म ही सतत प्रभावना करने योग्य है। अंतरमें आत्माकी और बाह्यमें यथाशक्ति वीतराग जिनधर्मकी प्रभावना करने योग्य है। अज्ञानरूप अंधकारके फैलावको जिस प्रकार हो सके उस प्रकार दूर करके अंतरमें आत्माका और बाह्यमें जिनशासनके माहात्म्यका प्रकाश करना वह प्रभावना है।

शुद्धात्मानुभूति प्रधान अध्यात्मसाधना ही वास्तवमें जैनधर्म है; क्योंकि अनादिसे प्रवर्तते मोह-राग-द्वेषरूप अंतरंग शत्रुओंको जीतनेके लिये वह पवित्र साधना ही समर्थ है। अनादि प्रवाहसे प्रवर्तमान उस अध्यात्म साधन का पावन तीर्थ चौवीसवें शासननायक सर्वज्ञ-वीतराग अरिहंत परमात्मा परम पूज्यश्री महावीर भगवानने पुनः प्रवृत्त किया। परमगुरु श्री सर्वज्ञदेव और अपरगुरु— गणधरादिकसे लेकर साक्षात् गुरु— द्वारा प्रसादरूपसे प्राप्त हुई उस पवित्र अध्यात्म-विद्याका भगवान श्री कुंदकुंदाचार्यदेवने महान उद्योत किया। परन्तु कालक्रमसे अध्यात्मरसप्रमुख वीतराग जैनधर्मकी ज्योति मंद पडने लगी, जिनेन्द्रप्रणीत स्वानुभवप्रधान अध्यात्मधर्म कालदोषसे वैज्ञानिक भूमिका ऊपरसे सरक कर रूढिचुस्त सांप्रदायिकतामें और बाह्य क्रियाकांडमें उलझ गया। ऐसे इस विषम युगमें भारतीय जीवों के महान पुण्योदयसे जिस महापुरुषने सौराष्ट्रमें अवतार लेकर आत्मसाधनाका अध्यात्मपंथ प्रकाशित किया, संप्रदायके दुराग्रहसे बाहर निकालकर जिन्होंने देश-विदेशमें रहनेवाले हजारों जीवोंमें

अध्यात्मतत्त्व अर्थात् शुद्ध आत्मा समझनेकी जिज्ञासा जगाकर एक अभूतपूर्व नये मुमुक्षुसमाजका सर्जन किया, स्वयंकी स्वानुभवसमृद्ध भेदज्ञानकलासे जिनशासनके सूक्ष्म रहस्य खोलकर जिन्होंने 'तुझमें ज्ञान और सुखादि सब भरपूर भरे हुए हैं' इस प्रकार प्रसिद्ध करके प्रत्येक जीव की शक्तिरूप प्रभुताका जगतमें ढिंढोरा पीटा–इत्यादि अनेक प्रकारसे जगतके धर्मपिपासु जीवों पर जिनका अनंत–अनंत उपकार है उन अध्यात्मयुगस्रष्टा जिनेन्द्रमार्गप्रभावक, परमोपकारी परमकृपालु परम पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामीके सातिशय प्रभावना-योगका यहां संक्षेपसे दिग्दर्शन प्रस्तुत किया गया है।

* होनहार अध्यात्मसूर्यका अरुणोदय *

भावनगर जिले के उमराला ग्राम में पिताश्री मोतीचंदभाईके घर माता श्री उजमबाकी पवित्र कूंखसे वि. सं. १९४६ वैशाख सुदी दोज, रविवारके दिन अरुणोदयके समय अध्यात्मकिरण प्रसारक उस कहानसूर्यका उदय हुआ। बचपनसे ही उस होनहार महाप्रतापी पुरुषके मुख पर वैराग्यकी सौम्यता तथा नेत्रोंमें बुद्धि व वीर्यकी प्रतिभा उभर आती थी। स्कूलमें और जैनशालामें वे तेजस्वी विद्यार्थी थे, वे हमेशा प्रथम नंबर आते थे; वैरागियोंको देखकर उन्हें हृदयमें वैराग्यका गहरा प्रभाव पड़ता था। नाटक देखने जाते तब भी उसमें कोई वैराग्यप्रेरक दृश्य देखकर उनका आत्मा वैराग्यसे भीग जाता था। एक बार नाटक देखने के बाद उन्हें वैराग्यकी ऐसी धुन चढ़ गई कि उस धुनमें 'शिवरमणी रमनार तुं, तुं ही देवनो देव' इन शब्दोंसे शुरू होता बारह पदका काव्य उनके द्वारा सहज रचा गया था। अहा! सांसारिक रसके प्रबल निमित्तोंको भी महान आत्माएँ वैराग्यके ऐसे निमित्त बनाती हैं।

दूकान पर भी वे वैराग्य-प्रेरक और तत्त्वबोधक धार्मिक पुस्तके पढते थे। इन होनहार महात्माको संसारमें पडना नहीं रुचा, और इक्कीस

वर्षकी छोटी कुमारावस्थामें आजीवन ब्रह्मचर्यपालन करनेकी प्रतिज्ञा ले ली। रात्रिमें चतुर्विध आहारका त्याग तो छोटी उम्रसे ही किया था। उनका आत्मा भीतर किसी और ही खोजमें था। उनके अंतरका झुकाव सदा धर्म और सत्यकी खोज के प्रति ही था। उनका धार्मिक अध्ययन, जीवन और सरल अंतःकरण देखकर सगे-सम्बन्धी उनसे 'भगत' कहते थे। अंतरमें वैराग्य और धर्मका रस होनेसे भगत, जहाँ 'भजन' होते हों वहाँ, सुनने जाते थे, उपाश्रयमे सम्प्रदायके कोई साधु आयें कि वे उनकी सेवा-सुश्रुषा तथा उनके साथ धार्मिक वार्तालाप के लिये दौड़ जाते और दुकानको उपेक्षा करके अधिक समय उपाश्रयमें बिताते।

एकान्त और निवृत्तिके प्रेमी उन महात्माके वैराग्यभीने चित्तको दूकान पर या घर में रहना रुचा नहीं, और इसलिये उन्होंने, निवृत्ति लेकर धर्मसाधना करनेके लिये दीक्षा लेने का अंतरमें निर्णय किया। दीक्षा हेतु योग्य गुरुकी खोजके लिये काठियावाड़ तथा मारवाड़ आदि अनेक प्रदेशोंमें प्रवास करके सम्प्रदायके अनेक साधुओंका परिचय कर आये, परन्तु कहीं उनका मन स्थिर नहीं हुआ। अन्तमें काठियावाड़में बोटाद-सम्प्रदायके श्री हीराचन्दजी महाराजका, उनके त्याग, वैराग्य, क्रिया, निःस्पृहता आदि सद्गुणोंके कारण चुनाव किया; और उन्होंने वि. सं. १९७०की मगसिर शुक्ला ९, रविवार के शुभदिन जन्मधाम उमरालामें हीराजी महाराजके पास दीक्षा ली।

* शोधवृत्ति और समयसारका योग *

दीक्षा-अवस्थामें उन्होंने श्वेतांबर आगमोंका विचारपूर्वक खूब अभ्यास किया, फिर भी जिस परमार्थ सत्यकी शोधमें वे थे वह उन्हें कभी नही मिला था; अविरामरूपसे उल्लसितवीर्यसे शोधवृत्ति चालू ही थी; तब वि. सं. १९७५में महान भाग्ययोगसे भगवान श्री कुंदकुंदाचार्यदेवका 'समयसार' नामका महान ग्रंथ उनके हाथमें आया। उसका अध्ययन

करते हुए उनके हर्षका पार न रहा। जिस आध्यात्मिक सत्यकी शोधमें वे थे वह उन्हें समयसारमेंसे मिल गया। उनके अंतरनयनोंने उसमें अमृतके सागर उछलते देखे: एक के बाद एक गाथा पढ़ते हुए उन्होंने अंजुली भर-भरकर वह भवान्तकारी अमृत पिया।

* पुरुषार्थ और वस्तु स्वातंत्र्य यही जीवन मंत्र *

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी पहले से ही तीव्र पुरुषार्थी थे। पुरुषार्थ वही उनका जीवनमंत्र था। 'केवली भगवानने देखा होगा तब मोक्ष होगा'—इस प्रकार काललब्धि और भवितव्यताकी पुरुषार्थहीन बातें कोई करे तो वे उसे सहन नहीं कर सकते थे और दृढ़तासे कहते थे कि 'जो सच्चा पुरुषार्थी है उसके अनंत भव होते ही नहीं, केवलीने भी उसके अनंत भव देखे ही नहीं है। पुरुषार्थीको भवस्थिति आदि कुछ भी प्रतिबन्ध नहीं करते'। और, वे कहते विश्वका प्रत्येक द्रव्य परिपूर्ण स्वतंत्र है इसलिये जीव पदार्थ भी अपनी स्वभाव या विभाव पर्यायोंको रचनेमें परिपूर्ण स्वतंत्र है। उसके पर्यायरूप परिणमनमें ज्ञानावरणादि कर्म या शरीरादि नोकर्म आदि का जरा भी हाथ नहीं है। जीव भी आकाशादि अन्य द्रव्योंके समान 'अकारण पारिणामिक द्रव्य' है: अर्थात् जीव जिसका कोई अन्य द्रव्य कारण नहीं ऐसे अपने भावसे स्वतंत्ररूप से परिणमन करता द्रव्य है, इसलिये उसे अपने भाव स्वाधीनरूपसे करने में वास्तवमें कोई भी रोक नहीं सकता। वह स्वतंत्ररूपसे स्वयंका सब कुछ कर सकता है। उनकी प्रभावक वाणी में स्वतंत्रताका एसा मधुर स्वर सदा गूंजता रहता था।

संप्रदायमें कोई कोई बार विरोध भी होता था तो भी पूज्य गुरुदेव तो स्वयं अनुभवे हुये अध्यात्मसत् का प्रतिपादन अति निडरतापूर्वक ही करते थे। उनकी चैतन्यस्पर्शी अध्यात्मवाणीमें ऐसी निडरताभरी सिंहगर्जना थी कि बडा राजा हो या सेठ हो—सबको निर्भयरूपसे जो सत्य हो वह कह देते थे। किसी को खुश करनेके लिये जरा भी अच्छा कहना वह उनकी प्रकृतिमे

ही नहीं था। उन्हें राजा और रंक दोनों समान थे। वे तो जगतके ख्याति-पूजा लाभसे बिलकुल निःस्पृहतापूर्वक रहकर केवल आत्मलक्षी जीवन जीते थे।

* सदुपदेशका प्रधान स्वर *

उनके सदुपदेशमे मुख्य भार तत्त्वकी सच्ची समझ पर था। 'आत्माकी सत्य समझ बिना व्रत, तप या भक्ति आदि सब व्यर्थ हैं' इस प्रकार वे भार-पूर्वक बारंबार कहते थे। 'कोई आत्मा—ज्ञानी या अज्ञानी—परद्रव्यकी क्रिया करनेका सामर्थ्य जरा भी नहीं रखता, तो फिर व्रतादिके पालनस्वरूप देहादिकी जड़ क्रिया आत्माके हाथमें कहांसे हो? ज्ञानी और अज्ञानीके अभिप्रायमें प्रकाश-अंधकार जैसा महान अंतर है, और वह यह है कि अज्ञानी परद्रव्यका तथा तदाश्रित रागद्वेषका—शुभाशुभ भावोंका—कर्ता होता है और ज्ञानी धर्मात्मा अपनेको स्वभावसे सदा शुद्ध अनुभवता हुआ उनका कर्ता नहीं होता। स्व-परके और स्वभाव-विभावके अज्ञानके कारण अनादिसे चली आ रही वह कर्तृत्वबुद्धि छोड़नेका महापुरुषार्थ प्रत्येक जीवको करनेका है। वह भवजननी कर्तृत्वबुद्धि वस्तुस्वरूपके सच्चे ज्ञान बिना नहीं छूटेगी। इसलिये तुम सच्चा ज्ञान करो।'—यह उनके सदुपदेशका प्रधान स्वर था।

अहा! उस समय भी पूज्य गुरुदेवके व्याख्यानों में आध्यात्मतत्त्वके तर्कशुद्ध अद्भुत न्याय बहुत आते थे, जिसे श्रवण कर बुद्धिशाली श्रोतागण उनकी अध्यात्मरसभरी वाणी तथा अंतरकी खुमारी पर अहोभाव से न्योछावर हो जाते थे। श्रवण करते समय सब मंत्रमुग्ध होकर अति प्रसन्नता से डोलते थे। प्रत्येक गाँवमें गुरुदेवकी अमृतवाणी श्रवण करनेके लिये, हजारों श्रोता एकत्रित होते थे। प्रातःकाल सात बजे शुरू होनेवाले प्रवचनमें स्पष्ट सुन सकें इसलिये, बहुत से भाई-बहन डेढ घंटे पूर्व अर्थात्

साढे पांच बजे उपाश्रयमे आकर बैठ जाते थे। न्यायशुद्ध गुरुदेवकी वाणीसे बहुत मेधावी श्रीमान तथा धीमान प्रभावित हुवे।

अध्यात्मबीजको बोआई और सम्प्रदाय परिवर्तन

दीक्षापर्यायमें इक्कीस वर्ष रहकर महाराजश्रीने सौराष्ट्रके अनेक प्रमुख शहरोंमे चातुर्मास किये और शेष समयमें सैकड़ों छोटे-बड़े ग्रामोंमे विहार किया। गुरुदेव संप्रदायमें थे तब भी प्रत्येक प्रवचनमें भवान्तकारी सम्यग्दर्शन पर अत्यंत अत्यंत भार देते थे। वे कहते : 'इस जीवने व्यवहारचारित्र अनंत बार पाले हैं, किन्तु सम्यग्दर्शन एक बार भी प्राप्त नहीं किया। सम्यक्त्व सरल नहीं, लाखों-करोड़ोंमें किसी विरल जीवको ही वह होता है। सम्यक्त्वीको तो मोक्षके अनंत अतीन्द्रिय सुखकी बानगी प्राप्त हो गई है। वह बानगी मोक्षके सुखके अनंतवे भाग होने पर भी अनंत है।' इसप्रकार सम्यग्दर्शनका अद्भुत माहात्म्य अनेक सम्यक् युक्तियोंसे, अनेक प्रमाणोंसे और अनेक सचोट दृष्टांतोंसे वे श्रोताओं को हृदयंगत कराते थे। उनका प्रिय और मुख्य विषय सम्यग्दर्शन था। तदुपरांत सम्यक्त्व प्रधान उनके प्रवचनोंमें गृहीत मिथ्यात्वको चूर-चूर करनेवाले वज्रप्रहार भी कोई अद्भुत आते थे! वे उस विषय में जो कहते थे उसका कुछ नमूना, पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके ज्येष्ठ बंधु स्व०श्री व्रजलालभाईने ६३ वर्ष पहले लिखी हुई हाथनोंधमेसे, यहाँ दे रहे हैं:—

"प्रभुका सच्चा श्रावक किसी भी देवकी सहायता नहीं चाहता। साक्षात् सच्चा कोई देव या इन्द्र आकर हजारों रूप बनाकर चमत्कार करे तो भी सम्यक्त्वी श्रावक कहता है, कि 'वह तेरी शक्ति है तो तू कर सकता है, किन्तु यदि मेरे अशुभका उदय नहीं होवे तो तू मेरा एक रोम भी नही हिला सकता और यदि मेरे शुभका उदय नहीं होवे तो तू मेरा शुभ तीन कालमें नही कर सकता।' प्रभु महावीरके श्रावक ऐसे दृढ श्रद्धावान होते हैं।

बहुतसे लोग ऐसा कहते हैं कि तीर्थंकर भी कुलदेवियों को नमन करते है। किन्तु कहनेवालोंको तीर्थंकरोंके स्वरूपका भान नहीं है। जो बात स्वयंको करनी होती है वह ठेठ तीर्थंकरोंके नाम चढा देते हैं, अर्थात् फिर अपनेको वैसा करनेमें बाधा नहीं। जिन महापुरुषके जन्म समयमें चौदह राजु लोकके पुद्गल क्षणभर परिवर्तनको प्राप्त होते हैं—प्रकाश होता है, जिनके जन्मप्रसंग में इन्द्रोंके आसन चलायमान होते हैं, शक्रेन्द्र जैसे भी जिनकी माताको 'धन्य रत्नकूखधारिणी' कहकर नमस्कार करते हैं और जन्मोत्सव मनाते हैं, तो लोकोत्तर पुरुष, इन्द्रके सेवकके भी सेवककी सेविका ऐसी देवीको वह नमस्कार करेंगे? तीर्थंकरोंका स्वरूप समझना जीवको कठिन पड़े ऐसा है। अहा! विजली पड़े और पहाड़के टुकड़े हो जायें ऐसी गुरुदेवकी मिथ्यात्वभेदिनी सिंहगर्जना थी!

उनके ज्ञान-वैराग्य-मुद्रित आदर्श जीवन तथा कल्याणबोधक तत्त्व-स्पर्शी सचोट सदुपदेशके प्रति हजारों श्रोताओंको बहुमान प्रगट हुआ। बाह्य क्रियाकांडमें लुप्त हुये अध्यात्मधर्मका बहुत उद्योत हुआ। संप्रदायकी दीक्षित पर्यायमें गुरुदेवको मात्र शास्त्र-स्वाध्याय और तत्त्वचिंतनकी ही धुन रहती। चारित्रपालन भी बहुत कड़क था। उनकी परिणति ऐसी आत्मानु-मुखी थी कि उन्हें सरस-नीरस आहारके प्रति उपेक्षावृत्ति रहती, सामान्यतः नीरस आहार लेते। महीनेमें अष्टमी आदि पर्वके चार उपवास तो करते ही, किन्तु शास्त्रकी आज्ञानुसार निर्दोष आहार न मिले तो कभी-कभी उपवास हो जाता था। हमेशा सादा और निर्दोष आहार लेते। उनका जीवन जगतसे एकदम उदास और केवल आत्माभिमुख था। संप्रदायमें भी उनके ज्ञान-वैराग्यसे प्रभावित होकर समाजको इतना अधिक भक्तिभाव उछलता कि जब वे आहारके लिये पधारते तब गलियों में हरएक द्वार पर भक्तोंके झुंड प्रतीक्षा करते और पधारो' पधारो' कहकर भावभरी विनय करते थे। जिन्हें आहारदानका लाभ मिलता उन्हें

तो 'अहो! मानों साक्षात् कल्पवृक्ष आंगनमें फला हो' ऐसे आनन्दका पार नहीं रहता था। भक्तहृदयोंमें उनके प्रति ऐसा भक्तिभरा बहुमान होने पर भी वे तो उसके प्रति एकदम निःस्पृह और उदासीन थे। थोड़े ही वर्षोंमें उनके प्रखर ज्ञान, दृढ चारित्र और प्रवचनातिशयकी सुवास संप्रदायमें इतनी अधिक फैल गई कि समाज उनका आदर एवं बहुमान 'काठियावाडके कोहिनूर'—नामसे करता था। ऐसी असाधारण प्रतिष्ठाके धनी ऐसे इस महापुरुषको अंतरमें समयसार प्ररूपित वास्तविक वस्तुस्वभाव तथा शुद्धात्मानुभूतिप्रधान वास्तविक निर्ग्रंथ दिगंबर जैनधर्म सत्य लगता था, परन्तु बाहरमें स्थानकवासी जैन साधुका वेश तथा आचार था; सत्य-मार्गकी प्रभावनामें बाधकरूप यह विषम स्थिति उन्हें खटकती थी। इसलिये उन्होंने सोनगढ आकर विक्रम संवत १९९१ में स्थानकवासी जैन संप्रदायका त्याग किया। हजारों श्रोताओंकी उपस्थितिमें गर्जता सिंह केवल सनातन सत्के हेतु जगतके ख्याति–लाभ–पूजासे एकदम निरपेक्षरूप सोनगढ़के एकांत स्थलमें जाकर बैठ गया।

* प्रभावनाका सूर्योदय *

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीका 'परिवर्तन' अर्थात् अध्यात्मप्रधान शुद्ध दिगंबर जैनधर्मकी सातिशय प्रभावनाका सूर्योदय। प्रारंभमें उनकी अज्ञानतिमिरभेदक तेजस्वी किरणें सौराष्ट्र तक ही सीमित थीं, परन्तु अनु-क्रमसे उसके क्षितिज विस्तृत होते गये और वह पुनीत प्रभावना-प्रभा गुज-रात तथा भारतवर्षके अन्य समस्त भागोंमें व्याप्त हो गई। अरे! मात्र भारतमें ही नहीं, किन्तु विदेशोंमें भी उस अध्यात्मविद्याकी पावन किरणें फैल गईं।

पूज्य गुरुदेव स्पष्ट कहते : अनुभवप्रधान दिगंबर जैनधर्म यह कोई संप्रदाय नहीं है, यह तो सनातन वस्तुस्वभाव है—आत्मधर्म है। उसका किसी अन्य धर्मके साथ मेल है ही नहीं। उसका अन्य धर्मके साथ समन्वय

करना वह रेशम और टाटके समन्वय जैसा बिलकुल व्यर्थ है। दिगम्बर जैनधर्म ही वास्तविक जैनधर्म है और आभ्यन्तर तथा बाह्य दिगम्बरत्व बिना कोई जीव मुनिदशा या मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकता।—ऐसी उनकी दृढ़ मान्यता थी।

सोनगढ़में पूज्य गुरुदेव स्थायी होनेके बाद, उनके प्रभावना उदयको, विशेषरूपसे उद्योतकारी ऐसे अनेक पावन प्रसंग बने। 'परिवर्तन' होनेके बाद पहले ही वर्षमें बोटादसे स्थानकवासीसंघके श्री रायचंद्र रतनशी गांधी लगभग साठ जितने प्रतिष्ठित अग्रगण्य जन सांप्रदायिक विरोधको अवगणना करके हिंमतपूर्वक, पर्युषण करने आये, जिससे सौराष्ट्रके परिचित अनेक धर्मप्रेमी स्थानकवासीयोंके लिये निर्भयरूपसे सोनगढ आनेका मार्ग खुल गया। पूज्य गुरुदेव स्थानकवासी जैनोंके हृदयमें बस गये थे। उनके पीछे सौराष्ट्र पागल बना था; इसलिये सांप्रदायिक व्यामोह तथा लौकिक भयको छोडकर सोनगढकी ओर बहता सत्संगार्थियोंका प्रवाह दिन-प्रतिदिन वेगपूर्वक चढता ही गया।

❊ धर्मप्रभावनामें असाधारण निमित्त ❊

विक्रम सं. १९९३में शासनप्रभावक पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा होनेवाली सातिशय धर्मप्रभावनाको विशेष बल देनेवाली—उनका आत्मा प्रकृतिका 'त्रिकालमंगल द्रव्य' होनेकी जिनेन्द्रकथित प्रसिद्धि करनेवाली—ऐसी एक महामंगल घटना बन गई। जिन्होंने पूज्य गुरुदेवके सम्यक्त्वप्रभावक पुनीत तीर्थको सार्थक किया है, अर्थात् पूज्य कहानगुरुके परम प्रतापसे जिन्होंने विक्रम संवत १९८९ में मात्र १८ वर्षकी लघु वयमें अतीन्द्रिय आनंद परिणत स्वानुभूति प्राप्त की है उन पवित्र आत्मा प्रशममूर्ति पूज्य बहनश्री चंपाबहिनको, चैत्र कृष्णा (वैशाख कृष्णा) अष्टमीके दिन प्रातः ९-१० बजेके आसपास, शुद्धात्मध्यानमयी निर्मल निर्विकल्प निजानुभूतिमेंसे उपयोग

* सातिशय प्रभावनायोग *

विकल्पमें आने पर, मतिज्ञानकी स्मरणपरिणतिमें कोई सातिशय सहज निर्मलता होने पर, ज्ञानोपयोगकी स्वच्छतामें पूर्वभवोंका सहज स्पष्ट और सम्यक् जातिस्मरणज्ञान प्रगट हुआ। उस ज्ञानमें सर्व प्रथम श्री सीमंधरभगवान, कुंदकुंदाचार्यदेव, विदेहके गुणीयल राजकुमार इत्यादिका स्पष्ट स्मरण आया। पूज्य गुरुदेवश्रीको दीक्षा लेनेके बाद 'अरे! मैं तो तीर्थंकरका जीव हूं' वगैरह अपने भविष्य तथा भूतकालके भव संबंधी जो अंदरसे स्वयं सहज आता था, और जो बात वे बाहरमें नहीं कहते थे उसका स्पष्ट हल पूज्य बहिनश्रीके जातिस्मरणज्ञान द्वारा प्राप्त होनेसे उनके अंतर्जीवनमें एक प्रकारका असाधारण प्रकाश हुआ। पूज्य गुरुदेवने बहिनश्रीके जातिस्मरणज्ञानकी गंभीर बातें प्रारंभमें बहुत वर्षोंतक गुप्त रखी, परन्तु कालक्रमसे सच्चे आत्मार्थी जीवोंको उपकारी होगी ऐसा लगनेसे, उसके कहने योग्य कितने ही विवरण धीरे धीरे वे मुमुक्षुओंके समक्ष अत्यन्त धर्मोल्लासपूर्वक रखने लगे। इस प्रकार पूज्य गुरुदेवश्रीके श्रीमुखसे, धर्मप्रभावनामें निमित्त हो ऐसे इस पवित्र ज्ञानके विषयमें जाननेका मुमुक्षु समाजको सौभाग्य प्राप्त हुआ।

* प्रभावनाकेन्द्रका निर्माण *

पूज्य गुरुदेवका जीवन तथा उनका उपदेश प्रथमसे ही अध्यात्मतत्त्वसे ओतप्रोत था। वे अपने घोटे गये हृदयमंथनसे निकाले हुए तीर्थंकरदेवके वचनामृत मुमुक्षुओंको प्रवचनमें परोसते और निहाल करते, जिससे जिज्ञासुओंका प्रवाह सोनगढ़की तरफ बढ़ता जाता था। 'परिवर्तन' स्थल 'स्टार ऑफ इंडिया' छोटा पड़ने लगा; इसलिये विक्रम संवत १९९४ में पूज्य गुरुदेवके प्रवचन तथा ज्ञानध्यान और निवासके लिये 'स्वाध्याय मंदिर' का नवनिर्माण हुआ। अहा! क्या उसका आनंदकारी मंगल अवसर! उद्घाटन होने पर, पहले ही प्रवचनमें धर्मकी प्रभावनामें कारणभूत हो ऐसी कतिपय गंभीर बातोंका गुरुदेवने गूढ संकेत किया और उसके संदर्भमें भगवान

-कुंदकुंदाचार्यदेवकी खुब महिमा गाई। मानो कि सनातन सत्य स्वानुभूति-प्रधान वीतराग दिगम्बर जैनधर्मकी पुनीत प्रभावनाका मंगलस्तंभ रोपते हों ऐसा वह भव्य प्रसंग था।

※ प्रभावनाकी फली-फुली पीढ़ी ※

पूज्य गुरुदेवने स्वाध्यायमंदिरमें मंगल पदार्पण किया उसके बाद तो वीतराग दिगंबर जैनधर्मकी फलती-फूलती पीढ़ी शुरू हो गई। गुरुदेवने सोनगढमें स्थायी निवास करके भगवान कुंदकुंदाचार्यदेवके श्री समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय नियमसार, और अष्टपाहुड़ तथा अन्य आचार्यदेवोंके परमात्मप्रकाश, समाधितंत्र, इष्टोपदेश, कार्तिकेयानुप्रेक्षा, पुरुषार्थसिद्धि-उपाय, बृहद्द्रव्यसंग्रह, योगसार, पद्मनंदिपंचविंशतिका आदि अनेक शास्त्रों तथा मोक्षमार्गप्रकाशक, समयसार-कलशटीका, समयसार-नाटक, अनुभवप्रकाश, आत्मावलोकन वगैरह अनेक ग्रंथों पर अनेक बार, तथा षट्खंडागम (धवला) १ भाग तथा जयधवला पहले भाग पर स्वानुभूति-रसप्रधान अध्यात्मामृत भरे व्याख्यान दे करके श्री जिनेन्द्रदेव प्रणीत परमागम निहित सूक्ष्म रहस्य मुमुक्षुसमाजको, अंतरमें शुद्धात्मसाधनाके परमप्रेमसे, खूब खूब समझाया—अमृतके धोध बरसाये।

अहा! उस अमृतधोधकी तो क्या बात? इस अमृतधोधकी महिमा व्यक्त करते हुए धन्यावतार पूज्य बहिनश्री चंपाबहिनने कहा है: पूज्य गुरुदेवश्रीकी वाणी मिले वह एक अनुपम सौभाग्य है। मार्ग बतानेवाले गुरु मिले और वाणी श्रवण करनेको मिले वह मुमुक्षुओंका परम सौभाग्य है। प्रतिदिन सुबह-दोपहरको दो बार ऐसा उत्तम सम्यक्तत्व सुननेको मिलता है इसके जैसा अन्य क्या सद्भाग्य हो? श्रोताको अपूर्वता लगे और पुरुषार्थ करे तो वह आत्माके समीप आ जाये और जन्म-मरण टल जाये—ऐसी अद्भुत वाणी है। ऐसा श्रवणका जो सौभाग्य मिला है उसे

मुमुक्षु जीवको सफल कर लेना योग्य है। पंचमकालमें निरंतर अमृत झरती गुरुदेवकी वाणी भगवानका विरह भुलाती है।

* तीर्थयात्रा और विहार द्वारा अध्यात्मप्रभावना *

वि. सं. १९९५, पौष कृष्णा दसमीके दिन—पूज्य गुरुदेवश्री ३०० मुमुक्षुओंके संघ सहित पैदल विहार कर शत्रुंजय सिद्धक्षेत्रकी यात्रा करने पधारे। इस मंगल यात्रामें पूज्य गुरुदेवने तीर्थकी और तीर्थयात्राकी महिमा बताई, जिससे मुमुक्षु जीवनमें अध्यात्मतीर्थप्रभावनाके साथमें वीतराग देव-शास्त्र-गुरुके प्रति भक्तिमय व्यवहार तीर्थप्रभावनाका भी भाव जाग्रत हुआ। यह पवित्र यात्रा करके, थोड़े दिनोंके बाद राजकोटका, चातुर्मासके लिये मंगल विहार हुआ। विहारमें बीचमें आते छोटे-बड़े अनेक गांवोंको पूज्य गुरुदेवने अध्यात्मोपदेशसे पावन किया। चतुर्मासके समय राजकोटमें समयसार, पद्मनंदीपंचविंशति, आत्मसिद्धि, अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे ? वगैरह पर भाववाही प्रवचन, तत्त्वचर्चा वगैरह देकर अध्यात्मतत्त्व खूब खूब परोसा, जिससे संप्रदायके अनेक सुपात्रजीव, श्रद्धामें परिवर्तन लाकर दिगंबर जैन मुमुक्षु हुये। चतुर्मासके बाद पूज्य गुरुदेवने भगवान नेमीनाथकी तप, केवल और निर्वाणभूमि गिरनारकी यात्राके लिये संघ सहित प्रस्थान किया। अहा ! उस पवित्र यात्रा प्रसंगमें बावीसवें तीर्थेश्वर भगवानश्री नेमीनाथके प्रति पूज्य गुरुदेव, पूज्य बहिनश्री तथा यात्रासंघके उल्लास और भक्तिकी तो क्या बात ? प्रथम ट्रकमें भगवान नेमीनाथके दीक्षा और केवल कल्याणकसे पावन हुये सहस्राम्रवनमें तथा निर्वाण कल्याण-धाम गिरनारकी पांचवीं ट्रूक पर जो भक्तिरस उछला था वह वास्तवमें कुछ अद्भुत था ! पूज्य गुरुदेवने अंतरके गहरे भक्तिभावसे 'हुं एक शुद्ध, सदा अरूपी, ज्ञान-दर्शनमय खरे'की धुन तथा 'अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे ?' गवाकर जो अपूर्वभक्ति कराई, उस प्रसंगका आनंदसे ओतप्रोत प्रशांत वातावरण भक्तोंके हृदयमें उत्कीर्ण हो गया है। उसका पवित्र स्मरण आज भी भक्तचित्तको प्रभावित करता है।

* सातिशय प्रभावनायोग *

* भरतक्षेत्रमे सीमंधरयुग *

गिरनारमें उछली हुई जिनेन्द्रभक्तिके बाद, स्वर्णपुरीमें श्री जिनेन्द्र-भगवंतोकी पधरावनीके मंगल चिह्न दिखने लगे। श्री नानालालभाई वगैरह जसाणी भाइयोंकी ओरसे श्री सीमंधरभगवानके नूतन भव्य जिनमंदिरका निर्माण होने लगा। यद्यपि भक्तोंके हृदयमंदिरमें सीमंधरनाथकी मंगल पधरावनी तो, जातिस्मरणज्ञान द्वारा, वि. सं. १९९३ से ही हो गई थी, तोभी अब, गत पूर्वभवमें प्राप्त उन विदेहीनाथके समवशरणमें दिव्यध्वनिके श्रवणरूप पवित्र समागम तथा दिव्यध्वनिमें आये हुये पूज्य गुरुदेवके भूत तथा भविष्यके वृतांतरुप अन्य उपकारोंके अहोभावसे नूतन दिगंबर जिनमंदिरमें मूलनायक-रुपसे श्री सीमंधरनाथकी पधरावनी प्रतिष्ठा, वि. सं. १९९७की फागुन शुक्ला दूजको हुई। अहा! तबसे हमारे इस भरतक्षेत्रमें श्री सीमंधरस्वामीके मंगल युगका प्रारंभ हुआ। गत राजकुमारके भवमे साक्षात् भेंटे हुये श्री सीमंधरभगवानकी (भले स्थापना अपेक्षासे) पुनः भेंट होने से पूज्य गुरुदेवको कोई अद्भुत आनंदोल्लास था, जिससे उन्होंने अपने पवित्रहस्तसे प्रतिष्ठा भी कोई अपूर्व भक्तिभावसे की थी।

* प्रभावनायोगकी मंगल भविष्यवाणी *

वि. सं. १९९७ में श्री सीमंधरस्वामी दि० जिनमंदिरका भव्य पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव होनेके पहले, पूज्य गुरुदेवके प्रभावनायोगकी भविष्य सूचक एक भव्य घटना घटी थी। प्रमुख दिगंबर जैनाचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज पौष कृष्णा चतुर्दशीके दिन शत्रुंजय सिद्धक्षेत्रकी यात्रा करके, संघसहित सोनगढ आये थे। आचार्यश्रीके आग्रहवश गुरुदेवने पहले आधा घन्टा प्रवचन दिया। प्रवचनके अतिरिक्त अन्य समयमें भी समयसारकी १३वी गाथा संबंधी खूब तत्त्वचर्चा हुई। गुरुदेवके अध्यात्म-तत्त्वप्रधान प्रवचन, तत्त्वचर्चा सुनकर और श्वेतांबर बहुल सौराष्ट्र प्रदेशमें

* सातिशय प्रभावनायोग *

गुरुदेव द्वारा दिगंबर जैनधर्मके पुनरुदयका शुभारभ देखकर आचार्यश्री मनमें बहुत प्रसन्न हुये। विहारके वक्त थोडी दूरी पर जाकर आचार्यश्री खड़ रह गये और अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुये बोले: "हमें यहाँका धार्मिक वातावरण देखकर खुशी हुई है, तीर्थंकर अकेले मोक्ष नहीं जाते; यहाँ ऐसा कुछ योग है ऐसा हमें लगता है"। इतना कहकर वे आगे विहार कर गये। इन शब्दोंको सुनकर वहाँ खड़े भाई अंतरमें बहुत प्रसन्न हुये और 'एक प्रमुख दिगंबर आचार्यके मुखसे गुरुदेवके प्रभावनायोगकी, तीर्थंकरके साथ तुलना करके, भविष्यवाणीके कितने सुन्दर शब्द प्रसन्नतासे सहजमें निकल गये।' इसका आश्चर्य अनुभवने लगे।

परम पूज्य श्री सीमंधरनाथ पधारे उसके बाद उनके पुनित प्रतापसे पूज्य गुरुदेव द्वारा वीतराग जिनशासनकी बहुत बहुत प्रभावना हुई। जैसे जैसे पूज्य गुरुदेवका प्रभावनायोग विस्तृत होता गया वैसे वैसे प्रत्येक गाँवमें मुमुक्षुमंडल, स्वाध्याय मंदिर और जिनमंदिर बनते गये। सुवर्णपुरीमें भी विभिन्न प्रकारके नूतन जिनायतन आदिका निर्माण हुआ।

* प्रभावनासौधके प्रबल प्रहरी *

पूज्य गुरुदेवके प्रभावना-उदयसे सोनगढ़की ओर आकर्षित बहुत सत्संगार्थीयोमें मुख्य थे एक श्रीमान् नानालालभाई जसाणी और दूसरे श्रीमान् श्री रामजीभाई दोशी। माननीय श्री नानालालभाईने—जो अमीर-स्वभावके और देव-गुरुके प्रति भक्तिकी भावनावाले थे उन्होंने—पूज्य गुरुदेवके सत्समागम और उनकी देव-गुरु भक्तिभींजी स्वानुभवरसभरी अध्यात्मवाणीके सुप्रभावसे प्रभावित होकर श्री जिनमंदिर-निर्माण वगैरह अनेक छोटे बड़े शासन प्रभावनाके कार्योंमें अपना भक्तिभरा योगदान देकर असाधारण लाभ लिया था। जैसे माननीय श्री नानालालभाई अर्पणता वाले थे वैसे माननीय श्री रामजीभाई दोशी बुद्धिशाली, तत्त्वविचारक और शूरवीर व्यक्तित्वके

धारक थे। उन्होंने पूज्य गुरुदेवके शासनकी जीवनपर्यन्त सेवा की थी। स्वाध्याय मंदिर ट्रस्टकी स्थापना की, संस्थाका कार्यभार वर्षों तक संभाला बहुत वर्षों तक 'आत्मधर्म' पत्रका संपादन किया, संस्था द्वारा प्रकाशित होनेवाले मूल शास्त्र तथा प्रवचन साहित्य छपानेके पहले जाँच कर लेना इत्यादि अनेक प्रकार से बहुमूल्य सेवा दी थी।

गुरुदेवके भक्त समुदायमें अग्रगण्य इन दोनों महानुभावोंकी नैतिक प्रतिष्ठा उत्तम प्रकारकी थी। पूज्य गुरुदेवके 'परिवर्तन' के बाद विरोधकी जो आंधी आई थी, उस समय मु. श्री रामजीभाई संरक्षणके लिये ढालका काम देते। तत्त्वके विषयमें गुरुदेवके विचारोंसे कट्टर विरोध रखनेवालोंको भी कहना पडता था कि—कानजीस्वामीने सौराष्ट्रके दो सिंहोंको अपने पक्षमें ले लिया है· एक सिंह श्रीमान श्री रामजीभाई वकील और दूसरा सिंह श्रीमान नानालालभाई जसाणी।

इन दोनों महानुभावोंके उपरांत प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबहिनके ज्येष्ठ बंधु श्री व्रजलालभाई तथा वडील बंधु श्री हिंमतलालभाई शाहका भी पूज्य गुरुदेवके प्रभावनायोगमें बहुमूल्य योगदान है। आत्मार्थी मुमुक्षु भाई श्री व्रजलालभाईने अपने स्थापत्यविषयक कौशल्य द्वारा, गुरुदेवकी साधनाभूमिमें निर्मित सभी भव्य जिनायतनोंके तथा दूसरे गाँवोंके जिन-मंदिरोंके निर्माणमें भक्तिभीनी सेवा दी थी। संस्थाके शासनमें भी अच्छा सहकार दिया था। गहन और आदर्श आत्मार्थी अध्यात्मरसिक आदरणीय पंडितजी श्री हिंमतभाईके आत्मार्थयुक्त योगदानकी तो बात ही क्या? पंच परमागमोंके गुर्जरभाषामें गद्यपद्यानुवाद करके और इसके उपरांत दूसरी अनेकविध काव्यमय साहित्य कृतियाँ रचकर, उन्होंने मुमुक्षुसमाज पर महान उपकार किया है। संक्षेपमें कहें तो, गुरुदेवके शासनको उज्जवल बनानेमे, पूज्य बहिनश्री चंपाबहिनके बाद उनका नाम विशेषरूपसे उल्ले-

सनीय है। उपरोक्त चारों महानुभावोंको पूज्य गुरुदेवके प्रति वास्तवमें अनन्य भक्तिभावपूर्ण अर्पणता थी।

प्रभावनोदयकी अभिवृद्धि

वि. सं. १९९८ मे विदेहीनाथ श्री सीमंधर भगवानके समवसरणकी भव्य प्रतिष्ठा हुई, श्री कुंदकुंद-कुमार-ब्रह्मचर्याश्रमकी स्थापना हुई और १९९९ मे राजकोटमें चातुर्मासके हेतु झालावाढमें होकर सौराष्ट्रका लम्बा विहार हुआ। समवसरणकी भव्य रचना होनेसे मानों कि सुवर्णपुरीमे विदेहक्षेत्र खड़ा हुआ हो ऐसा मनको प्रमोद हुआ। ब्रह्मचर्याश्रमकी स्थापनासे बच्चोंमे गुरुदेव द्वारा प्रबोधित अध्यात्मतत्त्वके संस्कार-सींचनका साधन प्राप्त हुआ। यद्यपि वि. सं. १९९७ से ग्रीष्मावकाशके दिनोंमें बच्चोंके लिये धार्मिक शिक्षण शिबिर चलाना शुरू हो गया था, परंतु वह सिर्फ २१ दिनके लिये सीमित था। ब्रह्मचर्याश्रममे तो सतत तीन साल तक पूज्य गुरुदेवके सान्निध्यमें रहने और तत्त्वज्ञानका अभ्यास करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसके बाद मुमुक्षुसमाजके छोटे बच्चोंमें पूज्य गुरुदेव द्वारा प्रदर्शित अध्यात्मतत्त्वज्ञानके सुसंस्कार पड़े इस हेतुसे 'श्री जैन विद्यार्थी गृह' खोला गया था, जिससे क्रमशः मुमुक्षुसमाजके हजारों बच्चोंको वीतराग तत्त्वज्ञानका अच्छा लाभ मिला यह भी पूज्य गुरुदेवके प्रभावनायोगका एक अंग था। माननीय श्री नानालालभाई जसाणी, तथा श्री रामजीभाई दोशी वगैरहकी विनतीसे चातुर्मासके लिये राजकोट की ओर विहार होते जो भव्य प्रभावना हुई, उसकी तो क्या बात ! हर एक गाँवमें भव्य स्वागत होता, व्याख्यानोंमें हजारोंकी संख्या उमडती और पूज्य गुरुदेवकी मिथ्यात्व-भेदिनी वज्रोपम वाणी तो मानों तीर्थंकरदेवकी दिव्यध्वनि ! गुरुदेवका अध्यात्मोपदेश सुनकर बड़े बड़े बुद्धिमान श्रोता भी विस्मयविमूढ़ हो जाते थे। जैनदर्शनमें सिर्फ बाह्य क्रियाकांड ही नहीं है किन्तु उसमें तर्कशुद्ध सूक्ष्म अध्यात्मविज्ञान भरपूर भरा हुआ है ऐसा तथ्य समझमें आते ही

विषयमें विवाद करता है!...हे जिनेन्द्र! चन्द्रमें जो मृग दिखता है, वह क्या है? उस सम्बन्धमें मैं तो ऐसा समझता हूँ कि स्वर्गमें देवों द्वारा आपके जो यशोगान गाये जाते हैं, उनको सुननेकी अदम्य जिज्ञासासे मानों उस मृगने चन्द्रका आश्रय लिया है। हे त्रिभुवनस्तुत! साक्षात् सरस्वती भी आपके पूर्ण गुणानुवादमें असमर्थ रहती है, तब फिर मेरे जैसे मंदबुद्धिकी क्या गिनती है? हे नाथ! आपके दर्शनसे, आपके चरणोंकी प्राप्तिसे कौन सा कार्य सिद्ध नहीं होता?—आपके पुनीत प्रतापसे सभी चीजोंकी सिद्धि होती है, अतः ऐसा कौनसा मूढ जन है जो समस्त सिद्धियों के दाता ऐसे आपके दर्शनकी चाह न रखे? अर्थात् विवेकयुक्त सर्व जीव आपके दर्शनकी अभिलाषा रखते हैं।...इस प्रकार अनेक भाँतिसे पूज्य गुरुदेवकी भक्तिरसप्लावित वाणीमें जिनेन्द्रमहिमाके अद्भुत अमृतझरने झरते थे। ४८ साल पहले के ये प्रवचन आज भी मुमुक्षुजनोंके हृदयोंको प्रमुदित करते हैं और उनके रोमरोममे जिनेन्द्रदेवके प्रति भक्ति जाग्रत करते हैं।

प्रतिष्ठासमयका अनूठा आनन्द

जिन महानुभावोंको उस प्रथम प्रतिष्ठामहोत्सवको साक्षात् देखनेका और उसमें सम्मिलित होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था, वे भक्तजन उस समय देखे गये पूज्य गुरुदेव और पूज्य भगवती माताके जिनेन्द्रभक्तिमय उल्लासका वर्णन करते आज भी अघाते नहीं। अत्यंत उल्लसितचित्तसे पूज्य भगवती माता अनेकबार कहते हैं: अहो! उस समयके आनंदोल्लासकी क्या बात कहें! पहली ही बारका यह प्रतिष्ठामहोत्सव! इस जीवनमे कभी नहीं देखे थे ऐसे भगवानकी भेंट! तदुपरान्त मूलनायकके रूपमें विदेहीनाथ श्री सीमन्धरभगवान! फिर आनंदोल्लासमें कौन सी कमी रहती?

भक्तिरसकी मस्ती

पंचकल्याणककी विधि सम्पन्न होनेके बाद श्री सीमन्धरादि भगवन्तोंको गुरुदेवके पवित्र करकमल द्वारा वेदी पर विराजमान करनेके शुभ अवसर पर

भक्तिरसका एक गंभीर दृश्य भक्तोंको देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उस पावन प्रसंगका स्मरण आज भी उनके हृदयमें उमंग पैदा कर देता है। भक्तिरसका वह दृश्य इस प्रकार था। 'श्री सीमन्धरभगवान जब मंदिरमें प्रथम बार पधारे तब गुरुदेवका पूरा अस्तित्व भक्तिरससे सराबोर हो गया, उनका समस्त शरीर भक्तिरसका मूर्तस्वरूप जैसा अति प्रशान्त निश्चेष्ट दिखता था। अनायास ही गुरुदेव साष्टांग प्रणत हो गये और जिनेन्द्र-भक्तिरसमें डूबने से शरीर वैसे ही दो-तीन मिनट तक धरती पर निश्चेष्ट होकर पड़ा रहा। पासमें खडे मुमुक्षुजन भक्तिका यह अद्भुत दृश्य देखकर गद्गद हो गये; उनके नेत्रों से आँसू खिरने लगे और चित्तमें भक्ति उमड़ आयी। गुरुदेवने अपने पवित्र करकमलसे प्रतिष्ठा भी भक्तिभावसे भरकर मानों अपने शरीरकी सुध भूल गये हों ऐसे अपूर्वभावसे की थी।

श्री सीमन्धरभगवानका उपशमरसपूर्ण वीतराग जिनबिम्ब इतना भव्य, भाववाही और मनोहर है कि उसके दर्शन करनेवाले को 'निरखत तृप्ति न होय'—तृप्ति ही नहीं होती; बारबार उस जिनमुद्राको देखते ही रहनेकी इच्छा रहा करती है। पुनः पुनः दर्शनामृतका पान करके भक्तजन अंतरमें कोई ऐसी प्रसन्न अनुभूति करता है कि—

'जिनकी मुद्रा देखे आत्मस्वरूप लखाय,
जिनकी भक्तिसे चारित्रविमलता होय.
ऐसे चैतन्यमूर्ति प्रभुजी, अहो ! हम आंगने रे...

* भक्तिसे भीगे हृदयोद्गार *

जिनेन्द्रभक्ति प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिन अनेकबार भक्तिभीगे अहोभाव इन शब्दो द्वारा व्यक्त करती हैं : "सबसे प्रथम हमारे सोनगढमें पूज्य गुरुदेवके पुनीत प्रतापसे पधारे हुए मंगलकारी विदेहीनाथ श्री सीमंधर भगवानका मंगल आगमन कोई ऐसे शुभ मुहूर्तमें हुआ है कि उनके

पश्चात् अन्य अनेक नगरोंमें सीमंधर जिनबिम्ब विराजमान हुए और पूज्य गुरुदेवका प्रभावना–उदय भी खूब खूब बढ़ता गया।" अहो! धन्य वह देव, धन्य है वह गुरु और धन्य है उन दोनोंकी सातिशय महिमा समझानेवालीं भगवती माता!!!

धर्मप्रभावनाकारी जिनबिंब महोत्सव

पूज्य गुरुदेवके मंगल प्रभावना उदयसे, जिनमंदिरकी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा होनेके बाद, उनकी कल्याणकारी उपस्थितिमें क्रमशः सीमंधर-समवसरण, मानस्तंभ, परमागममंदिरके अत्यंत भव्य पंचकल्याणक महोत्सव हुए। उन चारों उत्सवकी जिनधर्मप्रभावक लोकोत्तरताकी तो बात ही क्या है? उनका विस्तृत वर्णन करें तो एक बड़ा ग्रन्थ हो जाय!

समवसरण–प्रतिष्ठा

श्री समवसरणके दर्शन करते ही, भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव भरतक्षेत्रसे सदेह सीमन्धरभगवानके समवसरणमें पधारे थे वह, पूर्वके भवमें साक्षात् देखी हुई भव्य घटना पूज्य गुरुदेव और पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिनकी आँखोंके सामने प्रत्यक्ष हुई और उनसे सम्बन्धित अनेक पवित्र भाव हृदयमें स्फुरित होनेसे उनके हृदय भक्ति और उल्लाससे उल्लसित हो गये। प्रतिष्ठाके अवसर पर, पूज्य बहिनश्रीके ज्येष्ठ बंधु, गहरे, आदर्श, आत्मार्थी, कुन्दकुन्दभारतीके सपूत, अध्यात्मरसिक विद्वद्वर्य भाईश्री हिंमतलालभाई जे. शाह द्वारा रचित भावसभर समवसरण-स्तुतिके ऊपर सीमन्धरनाथके परम भक्त पूज्य गुरुदेवश्रीने अत्यंत भावपूर्ण सुन्दर प्रवचन किये थे। उनमें जब—

> 'आचार्य के मन एकदा जिनविरहताप हुआ महा,
> —रे ! रे ! सीमंधरजिनका विरह हुआ इस भरतमें !'

—इन पंक्तियोंके प्रवचनके समय पूज्य गुरुदेवश्रीके श्रीमुखसे

सीमंधरनाथके विरहकी गहरी वेदनासे गद्गदित होकर, आँसुभरे नेत्रों से सीमन्धरभगवान और कुन्दकुन्दाचार्यके प्रति जो अद्भुत भक्तिस्रोत बहा, उसका भावयुक्त वर्णन करना वास्तवमें शब्दोंके द्वारा शक्य नहीं है।

मानस्तंभ-प्रतिष्ठा

मानस्तंभके पंचकल्याणक भी अत्यंत भव्य हुए। उस समय पूज्य गुरुदेवका प्रभावना-उदय हिन्दी भाषी भारतमे दूर तक फैल गया था; इसलिये उत्तरमें हिमालयकी तलहटीमें स्थित सहारनपुरसे लेकर मद्रास आदि दक्षिण भारतके, पूर्वमें कलकत्तासे लेकर पश्चिम भारतके बहुतसे मुमुक्षुओंने इस उत्सवका और पूज्य गुरुदेवके प्रभावनाकारी आध्यात्मिक एवं जिनेन्द्रभक्तिसे ओतप्रोत सातिशय प्रवचनोंका लाभ लिया था। इन्दौरके उदासीन आश्रमके त्यागीगणने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए पूज्य गुरुदेवके प्रभावना-उदयकी भूरि भूरि प्रशंसा की थी।

परमागममंदिर-प्रतिष्ठा

परमागममंदिरकी प्रतिष्ठाके अवसर पर हुई धर्मप्रभावना तो चरमसीमाको पार कर गई थी। उस समय गुजरात राज्यका राजकीय वातावरण अत्यंत क्षुब्ध था, बड़े शहरोंमे कर्फ्यु-संचार निषेध चलता था। फिर भी २७ हजार मेहमानोंने इस भव्य उत्सवका और पूज्य गुरुदेवके अद्भुत प्रवचनोका अनूठा लाभ लिया था। पूज्य गुरुदेवके लोकोत्तर प्रभावनायोगसे संगमरमरनिर्मित परमागममंदिरकी ऐसी भव्य रचना हुई है कि जो सारे विश्वमे अनन्य एवं अनुपम है। उसके बाद हुए पंचमेरु-नन्दीश्वरकी रचना तो ऐसी अद्भुत है कि दर्शन करनेवाले पुनः पुन. उसे देखनेकी भावना करते रहते हैं। पूज्य गुरुदेवके पुनीत प्रतापसे तैयार हुए इन दोनों जिनमंदिरोंकी लोकोत्तर भव्यताके कारण दर्शनार्थियोंका प्रवाह सोनगढकी और दिनोंदिन बढ़ता ही जाता है।

भारतवर्षका अनुपम तीर्थक्षेत्र

पूज्य गुरुदेवके प्रभावनायोगसे सोनगढ सचमुच भारतवर्षका एक अनुपम, आध्यात्मिक अतिशयतायुक्त महामंगल तीर्थक्षेत्र बन गया है। नये नये जिनायतन, मुमुक्षुओंके नये नये आवास, ब्रह्मचर्याश्रम, जैन विद्यार्थी-गृह, नयी नयी रोमायटियाँ आदि विविध भव्य रचनाओंसे सुवर्णपुरी तीर्थधाम अत्यंत सुशोभित हो गया है। अभी भी, पूज्य गुरुदेवके परम भक्त अध्यात्ममूर्ति स्वानुभव विभूषित पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिनकी मंगल-वर्द्धिनी देवगुरुभक्तिरसिक्त आध्यात्मिक अमृतछायामें, परम तारणहार परम पूज्य कहान गुरुदेवके इस मंगल अध्यात्मतीर्थकी वृद्धि दिनोंदिन अविरतरूपसे हो रही है, जिसके फलस्वरूप सच्चे आत्मार्थी जिज्ञासुओंका विशाल प्रवाह इस पावन तीर्थकी ओर निरतर बहता ही रहता है। सोनगढमें मनाये जाते मंगल महोत्सवोंमें गुजराती एव हिन्दी मुमुक्षु मेहमानोंकी विशाल सख्या देखकर सभी भक्तोंके हृदय ऐसा स्पष्ट अनुभव करते हैं कि वाह! परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्रीका सातिशय प्रभाव अद्यापि अखंडरूपसे प्रतापवंत वर्तता है।

प्रभावना-किरणोंका प्रसार

पूज्य गुरुदेवका जिनेन्द्रभक्तिभीगा अध्यात्मप्रभाव देश-विदेशमें बहुत फैल गया था और उनके अनुयायीके रूपमें अध्यात्म जिज्ञासुओंका बड़ा समुदाय तैयार हो गया था इसलिये सबने अपने अपने गाँवमें तत्त्वस्वाध्यायके लिये 'स्वाध्यायमंदिर,' और जिनेन्द्र पूजा-भक्तिकी उपासनाके लिये जिन-मन्दिरके नवनिर्माणकी योजना बनायी। तदनुसार क्रमशः वींछिया, लाठी, राजकोट, पोरबंदर, मोरबी, वांकानेर, जामनगर, भावनगर आदि सौराष्ट्रके अनेक छोटे बड़े नगरोंमें एवं गुजरात तथा अन्य राज्योंमें और विदेशमें नैरोबी आदि अनेक स्थानों पर स्वाध्यायमंदिर, जिनमंदिर आदि और पंचकल्याणक तथा वेदी-प्रतिष्ठाके महोत्सव हुए।

* सातिशय प्रभावनायोग *

पूज्य गुरुदेवकी अध्यात्मसाधना और मार्गप्रकाशनकी सातिशयताके कारण उनका प्रभावनयोग, विहारोंमें एवं प्रतिष्ठोत्सवोंमें तीर्थंकर-आचार्योपम, चमत्कारपूर्ण अद्भुतताकी सीमा तक पहुँच जाता था। वि. सं. २०१५, २०२० और २०२५—इस प्रकार तीन बार बम्बईमें मनाये गये पंच-कल्याणक-प्रतिष्ठामहोत्सवोंकी भव्यताका तो कहना ही क्या? प्रवचनोंमें दस दस सहस्र जिज्ञासु श्रोताओंकी विशाल संख्या पूज्य गुरुदेवके श्रीमुखसे बरसते अध्यात्मामृतका इतनी शान्ति और तल्लीनतासे रसपान करती कि छोटी सी सुई गिरनेकी आवाज भी श्रोताओंको खटकती। सभाकी शान्ति एवं श्रवण लीनता देखकर 'पूज्य गुरुदेवकी अध्यात्मवाणीमें श्रोताओंको जकड लेनेका कोई आश्चर्यकारी जादू है'-ऐसा अनुभव लोगोंको होता।

अलौकिक पुरुषकी अलौकिक वाणी

पूज्य गुरुदेवका आत्मद्रव्य अद्भुत और अलौकिक था। उनकी लोकोत्तर अध्यात्मवाणी भी ऐसी ही प्रभावक थी। वह सातिशय वाणी श्रोताओंके अंतरमें आत्माकी रुचि जगानेवाली थी। उनकी वाणीकी गहनता और टंकार अनोखे ही थे। वाणी सुनते ही अपूर्वता लगे और 'जड-चैतन्य भिन्न भिन्न हैं' ऐसा स्पष्ट भास हो जाय ऐसी सक्षम और अद्भुत वह वाणी थी। 'अरे जीव! तुम देहमें विराजमान भगवान आत्मा हो जो कि अनंतगुणोंका महासागर है, वह मन, वचन, कायासे भिन्न है और विभावसे भी पार है। उस प्रत्यक्ष अनुभवगोचर निज आत्मभगवानका तुम अनुभव करो! तुम्हें परमानन्दकी प्राप्ति होगी।'- ऐसी गुरुदेवकी अनुभव-युक्त प्रबल वाणी हजारों श्रोताओंको आश्चर्यमें डाल देती थी।

* प्रतिष्ठोत्सवके अवसर पर अनूठी प्रभावना *

पंचकल्याणक-प्रतिष्ठोत्सवके समय बम्बईमें स्वागत, जन्म-कल्याणक, निःक्रमणकल्याणक आदिके उपलक्ष्यमें जो बड़े-बडे जुलूस अनेक हाथी,

सुन्दर रथ, सुशोभित विक्टोरिया आदिसे सजधजकर निकले थे उनका मनोहर सौन्दर्य सचमुच अद्भुत था। पूज्य गुरुदेवका यह पुनीत प्रभाव देखकर जुलूसमें चलते चलते लाडनूँ (राजस्थान) निवासी—कलकत्ताके व्यापारी श्री तोलारामजी और गजराजजी—दोनों गंगवाल बंधुओंने प्रभावित होकर गुरुदेवसे हाथ जोडकर प्रार्थना की कि—महाराजजी! आपका पुण्य-प्रभाव बहुत बड़ा है, कृपा करके हमारे लाडनूँमें भी ऐसा भव्य महोत्सव कर दीजिये! आपके पधारनेसे हमारा जीवन, परिवार एवं गाँव धन्य धन्य हो जायगा। पूज्य गुरुदेवने उत्तरमें कहा : सेठ! यह सब जिनधर्मका प्रभाव है, मैं इसका कर्ता-धर्ता नहीं हूँ। यह सब करनेसे नहीं अपितु सहज होता है।

ऐसी ही भव्यता पिपलानी (भोपाल) के पंचकल्याणक अवसर पर देखनेको मिली थी। ४५ हजार श्रोताओंकी बड़ी सभामें भी पूज्य गुरुदेव अश्रुतपूर्व, अद्भुत अध्यात्मतत्त्व परोसते थे। श्रोता मंत्रमुग्ध होकर उसका रसपान करते थे। आसपास त्यागीगण और विद्वद्गण, सामने विशाल श्रोतासमुदाय और भव्य उच्चासनस्थित दिव्यवाणीके प्रकाशक पूज्य गुरुदेव, अहो! कैसा समवसरणसदृश आश्चर्यकारक वह अद्भुत दृश्य था! भक्तजन पूज्य गुरुदेवके सातिशय प्रभावनोदयकी सराहना करते अंतरमें बहुत प्रसन्न होते थे। उत्सवकी समाप्तिके समय शान्तिरथयात्रामें वहाँके मुमुक्षुओंकी आग्रहपूर्ण विनतिसे पूज्य गुरुदेव, भगवानके रथके सारथीके रूपमें, रथ पर विराजमान हुये थे। अहो! पूज्य गुरुदेव उस वक्त ऐसे शोभते थे मानों कि जिनेन्द्र-धर्मरथके शासननायक अजोड सारथी कोई असाधारण कौशल्यसे वीतराग जिनधर्मकी अचिन्त्य महिमाको सारे भारतवर्षमें सुप्रसिद्ध करनेके लिये पधारे हैं।

पूज्य गुरुदेवके परम प्रतापसे किस नगरमें कब पंचकल्याणक या वेदी-प्रतिष्ठा हुई उसका विवरण निम्न प्रकार है।

वीतरागधर्मप्रभावक पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीके मंगल-
प्रभावनायोगमें बने जिनमंदिरोंकी—

* पंचकल्याणक-प्रतिष्ठाएँ *

क्रम	स्थान	प्रतिष्ठातिथि (गुजराती तिथि अनुसार)	मूलनायक भगवान
१	सोनगढ़	वि. सं. १९९७, फाल्गुन सुद २	श्री सीमंधर भगवान
२	सोनगढ़-समवसरण	,, १९९८, वैशाख वद ६	,,
३	वींछिया	,, २००५, फाल्गुन सुद ७	,, सीमंधर भगवान
४	लाठी	,, २००५, जेठ सुद ५	,, सीमंधर भगवान
५	राजकोट	,, २००६ फाल्गुन, सुद १२	,, ,, ,,
६	सोनगढ़—मानस्तंभ (६३ फूट उन्नत)	,, २००९, चैत्र सुद १०	,, सीमंधर भगवान
७	पोरबंदर	,, २०१०, फाल्गुन सुद ३	,, पार्श्वनाथ भगवान
८	मोरबी	,, २०१०, चैत्र सुद २	,, महावीर भगवान
९	वांकानेर	,, २०१०, चैत्र सुद १३	,, वर्धमान भगवान
१०	लींबडी	,, २०१४, वैशाख सुद १३	,, पार्श्वनाथ भगवान
११	बम्बई	,, २०१५, माघ सुद ६	,, सीमंधर भगवान
१२	जामनगर	,, २०१७, माघ सुद ७	,, महावीर भगवान
१३	जोरावरनगर	,, २०१९, वैशाख सुद १३	,, आदिनाथ भगवान
१४	दादर (बम्बई)	,, २०२०, वैशाख सुद ११	,, महावीर भगवान
	(जिनमंदिर—समवसरण)		,, सीमंधर भगवान
१५	राजकोट	,, २०२१, वैशाख सुद १२	,, सीमंधर भगवान
	(समवसरण—मानस्तंभ)		,,
१६	आकडिया	,, २०२३, माघसुद १	,, सीमंधर भगवान
१७	हिंमतनगर	,, २०२३, माघसुद १०	,, महावीर भगवान

क्रम	स्थान	प्रतिष्ठातिथि (गुजराती तिथि अनुसार)	मूलनायक भगवान
१८	अमदाबाद	वि. सं. २०२५, फाल्गुन सुद ५	श्री पार्श्वनाथ भगवान (विशाल आदिनाथ)
१९	रनासण	,, २०२५, फाल्गुन वद २	,, आदिनाथ भगवान
२०	मलाड (बम्बई)	,, २०२५ वैशाख सुद ७	,, आदिनाथ भगवान
	घाटकोपर ,,	,, २०२५ वैशाख सुद ८	,, नेमिनाथ भगवान
२१	अंतरीक्ष पार्श्वनाथ	,, २०२६, फाल्गुन सुद २	,, पार्श्वनाथ भगवान
२२	भावनगर	,, २०२६ वैशाख सुद ३	,, सीमंधर भगवान
२३	घाटकोपर (सर्वोदय-होस्पिटल)	,, २०२८ फाल्गुन वद ३	,, आदिनाथ भगवान
२४	फतेपुर—समवसरण	,, २०२८ वैशाख सुद ३	,, सीमंधर भगवान
२५	सोनगढ (परमागममंदिर)	,, २०३०, फाल्गुन सुद १३	,, महावीर भगवान
२६	भोपाल (पिपलानी)	,, २०३१ माघ वद ३	श्री महावीर भगवान
२७	बेंग्लोर	,, २०३१, चैत्र सुद १३	,, महावीर भगवान (ऊपर सीमंधर—समवसरण)
२८	वढवान	,, २०३२, फाल्गुन सुद ८	श्री वर्धमान भगवान
२९	मद्रास	,, २०३४, फाल्गुन सुद ३	,, महावीर भगवान
३०	कुरावड	,, २०३४, वैशाख सुद १	,, सीमंधर भगवान
३१	नाईरोबी	,, २०३६, माघ सुद २	,, महावीर भगवान
३२	वडोदरा	,, २०३६, फाल्गुन सुद १३	,, आदिनाथ भगवान

* * *

क्रम	स्थान	प्रतिष्ठातिथि	मूलनायक भगवान
३३	सोनगढ	,, २०४१ फाल्गुन सुद ७	,, पंचमेरु—नन्दीश्वर (ऊपर : आदिनाथ भगवान)
३४	नवरंगपुरा (अमदावाद)	,, २०४१ फाल्गुन सुद ११	श्री महावीर भगवान
३५	राजकोट	,, २०४५ माघ सुद ५	,, भरत—बाहुबली

जिनेन्द्रधर्मप्रभावक अध्यात्ममूर्ति पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीके सातिशय प्रभावनायोगसे सम्पन्नः—

* जिनेन्द्र-वेदीप्रतिष्ठाएँ *

क्रम	गाँव	प्रतिष्ठा तिथि (गुजराती)	मूलनायक भगवान
१	वढवाण	वि. सं. २०१०, चैत्र वदि ८	श्री सीमंधर भगवान
२	सुरेन्द्रनगर	,, २०१०, वैशाख सुदि ३	श्री शान्तिनाथ भगवान
३	राणपुर	,, २०१०, वैशाख सुदि १३	,, महावीर भगवान
४	बोटाद	,, २०१०, वैशाख वदि ८	,, श्रेयांसनाथ भगवान
५	उमराला	,, २०१०, जेठ सुदि ५	,, सीमन्धर भगवान
६	सोनगढ (६८ फूट, उन्नत)	,, २०१३, कार्तिक सुदि १२	,, नेमिनाथ भगवान (जि-मंदिर-वृहत्त-करणनिमित्त पुन वेदी प्रतिष्ठा)
७	पालेज	,, २०१३, मार्गशीर्ष सुदि ११	,, अनंतनाथ भगवान
८	खेरागढ	,, २०१५, चैत्र सुदि १	,, शान्तिनाथ भगवान
९	वडिया	,, २०१६, माघ सुदि ६	,, नेमिनाथ भगवान
१०	जेतपुर	,, २०१६, माघ सुदि ११	,, श्रेयांसनाथ भगवान
११	गोंडल	" २०१६, माघ सुदि १५	" शान्तिनाथ भगवान
१२	सावरकुंडला	" २०१७, फाल्गुन सुदि १२	" शान्तिनाथ भगवान
१३	दहेगाम	" २०१९, वैशाख वदि ८	" महावीर भगवान
१४	भोपाल	" २०१९, ज्येष्ठ सुदि ५	" महावीर भगवान
१५	रखियाल	" २०२०, फाल्गुन वदि ३	" नेमिनाथ भगवान
१६	बोटाद (ऊपर)	" २०२०, चैत्र सुदि ८	"
१७	उज्जैन	" २०२१, माघ वदि ६	" सीमन्धर भगवान
१८	भोपाल (टी.टी.नगर)	" २०२१,	" आदिनाथ भगवान
१९	जसदण	,, २०२३, पोष वदि ८	,, महावीर भगवान

क्रम	स्थान	प्रतिष्ठातिथि (गुजराती तिथि अनुसार)	मूलनायक भगवान
२०	जयपुर (टोडरमल-स्मारक)	वि. सं. २०२३, फाल्गुन सुदि २	श्री सीमन्धर भगवान
२१	उदयपुर	,, २०२३, चैत्र वदि ८	,, चन्द्रप्रभ भगवान
२२	इन्दौर	,, २०२५, वैशाख वदि ५	,,
२३	मक्षी (पार्श्वनाथ)	,, २०२५, वैशाख वदि ७	,, पार्श्वनाथ भगवान
२४	जलगाँव	,, २०२६, फाल्गुन सुदि ६	,, आदिनाथ भगवान
२५	बानानलाव	,, २०२६, चैत्र वदि ११	,, धर्मनाथ भगवान
२६	अमरेली	,, २०२८, फाल्गुन सुदि ५	,, शान्तिनाथ भगवान
२७	रामपुरा	,, २०२८, वैशाख सुदि ५	,, आदिनाथ भगवान
२८	कामणवाडा	,, २०२८, वैशाख सुदि ६	,, आदिनाथ भगवान
२९	जांबूडी	,, २०३०, कार्तिक सुदी १३	.. ...
३०	गढडा	,, २०३०, वैशाख वदि २	श्री पार्श्वनाथ भगवान
३१	जूनागढ़-मानस्तंभ	,, २०३१, माघसुदि ५	,, नेमिनाथ भगवान
३२	खुरई मानस्तंभ	,, २०३१, माघ वद ७	,, आदिनाथ भगवान
३३	सनावद-समवसरण	,, २०३१ माघ वद ११	,, सीमंधर भगवान
	*	*	*
३४	घाटकोपर (ऊपर)	,, २०४३, फाल्गुनसुद ३	,, आदिनाथ–बाहुबली
३५	सुरेन्द्रनगर	,, २०४३, वैशाख सुद १३	
३६	दादर	,, २०४४,	श्री आदिनाथ भगवान

— * —

* गुरुदेवका मुख्य उपकार *

पूज्य गुरुदेवके लोकोत्तर पुण्य प्रतापसे स्वानुभूति प्रधान अध्यात्मधर्मके साथ साथ जिनमंदिरनिर्माण, जिनबिंबप्रतिष्ठा, वेदी–प्रतिष्ठा, धार्मिक शिक्षण शिबिर, 'आत्मधर्म' पत्रका गुजराती, हिन्दी, मराठी, कन्नड और तमिल

भाषामें प्रकाशन, समयसारादि मूल शास्त्र तथा प्रवचन-साहित्यकी लाखों पुस्तकें आदि—इन सभी कार्योंके 'कर्ता' वास्तवमें तो कृपालु गुरुदेव थे ही नहीं, वे तो अंतरमें, उनके लिये उनकी ज्ञातापरिणतिरूप साधना ही मुख्य होनेसे, केवल इन कार्योंके ज्ञाता ही थे। उनकी दृष्टि और जीवन आत्माभिमुख था। उपरोक्त सभी कार्य 'अकर्ता'भावसे—ज्ञाताभावसे सहजपनेसे हो गये थे। स्वानुभव समन्वित भेदज्ञानधारासे बहते शुद्धात्मदृष्टि-जनक अध्यात्मोपदेश द्वारा आत्मकल्याणका जो अनुपम मार्ग हमें दिखाया वही वास्तवमें उनका हम पर अलौकिक, महानतम, मुख्य उपकार है। वे बारबार कहते :—इस अल्पायु मनुष्यपर्यायमे निज कल्याणकी साधना और उसके मूल कारणभूत शुद्धात्मानुभूतियुक्त निर्मल सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति यही परम कर्तव्य है। भवान्तकारी सम्यग्दर्शनका माहात्म्य सचमुच अचिन्त्य, अद्‌भुत, अपार है।

* सम्यग्दर्शनका माहात्म्य *

अरे! इस कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शन—निज शुद्धात्मदर्शनके बिना अनादि-कालसे अनंत अनंत जीव संसारपरिभ्रमणके दुःख सह रहे हैं। जीव चाहे जितना पूजापाठ, व्रत-तप आदि क्रियाकांड करे या तो शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त करे किन्तु जब तक वह राग और परलक्षी ज्ञानपरसे अपनी दृष्टि हटाकर तथा उसकी महिमा छोड़कर अंतरमें त्रिकाली विज्ञानघन आत्म-स्वभावकी महिमा नहीं समझेगा, अन्तर्मुख दृष्टि नहीं करेगा तबतक उसकी गति संसारकी ओर है। उनमेंसे कोई विरल जीव सद्‌गुरुबोधके द्वारा तत्त्व समझकर, अपूर्व पुरुषार्थपूर्वक अपनी परिणति अन्तर्मुख करके सम्यग्दर्शन—निज शुद्धात्मानुभूति—प्राप्त कर ले, उसीने वास्तवमें, संसारमार्ग पर चलते समूहसे अलग होकर, मोक्षके मार्ग पर अपना मंगल प्रस्थान किया है। भले उसकी गति मंद हो, वह असंयतदशामें हो, अंतरमें साधनाका—लीन हो जानेका उग्र पुरुषार्थ नहीं कर सकता हो, तथापि उसकी दिशा मोक्षकी

ओर है, वह मोक्षमार्गपर चलनेवालोंकी जातिका है। सम्यग्दर्शनका ऐसा अद्भुत माहात्म्य कल्याणार्थीके हृदयमें जम जाना चाहिये।

—इस प्रकार जिनेन्द्रशासनप्रभावक, मंगलमूर्ति पूज्य कहान गुरुदेवने मंगल विहार करके, मंगलमय पंचकल्याणक तथा वेदी प्रतिष्ठाओं द्वारा परम मंगलकारी जिनेन्द्रवृंदोंकी पावन स्थापना की और नगर नगर तथा गाँव गाँवमें व्याख्यान करके अध्यात्मामृतके महान झरने बहाये, जिनमें डूबकर पावन होनेके लिये हजारों भव्यजीवोंका समुदाय उमड़ रहा था। अहा! क्षणभरके लिये तो बड़े बड़े मांधाता भी विस्मयमुग्ध हो जायँ ऐसा था पूज्य गुरुदेवका पावन प्रभावना—उदय!

अहा! मात्र सम्यग्दृष्टिके रूपमें ही इतना माहात्म्य है, तो फिर भवसागर पार होनेका अमोघ उपाय बतानेवाले ऐसे प्रत्यक्ष—परमोपकारी सम्यग्दृष्टिके अपार माहात्म्यकी तो क्या बात की जाय? सम्यक्त्वतीर्थ—प्रभावक ऐसे हमारे प्रत्यक्ष परमोपकारी सम्यग्दृष्टि सातिशय महिमाके धनी कृपामूर्ति पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीके चरणोंमें हम अपना सर्वस्व अर्पण कर दें वह भी कम है। सचमुच, पूज्य कहानगुरुदेवके द्वारा सम्यक्त्व-प्रधान जैनधर्मकी सहजरूपसे बहुत बहुत प्रभावना हुई है।

* आदर्श ब्रह्मचारी *

पूज्य गुरुदेवका समग्र जीवन एक ओर अध्यात्मरससे सराबोर था तो दूसरी ओर ब्रह्मचर्यकी अद्भुत कांतिसे देदीप्यमान था। छोटी उम्रसे ही उनके हृदयमें ब्रह्मचर्यका असीम प्रेम था इसलिये उन्होंने कुमार ब्रह्मचारीके रूपमें अपना जीवन व्यतीत किया। वे न तो कभी स्त्रियों की ओर देखते या न उनके साथ बातचीत करते वे स्त्रियोंकी ओर उपेक्षा-भावसे, सिर्फ पुरुषोंके प्रति अपनी दृष्टि रहे इस प्रकार प्रवचनके समय

पुरुषोंकी ओर मुख करके आसन लेते। वे कभी स्त्रियोंको संबोधन नहीं करते, न उनके साथ प्रश्नोत्तर करते। उनके दर्शनके लिये भी अकेली एक या एकसे ज्यादा स्त्रियाँ अपने साथ पुरुषकी उपस्थितिके बिना उनके पास आ नहीं सकती थीं, ऐसा उनके ब्रह्मचर्यका प्रताप था। उनका तीव्र वैराग्य और ब्रह्मचर्यका रंग सचमुच अद्भुत था।

स्वानुभवसमृद्ध–शुद्धात्मतत्त्वविज्ञानी ऐसे पूज्य गुरुदेवके ब्रह्मचर्यका प्रभाव श्रोतासमाजके उपर बहुत गहरा पड़ता। उनके आदर्श ब्रह्मचर्यमय आध्यात्मिक जीवनसे प्रभावित होकर, निजकल्याणके हेतु कई कुमार भाइयोंने, अनेक कुमारिका बहनोंने और अनेक दंपतियोंने आजीवन ब्रह्मचर्य पालनकी प्रतिज्ञा ली थी।

इस शताब्दीमें हुई वीतराग जिनशासनकी प्रबल प्रभावनामें जिनकी आध्यात्मिक पवित्रताका और जिनके मार्गप्रभावक लोकोत्तर पुण्ययोगका बहुत बड़ा हिस्सा है ऐसे पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीके भव्यजनहितकर तत्त्वोदेपशमें 'मुमुक्षुजनोंको सबसे प्रथम मोक्षमार्गकी नींव स्वरूप सम्यग्दर्शन प्रकट करना चाहिये'—इस प्रकार सम्यक्त्वका खूब महत्त्व दर्शाया जाता। वे कहते: सम्यग्दर्शनके बिना व्रत–तप, भक्ति और शास्त्रज्ञान–सबकुछ मोक्षके लिये व्यर्थ है। निर्मल सम्यग्दर्शन स्व-पर और स्वभाव–विभावके भेदज्ञान-रूप तत्त्वके अभ्याससे होता है। सत्समागमके द्वारा जीवादि तत्त्वोंका यथार्थ श्रवण–ग्रहण करके, उसके विषयमें सत्–असत्के गहन विचारबलसे निर्णयादिके अभ्यासमें प्रगति हो सकती है।

* कुमारिका बहिनोंकी ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा *

पूज्य गुरुदेवके अध्यात्मोपदेशसे प्रभावित होकर क्रमशः अनेक कुलीन कुमारिका बहिनोंको ज्ञान, वैराग्य और उपशमरसपूरित ऐसी प्रशममूर्ति

* सातिशय प्रभावनायोग *

पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिनके निकट सत्समागममें रहकर तत्त्वाभ्यासके हेतु, ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करके जीवन बितानेकी भावना जाग्रत हुई। इसलिये सबसे प्रथम वि. सं. २००५में कार्तिक शुक्ला १३के दिन ६ कुमारिका बहिनोंने एकसाथ पूज्य गुरुदेवके पास आजीवन ब्रह्मचर्यपालनकी प्रतिज्ञा ली। बादके वर्षोंमें क्रमशः ऐसी ही अन्य १४, ८, ९, और ११ कुमारिका बहिनोंने भिन्न भिन्न अवसर पर, पूज्य गुरुदेवके समक्ष ब्रह्मचर्यप्रतिज्ञा ली। अहो! इस भौतिक, विलासप्रचुर, विषमयुगमें अंतरमें उपशमका लक्ष रखकर, वीतरागविज्ञानके अभ्यासके लिये, पूज्य गुरुदेवके सम्यक्त्वप्रधान पावन तीर्थमें, प्रशममूर्ति, स्वानुभवविभूषित, महिलामुमुक्षुसमाजके एकमात्र परमाधार ऐसी पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिनकी कल्याणकारी छायामें—उनकी भवोदधितारक मंगल शरणमें—जीवनको वैराग्य और उपशममें ढालनेका यह अनुपम आदर्श सचमुच पूज्य गुरुदेवके पुनीत प्रभावनायोगका एक असाधारण विशिष्ट अंग है।

* विहार और यात्रा द्वारा प्रभावना *

पूज्य गुरुदेवके असाधारण पवित्र प्रभावनायोगसे 'अध्यात्मतीर्थक्षेत्र' के रूपमें केवल भारतवर्षके ही नहीं अपितु विश्वके नकशेमें दीपित सुवर्णपुरीमें (सोनगढ़में) रहकर उनके अध्यात्मोपदेश, विविध जिनायतनोंके निर्माण, विपुल सत्साहित्यके प्रकाशन, ब्रह्मचर्य-जीवनके आदर्श, धार्मिक शिक्षणशिविर आदि द्वारा वीतराग जैनधर्मकी महती प्रभावना हुई। इसके अतिरिक्त दो बार पूर्व एवं उत्तरभारतके तथा दो बार दक्षिण एवं मध्य भारतके जैन तीर्थक्षेत्रोंकी विशाल संघ सहित पावन यात्राएँ और अनेक विहारों द्वारा भी सनातन सत्य जैनधर्मकी असाधारण प्रभावना हुई। पूज्य गुरुदेव द्वारा हो रही धर्मप्रभावनाको देखकर देशदेशके लोग अध्यात्मप्रधान जैनधर्मका मंगलमय पुनरुदय हो रहा हो ऐसा अनुभव करते थे। वे सब अत्यंत हर्षविभोर होकर पूज्य

गुरुदेवके प्रति उनके भव्य स्वागत और उपदेशश्रवणादि द्वारा अपना आदर भक्तिभाव व्यक्त करते थे।

परिवर्तन करनेके पहले ही, अनेक वर्षोंसे पूज्य गुरुदेव द्वारा, चातुर्मास और शेषकालीन विहारोंमें सौराष्ट्रमें अध्यात्मधर्मका वातावरण तयार हो गया था; परन्तु 'परिवर्तन' होनेके बाद ये अध्यात्म बीज 'शुद्ध दिगंबर जैनधर्म'के रूपमें स्पष्टरूपेण अंकुरित हुए। पूज्य गुरुदेवका आत्मद्रव्य ही सत्प्रभावनाकी कोई अद्‌भुत योग्यतावाला था! इससे उनके विहारोंमें भी सातिशय धर्मप्रभावना होती थी। 'परिवर्तन'के बाद वि. सं. १९९५ एवं १९९९में राजकोटमें चातुर्मासके हेतुसे सौराष्ट्रमें जो जो विहार हुए उनमें पूज्य गुरुदेवकी प्रभावनाकारी अध्यात्मवाणी सुननेके लिये सत्-पिपासु जीवोंका बहुत बड़ा समुदाय उमड़ता।

छोटे-छोटे गाँवोंमें भी पूज्य गुरुदेवकी वाणीके प्रभावसे जनता कितनी आकर्षित होती थी, इसका एक नमूना देखिये। सं. १९९५के विहारमें, राजकोटसे लौटते वक्त 'कोठारिया' नामक छोटे गाँवमें पूज्य गुरुदेवने प्रभावनापूर्ण व्याख्यान दिया था। इसका वर्णन प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिनने इन शब्दोंमें किया था। "वहाँ परम पूज्य कृपालुदेवके व्याख्यानमें श्रोताओंकी संख्या करीब १०००-१२०० जितनी थी। बगीचेमें—हरी वनराजिमें—प्रवचन दिया था। एक पेड़के नीचे बरामदा था, उसके ऊपर तख्त था। वहाँ बैठकर पूज्य गुरुदेव प्रवचन करते थे। समवसरणसदृश दृश्य खड़ा होता था। श्री पद्मनंदीशास्त्रमें 'श्रुत-परिचित-अनुभूत सर्वने' इस प्रकारके आशयवाली जो गाथा है, उसके विषयमें व्याख्यान दिया गया था। 'मैं कौन हूँ? कहाँसे हुआ'? आदि बातें आयी थीं।"

दोनों चातुर्मासके बाद वि. सं. २००५, २००६, २०१० और

२०१४ इस प्रकार चार बार सौराष्ट्रमें, पंचकल्याणक और वेदीप्रतिष्ठाके हेतु, अनेक गाँवोंमें मंगल विहार हुए। पूज्य गुरुदेव अपने अध्यात्मोपदेशमें जिनेन्द्रमहिमाके साथसाथ जिनेन्द्रप्ररूपित सूक्ष्म तत्त्वज्ञान भी समझाते थे। वे कहते: विश्वके जीवादि समस्त द्रव्य परिपूर्ण एवं स्वतंत्र है। प्रत्येक द्रव्यके गुण-पर्याय अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य भिन्न भिन्न है। आत्मद्रव्यको शरीरादि परद्रव्योंके साथ वास्तवमें कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। आत्मा अन्य पदार्थोंसे बिल्कुल भिन्न रहकर अपने शुभ, अशुभ या शुद्ध भावको स्वयं ही करता है। यहाँ स्वभावतः एक प्रश्न होता कि "(श्री प्रवचनसार शास्त्रके अनुसार) शुभ के अशुभमां प्रणमतां 'शुभ के अशुभ' आत्मा बने" ऐसा आप कहते हैं और साथ साथ "आत्मा 'सदा शुद्ध' रहता है, तथा उस त्रिकाली शुद्धताका आश्रय करना वह मोक्षमार्ग है" ऐसा भी आप फरमाते हैं; तो इन दोनों बातोंमें मेल कैसे होता है? (दोनोंका मेल कैसे बैठता है?)

इस अत्यंत महत्त्वकी बातका स्पष्टीकरण पूज्य गुरुदेव इस प्रकार करते: "जब स्फटिक मणि लाल वस्त्रके संयोगसे लाल होता है तब भी उसकी निर्मलता सर्वथा नष्ट नहीं हुई है, सामर्थ्यकी अपेक्षासे-शक्तिकी अपेक्षासे वह निर्मल रहा है; उसका परिणमन लालीरूप अवश्य हुआ है, वह लाली स्फटिककी ही है, वस्त्रकी बिल्कुल नहीं; परंतु वह लाली लाल रंगके पावडरकी, सिन्दूरकी या कुमकुमकी लाली जैसी नहीं है; लाल अवस्थाके समय भी सामर्थ्यरूप निर्मलता उसमें विद्यमान है।

इसी प्रकार आत्मा कर्मके निमित्तसे शुभभावरूप या अशुभभावरूप होता है तब भी उसकी शुद्धता सर्वथा नष्ट नहीं हुई है, सामर्थ्यअपेक्षासे-शक्तिअपेक्षासे वह शुद्ध रहा है; वह शुभाशुभभावरूपसे अवश्य परिणमा है, वह शुभाशुभपना आत्माका ही है, कर्मका बिलकुल नहीं; परंतु शुभाशुभ अवस्थाके समय भी उसमें सामर्थ्यरूप शुद्धता विद्यमान है।

"जिस प्रकार स्फटिक मणिको लाल हुआ देखकर बालक रोने लगता है कि 'अरे! मेरा स्फटिक मणि सर्वथा मैला हो गया' परंतु जौहरी (स्फटिककी) लालीके समयमें ही मौजूद निर्मलताको मुख्य करके जानता होने से वह निर्भय रहता है; उसी प्रकार आत्माको शुभाशुभभावरूप परिणमता देखकर अज्ञानी उसको सर्वथा मैला मानकर दुःखी दुःखी होता है परंतु शुभाशुभभावके समयमें ही विद्यमान शुद्धताको मुख्यरूपसे जानता होनेसे ज्ञानी निर्भय रहता है।"

सामर्थ्य कहो, शक्ति कहो, सामान्य कहो, ज्ञायक कहो, ध्रुवत्व कहो, द्रव्य कहो या पारिणामिकभाव कहो—ये सब एकार्थ हैं ऐसा गुरुदेव फरमाते थे।

पूज्य गुरुदेवका सातिशय प्रभावनायोग सम्पूर्ण भारतमें फैल जाय ऐसा महान मंगल विहार वि. सं. २०१३ में हुआ। 'अध्यात्मतीर्थ' सुवर्णपुरीके श्री सीमंधर-जिनमंदिरका विस्तृतीकरण होनेसे, कार्तिक शुक्ला १२ मंगलवारके दिन बालब्रह्मचारी श्री नेमिनाथ भगवानकी पुनः वेदीप्रतिष्ठा सम्पन्न होनेके बाद प्रथम बार ही, शाश्वत निर्वाणक्षेत्र श्री संमेदशिखर, पावापुरी, चम्पापुरी आदि जैन तीर्थोंकी पवित्र यात्राके हेतु पूज्य गुरुदेवश्रीका बम्बईकी ओर विहार हुआ। मार्गमें आते हुए छोटे-बडे अनेक गाँवोंको दिव्य अध्यात्मोपदेशसे पावन करते करते, पालेजमे मार्गशीर्ष शुक्ला ११ के शुभ दिन श्री अनन्तनाथादि जिनेन्द्रभगवन्तोंकी पावन प्रतिष्ठा करके पूज्य गुरुदेव माघ कृष्णा १४ और रविवारके दिन बम्बईमें पधारे।

अहो! अध्यात्मतीर्थप्रवर्तकके रूपमें बम्बईमें पहली ही बार पधारे हुए पूज्य गुरुदेव द्वारा जो असाधारण धर्मप्रभावना हुई, उसकी तो क्या बात हम करें! इस अवसर पर स्थल स्थल पर की गई विविध रचनाओंसे विभूषित बम्बई नगरीकी शोभा अद्भुत थी। ध्वज और तोरण, दरवाजे

और भव्य प्रवेशद्वार, पुष्पवृष्टि और स्वागत-सूत्र, बेन्डवाजे और विमान-रचना, अनेक मोटरों और विक्टोरिया गाड़ियोंकी लम्बी लम्बी कतारें—और इन सबके बीचमें हजारों भक्तोंके हर्षोल्लासमय गगनभेदी जयकार और मधुर गीतोंसे स्वागत किये गये पूज्य गुरुदेव—अध्यात्मतीर्थप्रवर्तक महान संतका अनुपम स्वागत हुआ था। नगरमें कोई असाधारण महापुरुष पधारे हैं ऐसे अहोभावसे लाखों लोग खिड़कियों और छतोंसे स्वागतका यह भव्य दृश्य देख रहे थे। लोग गुरुदेवके दर्शनके लिये इतने उत्सुक थे कि अनेक स्थलों पर भारी भीड़ बढ़ जाती थी और इस महानगरका वाहन-व्यवहार जगह जगह थम जाता था। देखने और सुननेवाले सभी आश्चर्यचकित हो जाते थे। बम्बईके केन्द्रस्थानमें आये हुए मुम्बादेवी-मैदानमें पंद्रह पंद्रह हजार श्रोताओंकी विशाल सभामें भी पूज्य गुरुदेव तो भवान्तकारी सम्यग्दर्शनके हेतुभूत अध्यात्मतत्त्वज्ञान ही परोसते। श्रोतागण बिलकुल नीरव बनकर अत्यंत शांति, जिज्ञासा और नवीनताके अहोभावसे सुनते रहते। बम्बई मुमुक्षुमंडल द्वारा आमंत्रित प्रमुख दिगंबर जैन विद्वान भी, पूज्य गुरुदेवकी उपादान-निमित्त और निश्चय-व्यवहारका सुमेल बिठानेवाली प्रवचनवाणीसे अत्यंत प्रभावित होते थे। (वि. सं. २०१५ में बम्बईके श्री सीमंधरस्वामी दि. जिनमंदिरकी पंचकल्याणक प्रतिष्ठाके वक्त सुप्रसिद्ध पं. श्री कैलाशचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री अपना प्रमोद व्यक्त करते अपने भाषणमें इस प्रकारके आशययुक्त कुछ बोले थे कि—'स्वामीजी द्वारा जो धर्मप्रभावना हो रही है इससे हमारा हृदय आनन्दसे गद्‌गद्‌ हो रहा है। पिछली कई शताब्दी पर दृष्टि डालनेसे प्रतीत होता है कि यह धर्मप्रभावना अद्‌भुत है। उपादान-निमित्तका उल्लेख करके वे प्रसन्नतासे बोले थे कि स्वामीजीकी वाणीमें उपादान-कारणपर बल अवश्य आता है, परन्तु वे समुचित निमित्तके योगका निषेध नहीं करते। स्वामीजीकी वाणीका मर्म नहीं समझकर कई लोग विवाद करते हैं

कि 'स्वामीजी निमित्त उड़ाते हैं,' किन्तु वे निमित्त उड़ाते नहीं अपितु उपादानमे निमित्तके कर्तृत्वका निषेध करते हैं, जो तत्त्वत: यथार्थ है।')

बम्बई महानगरमे १७ दिन तक पूज्य गुरुदेवने अध्यात्मतत्त्वज्ञानका अमृत झरना बहाया। श्रोताजन आह्लादसे कहते : अनादिकालसे मोहनिद्रामे डूबे हुए जीवोंको तत्काल जगानेवाली यह बलवान वाणी है। वाणी इतनी प्रभावशाली है कि लोग स्तब्ध होकर थम जाते है। व्याख्यान सुनते समय तो ऐसा लगता है कि मानों हम किसी दूसरे विश्वमें–शान्तिकी दुनियामें बैठे हैं। बम्बईमें प्रवचनकार तो अनेक आते हैं और आम सभाएँ भी होती हैं, परंतु सभाका ऐसा शान्त वातावरण और अध्यात्मकी ऐसी बात अनेक दिनों तक धारावाहीरूपसे लोग सुनते रहे, ऐसा हमने कभी देखा नहीं है। इस प्रकार अनेक लोग भिन्न भिन्न उद्गारोंसे अपना प्रमोद व्यक्त करते थे।

वि. सं. २०१३, पौष शुक्ला १५ के शुभ दिनको पूज्य गुरुदेवने बम्बईसे ७०० भक्तोंके विशालसंघके साथ शाश्वत सिद्धिधाम श्री सम्मेदशिखर आदि पावन तीर्थोंकी मंगलयात्राके हेतु प्रस्थान किया। भव्यता ऐसी लगती थी कि जैसे तीर्थंकर अकेले मोक्ष नहीं पधारते, उसी प्रकार पूज्य गुरुदेवका सिद्धिधामके प्रति प्रस्थान एकाकी नहीं परतु विशाल संघ-सहितका हो, ऐसा लगता था। पूज्य गुरुदेव भिवंडी होकर नासिकके पास गजपंथा सिद्धक्षेत्र पधारे। सात बलभद्र और आठ क्रोड मुनिराज यहाँसे मुक्त हुए हैं। पौष कृष्णा प्रतिपदाके दिन पूज्य गुरुदेवने संघ सहित मुनिवरोंके प्रति अंतरके आनंदोल्लासपूर्वक भव्य यात्रा की। गुरुदेवके श्रीमुखसे तीर्थक्षेत्रकी विशेषताएँ सुनकर–समझकर भक्तसमुदाय बहुत आनन्दित होता था। गजपंथा सिद्धक्षेत्रके छोटेसे रमणीय पहाडके ऊपर दो जिनमंदिर हैं। उनमेंसे एक मंदिरमें आठ फुटकी विशाल, पद्मासनस्थ श्री पार्श्वनाथ भगवानकी प्रतिमा विराजित है। भगवानकी भव्य

वीतराग मुद्रा देखकर पूज्य गुरुदेवके नेत्र अहोभावमें लीन हो गये। पूज्य गुरुदेवके साथ पूजा-भक्ति करनेमें भक्तोंको अतिशय आनन्द होता था कि—अध्यात्मतीर्थप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवने अंतरमें साधना-तीर्थ तो दिखाया और साथ साथ बाह्य तीर्थ भी दिखाये।

'अहा! लोकोत्तर पुण्यके स्वामी बलभद्र जैसे शलाकापुरुष मुनिदशा अंगीकार करके जब अंतरमे आत्माकी साधना करके केवलज्ञान प्राप्त करते होंगे, वह अवसर कैसा होगा?' इस तरह अनेक प्रकारके भक्तिभावसे भीगे हृदयोद्गारोंके द्वारा गुरुदेव यात्राको बहुत उल्लासमय बना देते थे। गुरुदेवका उल्लास देखकर भक्तजन अत्यंत आनंदित होते थे।

गजपंथाकी यात्रा पूरी करके गुरुदेवकी 'कल्याणवर्षिनी' (मोटरकार) के पीछे पीछे संघकी ४० जितनी मोटरगाडियाँ और ९ बसोंकी पंक्तिने 'मांगीतुंगी' सिद्धक्षेत्रकी ओर प्रस्थान किया। 'मांगी-तुंगी'से आठवें बलभद्र श्री रामचंद्रजी, सुग्रीव, हनुमान, सुडील, गव-गवाख्य, नील-महानील आदि ९९ क्रोड मुनिवर मुक्त हुए हैं। पहाडकी चढाई कठिन होनेपर भी उसकी भव्यता इतनी मनोहर है कि चढ़नेकी थकान हम भूल जाते हैं। जिस तरह कि साधक संत स्वरूपानुभूतिमें विकल्पकी सभी थकान भूल जाते हैं।

रामचंद्रजी आदि क्रोडों मुनिवरोंके इस पवित्र सिद्धिधाममें पहाडके ऊपर श्री चन्द्रप्रभभगवानका मंदिर है उसमे वीतरागभाववाही उपशान्त मूर्तिके दर्शन होते ही गुरुदेवने क्षणभर भक्तिभावमें चकित होकर, कहा: 'अहा! यहाँ तो ऐसा लगता है कि मानों साक्षात् सिद्ध भगवान ऊपरसे नीचे उतरे हों। मानो सिद्धभगवान सामने ही बिराजते हैं और हम उनका ध्यान करनेके लिये बैठ जाँय। -ऐसी अनुभूति होती है। यहाँसे जो क्रोडों मुनिवर मुक्त हुए हैं, वे यहाँ हमारे ऊपर ही बिराजते हैं, देखा! ऐसा कहकर गुरुदेवने ऊपर दृष्टि करके, सिद्धालयकी ओर हाथ

उठाकर सबको दिखाया। गुरुदेवकी ऐसी प्रमोदयुक्त अमृतवाणी सुनकर भक्त-यात्रियोंको बहुत हर्ष हुआ और सबने पूज्य गुरुदेव तथा पूज्य भगवती-माताके साथ, दर्शन-पूजन किया। इसके बाद गुरुदेवने वैराग्यरसभरी भक्ति सुनाई।

मांगीतुंगीकी यात्रा करके गुरुदेवकी प्रभावनादुंदुभि बजाता हुआ यात्रासंघ, जिस प्रकार समवसरणविहारमें श्री तीर्थंकरभगवानके साथ साथ चतुर्विध संघ चलता है तदनुसार पूज्य गुरुदेवके साथ धूलिया, सोनगिर, सेंधवा होकर बड़वानी सिद्धक्षेत्र पहुँचा। सिद्धक्षेत्रके सतत दर्शनसे सबको अतीव आनंद हो रहा था। सब यात्री सांसारिक समस्त वातावरण भूलकर, 'बस हम तो सिद्धिधामके यात्री हैं.....और हमें, गुरुदेवके प्रभावनायोगसे उनके पावन चरणोंका अनुसरण करके सिद्धिधाममें जाना है—ऐसे प्रसन्नभाव घूँट रहे थे। बड़वानीके सिद्धक्षेत्रका नाम 'चूलगिरि' है। वहांसे रावणपुत्र श्री इन्द्रजीत तथा कुंभकर्ण और साढ़े तीन क्रोड मुनिवर मुक्त हुए हैं। पहाड़के पत्थरसे उत्कीर्ण आदिनाथ भगवानकी बावनगज (८४ फूट) विशाल खड्गासन भव्य प्रतिमा है। मंदिरके पीछे एक छोटीसी देरीमें आचार्यदेव श्री कुंदकुंदभगवानकी पूर्वाभिमुख वन्दनामुद्रायुक्त भव्य दिगंबर प्रतिमा है। इस भव्य सिद्धक्षेत्रकी पावनकारी यात्रा करके सब पावागिरि–ऊन सिद्धक्षेत्रकी यात्राके लिये गये। चेलना नदीके तटपर स्थित इस पावागिरिके शिखर परसे सुवर्णभद्रादि चार मुनिवर मुक्त हुए हैं। यहाँ एक मंदिरके भुगर्भतलमें चक्रवर्ती, कामदेव और तीर्थंकर—इन तीनों पदके धारक श्री शांतिनाथ–कुंथुनाथ–अरनाथ भगवानकी विशाल, भव्य, खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। चक्रवर्तीकी विशाल सम्पत्तिका त्याग करके परमात्मदशाको प्राप्त इन भगवन्तोंकी वीतरागभाववाही भव्य मुद्रा देखकर पूज्य गुरुदेव प्रसन्नतासे बोल उठेः—'अहा! हम तो यह सब इस जीवनमें पहली बार ही देखते हैं। पूज्य गुरुदेवकी अनहद कृपाके फलस्वरूप ऐसे भगवन्तोंका

दर्शन होनेसे प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री आदि भक्त भी बहुत प्रसन्न होते थे। इस पावन तीर्थका दर्शन-पूजन-भक्ति करके संघ पूज्य गुरुदेवके साथ खण्डवा शहरमें आया।

खण्डवा शहरके अनेक महानुभाव सोनगढ़से परिचित थे। पूरा शहर पूज्य गुरुदेवके भव्य स्वागतके लिये आतुर हो रहा था। मार्गमें जगह-जगह सुन्दर दरवाजे, भव्य कमानें, ध्वज-तोरणोंसे शहरकी शोभा 'अयोध्यानगरी' जैसी लगती थी। स्वागतोत्सवके समय हर चौराहे पर चौकी—पाटले बिछाकर ऊपर अक्षतके स्वस्तिक बनाकर, श्रीफलयुक्त कलश सिर पर रखकर स्वागत किया जाता था, हजारोंकी मानवमेदनी इकट्ठी हुई थी, भारी भीड़ और गीतध्वनिसे गुँजित नगरीमें आनंदोत्साहकी ऐसी लहर फैल गयी थी कि मानों वहाँ श्री तीर्थंकर भगवानका समवसरण आया हो ऐसा लगता था! सत्यतत्त्वप्रकाशिनी पूज्य गुरुदेवकी सातिशय प्रवचनवाणीसे यहाँ जो जिनशासनकी प्रभावना हुई, उसका तो हम क्या वर्णन करें? हजारों जिज्ञासुओंके हृदय प्रभावित होकर नाच उठते थे।

खंडवासे हम सनावद गये। वहाँसे सिद्धवरकूटकी यात्राके लिये गये। दो चक्रवर्ती (सनतकुमार और मघवा), दस कामदेव और साढ़े तीन क्रोड मुनिवर जहाँसे मुक्त हुए हैं ऐसे इस भव्य सिद्धक्षेत्रमें पहुँचनेके लिये पूज्य गुरुदेवके साथ किये गये नौका-विहारकी आनंददायी पुण्य-स्मृतियाँ आज भी भक्तोंको प्रफुल्लित करती हैं।

दर्शन-पूजन-भक्तिसह तीर्थवन्दनके बादमें पूज्य गुरुदेवने अपने प्रवचनमें कहा:-(यात्रासंघके उपरान्त आसपासके गाँवोंसे सैकड़ों जैन पूज्य गुरुदेवके दर्शन और वाणीश्रवणका लाभ लेने के लिये यहाँ आये थे) 'देखो, इस सिद्धक्षेत्रका नाम 'सिद्धवरकूट' है। दो चक्रवर्ती, दस कामदेव और साढ़े तीन क्रोड मुनिवर यहाँसे मुक्त हुए हैं, वे यहाँसे ऊपर लोकाग्र बिराजमान हैं।'—ऐसा कहकर मानों अपने एवं श्रोताओंके हृदयोंमें

सिद्धभगवन्तोंको उतार रहे हों इस प्रकार 'वंदित्तु सव्व सिद्धे' कहकर उन्हें अत्यंत भावसे नमस्कार किया।

श्री सिद्धवरकूटकी अत्यंत भावोल्लाससे प्रभावनापूर्ण मंगल यात्रा करके पूज्य गुरुदेव बड़वाह होकर इन्दौर पधारे। आह! सर सेठश्री हुकमचंदजी हर्षोल्लासभरी भावनासे एवं उनके आदेशसे किये गये असाधारण स्वागतसमारोहकी भव्यताका क्या कहना? इन्दौरके दस हजारसे भी अधिक संख्यावाले जैन समाजने उत्साहके साथ पूज्य गुरुदेवके स्वागतमें भाग लिया था, उसमें रंगबिरंगी मालव वेशभूषामें सजधजकर हजारों महिलाएँ भी आयीं थीं। इन्दौरके राजासदृश विपुल संपत्तिके स्वामी श्री हुकमचंदजी सेठने हाथी, सुवर्णांकित मखमलकी मूल्यवान झूलें, भव्य अश्व जोडी वग्घियाँ, मोटरकारे वगैरह अपना सम्पूर्ण साज स्वागतकी शोभाके लिये निकालनेका आदेश दिया था। ध्वज-तोरण, स्वागत-सूत्र, भव्य सुशोभित प्रवेशद्वार और कमानोंसे इन्दौर नगरी इन्द्रपुरीके समान शोभती थीं। स्थल स्थल पर ध्वनिवर्धकयंत्रोंसे आनंदभेरी सुनाई देती कि 'सौराष्ट्रके महान आध्यात्मिक सन्त श्री कानजीस्वामी हमारी नगरीमें ससंघ पधारे हैं;.....आइये, स्वागत कीजिये!' अहा! मानों समवसरणके साथ श्री तीर्थंकरदेव पधार रहे हों ऐसा आनंदमय अद्भुत वातावरण बन गया था!

गुरुदेव 'कल्याणवर्षिणी' से बाहर आये तब सबसे पहले राज्यकी बेन्डपार्टीने सलामीके मधुर स्वरोंसे और सेठके सुवर्णालंकारोंसे सुशोभित गजेन्द्रने पुष्पहारसे पूज्य गुरुदेवका स्वागत किया। इन्दौर दिगंबर जैन समाजके अनेक अग्रगण्य प्रतिष्ठित महानुभाव पूज्य गुरुदेवके साथ साथ नगे पाँव स्वागतयात्रामें साथ चल रहे थे। स्वागतयात्राके अनेकविध भव्य साजके पीछे सबसे आखिरमें वाहनोंकी लम्बी कतार थी। अंत तक

दृष्टि न पहुँचे इतनी लम्बी स्वागतयात्रा थी। स्वागतयात्रासे इंदौर नगरीके राजमार्ग मानवसमूहसे उभरा रहे थे। मकानोंकी अट्टालिकाओंमें, झरोखोंमें भी दर्शकोंकी भारी भीड़ दिखाई पड़ती थी। जैन परिवार (कहीं कहीं अजैन परिवार भी) स्थान स्थान पर चौकीके ऊपर अक्षतका स्वस्तिक बनाकर, उसके ऊपर श्रीफलयुक्त कलश रखकर, अक्षत–पुष्पकी वृष्टि करके गुरुदेवका भावसे बधाई–स्वागत कर रहे थे। भिन्न भिन्न बाजारोंमें व्यापारी–संगठनोंने भी अपने बाजार ध्वज–पताकासे, कमानों एवं स्वागतसूत्रोंसे सुसज्जित करके इस स्वागतयात्राकी भव्यतामें अपना भावपूर्ण सहयोग दिया था। अहो! कैसी शोभा थी, उस प्रभावशाली भव्य स्वागतकी! जिस प्रकार देव-ऋद्धि देखकर किसीको सम्यक्त्व हो जाय ऐसा यह समृद्ध भव्य स्वागत था। इस मनोरम स्वागतको और गुरुदेवके प्रभावक व्यक्तित्वको देखकर नगरके बहुतसे लोग प्रभावित हुए थे।

वह रमणीय एवं प्रभावनापूर्ण स्वागतयात्रा नगरमें घूमती श्री हुकमचंदजी सेठ द्वारा निर्मित काँचकी कलाकारीवाले भव्य जिनालयके सामने एक विशाल सभाके रूपमें बदल गई। वहाँ पन्द्रह हजार जनोंकी विशाल सभामें मंगल-प्रवचन करते हुए पूज्य गुरुदेवने कहा: ‘अरिहंत, सिद्ध, साधु और वीतरागसर्वज्ञप्ररूपित धर्म मंगलस्वरूप है। आत्माका जैसा स्वभाव श्री सर्वज्ञदेवने कहा है, उसकी श्रद्धा उसका ज्ञान और उसमें लीनता वह मंगल है। सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्ररूप शुद्ध रत्नत्रय जगतमें उत्कृष्ट मंगल है। सम्यग्दर्शन होते ही सिद्धभगवान जैसे अपूर्व आनंदका अंश प्राप्त होता है; इसलिये वह सम्यग्दर्शन भी महा मंगल है।....’ गुरुदेवकी मधुर मंगलवाणी जीवनमें प्रथम बार सुनकर जनताने बहुत प्रमोद व्यक्त किया।

इन्दौरके उदासीन आश्रमके ब्रह्मचारी एवं वहाँके प्रसिद्ध विद्वान, कई राज्यमंत्री, न्यायाधीश, वकील, डॉक्टर आदि प्रबुद्ध लोग प्रवचन-श्रवणमें अग्रभाग लेते थे।

इन्दौरका भव्य स्वागत तथा उसके बादके यात्रा प्रवासमें बीचमें आते छोटे-बडे अनेक शहरोंमें भी जगह जगह पूज्य गुरुदेवके प्रभावक व्यक्तित्वके अनुरूप और एक एकसे बढ़कर स्वयंस्फुरित भावपूर्ण भव्य स्वागत हुए। इस तरहके अकल्प्य ऐसे मनोरम स्वागतसमारोह देखकर, गुरुदेवके ऐसे सातिशय पुण्यप्रभावसे प्रसन्न होकर, सर्व यात्रीगण साश्चर्य आनंदका अनुभव करते थे। सेठश्री हुकमचंदजीका स्वास्थ्य ठीक न था, वे शय्यासीन स्थितिमें होने पर भी गुरुदेवके प्रवचन सुननेके लिये आते थे। सब अंतरसे रसपूर्वक प्रवचन सुनते। गुरुदेवकी प्रवचनसभा एक भव्य धर्मसभा जैसी शोभती थी—मानों कि धर्मका कोई महान कल्याणकारी महोत्सव हो रहा हो ऐसा लगता था। सुबह-शाम वहाँ जिज्ञासुओंकी भीड़ उमडती। गुरुदेवके प्रवचन भी अध्यात्मरससे पूर्ण अद्भुत थे। एक एक घण्टे तक परमशान्तरसका अमृतझरना धीरे धीरे बहता रहता था। श्रोतागण शान्तरसमें डुबकी लगाकर मन्त्रमुग्धकी तरह डोल उठते। मोक्षमार्गका प्रारंभ निज शुद्धात्मानुभूतियुक्त निश्चय सम्यग्दर्शनसे ही होता है—यह जिनेन्द्र कथित परम रहस्य गुरुदेव विशिष्ट महत्त्वसे बारबार स्पष्टरूपसे समझाते थे। तदुपरांत उपादान निमित्तमें अर्थात् स्व-परहेतुक पर्यायमें उपादानकी स्वतंत्रता निश्चय-व्यवहारका यथार्थ स्वरूप तथा उन दोनोंका सुमेल बताकर निश्चयकी मुख्यता, सर्वज्ञका निर्णय करनेमें स्व सन्मुखताका पुरुषार्थ आदि आगम-कथित महत्त्वके विषयोंको सरल भाषामें खूब खूब स्पष्टता कर समझाते थे। गुरुदेवकी हृदयस्पर्शी प्रवचनवाणीसे त्यागीगण और विद्वज्जन बहुत प्रभावित होते थे और सरल भाषामें अध्यात्मके गहनभाव स्पष्ट करनेवाली गुरुदेवकी शैलीकी भूरिभूरि प्रशंसा करते थे। उनमें सोलापुरके वयोवृद्ध पंडित श्री वंसीधरजी तो गुरुदेवके दर्शन और प्रवचनश्रवणसे भावविभोर होकर कहने लगे : अहा ! स्वामीजी ! निश्चय-व्यवहारका यथार्थ रहस्य आपने ही खोला है। आचार्य कुन्दकुन्द-

स्वामीकथित 'भूतार्थस्वभावके आश्रयसे ही सम्यग्दर्शन होनेकी' महत्त्वपूर्ण बात भी आपने जो खोली है वह सचमुच अपूर्व एवं अद्भुत है। निश्चय-व्यवहारका सुमेल, समयसारकी बारहवीं गाथाके आधारसे, जो आपने स्पष्ट किया वह आजतक किसीने नहीं समझाया।'

रात्रिके समय पूज्य गुरुदेवके निवासस्थान नसियाजीमें एक विशाल मंडपमे तत्त्वचर्चा होती थी। तत्त्वचर्चामे भी छह-सात हजार जिज्ञासु भाई-बहन अत्यंत रसपूर्वक भाग लेते थे। तत्त्वचर्चामें गुरुदेव अनेकविध प्रश्नोंकी चारों ओरसे स्पष्टता करते, बादमें सादी भाषामे विस्तारसे समाधान करते। तत्त्वचर्चामे इतनी अधिक संख्यामे और इतनी जिज्ञासासे लोगोंने लाभ लिया यह इन्दौरके जैन इतिहासमे अभूतपूर्व प्रसंग था। 'कानजीस्वामी किसीके साथ तत्त्वचर्चा नही करते और किसीके प्रश्नका उत्तर नही देते'—ऐसा जिन्होंने सुना था, वे यहाँ तत्त्वचर्चाका ऐसा सरस वातावरण देखकर आश्चर्य अनुभवते थे और पहले सुनी हुई बातें कितनी भ्रामक थीं, उसका उनको स्पष्ट ख्याल आ गया था। अहो! पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा वीतराग जैनधर्मकी जो अद्भुत प्रभावना हुई, उसका क्या वर्णन हो? विस्तृत वर्णन लिखनेमें एक बडा ग्रंथ भर सकता है।

जिस प्रकार कोई शासनप्रभावक महान आचार्यका चतुर्विध संघके साथ गाँव गाँव विहार हो रहा हो, वैसे अध्यात्मशासनके महान प्रभावक, आचार्यकल्प पूज्य गुरुदेवश्रीका मंगल यात्रा-प्रवास मुमुक्षुसंघ सहित सम्मेद-शिखरजीकी ओर आगे बढ़ रहा था। मार्गमे छोटे-बड़े अनेक गाँवोंमें पूज्य गुरुदेवके भव्य स्वागत होते थे। हजारों जिज्ञासु श्रोता प्रवचनोंका लाभ लेते थे। प्रायः प्रत्येक गाँवमें पूज्य गुरुदेवको अभिनंदनपत्र समर्पित करके उनका बहुमान किया जाता था। अनेक स्थानोंमें, दिगंबर जैन-समाजके अति आग्रहसे गाँवमें जानेके लिये समयका अभाव होनेसे, रास्ते

पर तैयार किये गये मंडपमें बैठकर छोटासा मंगल प्रवचन करना पड़ता। सूर्योदयके बाद सुबहका समय हो तो वहांका समाज गुरुदेवको दुग्धपान और यात्रसंघको चाय-नास्ता कराकर ही आगे बढ़नेका अति आग्रह करता। गुरुदेवकी अध्यात्मवाणी सुनकर लोग बहुत ही प्रमुदित और प्रभावित होते थे। जहाँ दिगंबरका नामोनिशान नहीं था ऐसे सौराष्ट्र प्रदेशमें दिगंबर जैनधर्मका महान उद्योत करनेवाले महात्मा श्री कानजीस्वामी महत् भाग्यसे हमारी नगरीमें पधारे हैं। उनका जितना शक्य हो इतना अधिकसे अधिक बहुमान करके, जीवनका अभूतपूर्व लाभ ले लें—इस प्रकारका आनंदोल्लास प्रत्येक गाँवके दिगंबर जनसमाजमें मुमुक्षुयात्रियोको देखने मिलता था, इस कारण उनको भी, गुरुदेवका सातिशय प्रभावनाउदय प्रत्यक्ष देखकर, बहुत ही आनंद होता था। कई स्थानों पर 'कल्याणवर्षिणी'को रोकनेके लिये लोग भक्तिभावसे रास्ता रोककर खड़े हो जाते थे, इस कारण पूज्य गुरुदेवको समयका अभाव होनेपर भी, उनकी तीव्रतम भावनाके वश होकर पाव घंटा या आधा घण्टा मांगलिक-प्रवचनके लिये देना पड़ता था; परिणामतः गन्तव्य स्थान पर पहुँचनेमें विलंब हो जाता था। विलंब होनेसे, जिस प्रकार भरतचक्रवर्ती आहारदानके लिये मुनिराजकी प्रतीक्षा करते थे, वैसे, सामनेवाले गाँवका समाज भी गुरुदेवके स्वागतहेतु, आतुरतासे, मार्ग पर दूर दूर तक झांककर प्रतीक्षा करता रहता। दूरसे जब 'कल्याण-वर्षिणी'के हॉर्नके मधुर सुर सुनाई देते, तब लोग आनंदमें आ जाते और भव्य स्वागतयात्राके आयोजनमें लग जाते थे।

इन्दौरके बाद क्रमशः उज्जैन, मक्सी पार्श्वनाथ, सारंगपुर, ब्यावर, राघवगढ, सोंनकच्छ, भोपाल, कुराना, नरसिंहगढ, गुना, बजरंगगढ, बदरवास, कोलारस, सेसई, शिवपुरी, झांसी, बबीना, तालबहेट, ललितपुर, देवगढ, थुबोनजी, चंदेरी, (फिरसे ललितपुर होकर) सोनागिरि सिद्धक्षेत्रमें गुरुदेव संघसहित पधारे।

सोनागिरि सिद्धक्षेत्रसे नंग और अनंग इन दोनों मुनिवरोंने दूसरे साढ़े पाँच क्रोड़ मुनिवरोंके साथ सिद्धपद पाया है। इसके अतिरिक्त यहाँ श्री चन्द्रप्रभ तीर्थंकरका समवसरणसह, अनेक बार शुभागमन हुआ है। इस सिद्धक्षेत्रका पहाड धवल जिनमंदिरोंकी मनोहारी शोभाके कारण अत्यंत आकर्षक लगता है।

सोनागिरिकी तलहटीमे बडा भव्य प्रवेशद्वार है। उसमें प्रवेश करते ही पहाड़की चढाई और क्रमपूर्वक मंदिरोंकी शुरुआत होती है। क्रमशः प्रत्येक मंदिरमें दर्शन और अर्घ्यार्चन करते करते पहाड़का आरोहण अपने आप हो गया। इस भव्य सिद्धक्षेत्रमे मुख्य मंदिर १२ फूट ऊँचा और ११०० वर्ष प्राचीन, खड्गासनस्थ श्री चन्द्रप्रभ स्वामीका है। ऊपरके विशाल चौकमें १० फूटके खड्गासनस्थ श्री बाहुबलि भगवानकी अत्यंत भव्य प्रतिमाजी हैं। बाहुबलीजीके दर्शन, पूजन, अभिषेकके बाद पूज्य गुरुदेवने निम्न भक्तिगीत बहुत भावसे गाया और भक्तोंने आनंदसे झेला—

धन्य दिवस धन्य आजका, धन्य धन्य घड़ी तेह,
धन्य समय प्रभु माहरा, दरिशन दीठा आज;
मन रे लगा मेरे नाथ में ..

बादमें नंग–अनंग मुनिवरों के चरणोंपर अर्घ्य चढाकर, नीचे उतरकर दुपहरके समय सिद्धक्षेत्रके प्रवेशद्वारके बीच रक्खे गये आसन पर बैठकर, सहस्राधिक श्रोताजनको प्रवचनमें, पासमें स्थित सिद्धक्षेत्रकी ओर बारबार हाथ फैलाकर, सिद्धिपदका मार्ग समझाया था। साथमें यात्राका मर्म दिखाते हुए कहा था कि — 'लाखों और क्रोड़ों जीव मुक्त हुऐ उनका तो यह बाह्य क्षेत्र है, परंतु वे अंतरके कौनसे भावसे मुक्त हुए, यह यथार्थ समझकर, उस भावका अंश अपनेमे प्रकट करना, वह भगवानके तीर्थकी अर्थात रत्नत्रयकी सच्ची यात्रा है।' मंगल तीर्थयात्राके सिलसिलेमें, सिद्धक्षेत्रमें गुरुदेवके ऐसे निश्चय–व्यवहार तीर्थके

सुमेलयुक्त, भावपूर्ण प्रवचन सुनकर आत्मार्थी जीवोंके चैतन्यके प्रदेश-प्रदेशमें प्रमोदभाव उमड़ता और उनके भक्तिपूर्ण हृदयोंसे ऐसे हर्षोद्‌गार निकलते कि: जयवंत हों गुरुदेव और उनके साथ की गई यह आत्म-वृद्धिकरा मंगल तीर्थयात्रा !

सोनागिरिकी यात्रा करके पूज्य गुरुदेव संघसहित ग्वालियर–लश्कर, धोलपुर होकर आगरा शहरमें पधारे। यहाँ पूज्य गुरुदेवका निवासस्थान श्री नेमिचंदभाई पाटनीजीके घर था। श्री नेमिचंदभाई 'श्री कानजी स्वामी दि. जैन यात्रासंघ' के मंत्री थे। उनके श्रमसाध्य, कुशल संचालनसे यात्राके सभी कार्यक्रम व्यवस्थित रूपमें सम्पन्न होते थे। उनके नगरमें पूज्य गुरुदेवके ससंघ आगमनसे वे बहुत ही प्रसन्न हुए थे। उन्होंने नगरमें अनेक स्थान पर गुरुदेवके प्रवचनोंके और जिनेन्द्रभक्तिके आयोजन किये थे। वहाँ पूज्य गुरुदेवके अध्यात्म-प्रवचन द्वारा अच्छी धर्मप्रभावना हुई;... और संघके साथ शहरके सभी जिन–मंदिरोंके दर्शन हुए। वहाँसे शौरीपुर (बटेश्वर) और मथुरा सिद्धक्षेत्रकी यात्रा करके फिरोजाबाद पधारे। यमुना नदीके तट पर शौरीपुर श्री नेमिनाथ भगवान का जन्मस्थल है और चौरासी–मथुरा इस भरतक्षेत्रके अंतिम कामदेव और अंतिम केवली श्री जंबुस्वामीका सिद्धक्षेत्र है। यहाँसे महामुनि श्री विद्युत (पहले जो चोर थे वह) आदि ५०० मुनिवर भी मुक्त हुए हैं। मुनिसुव्रत भगवानके तीर्थमें राजा शत्रुघ्न (रामचंद्रजीके भाई) यहीं राज्य करते थे, तब महामारीका भयंकर उपद्रव हुआ था। उस वक्त श्री मनु, स्वरमनु वगैरह सात चारणऋद्धिधारक मुनिवर (सप्तर्षि भगवान, जो कि सगे भाई थे) मथुरा पधारे और उनकी ऋद्धिके पुनीत प्रतापसे महामारीका उपद्रव बिल्कुल शान्त हो गया। ऐसे सिद्धक्षेत्र और अतिशय क्षेत्रके दर्शन–पूजन–भक्ति करके समागत अनेक विद्वानोंके समक्ष पूज्य गुरुदेवश्रीने अध्यात्मरसप्रधान भावग्राही प्रभावक प्रवचन दिया। प्रवचनके

बाद पं. बलभद्रजीने अपने स्वागत-प्रवचनमें प्रमुदित हृदयसे कहाः—जैसे भगवान नेमिनाथने उत्तरसे पश्चिममें जाकर (शौरीपुरसे सौराष्ट्रमें आकर) धर्मका सन्देश सुनाया था, वैसे आज इतने वर्षोंके बाद वही सन्देश स्वामीजीके द्वारा वहाँसे हमको यहाँ वापस मिल रहा है, यह हमारा बड़ा भाग्य है। प्रवचनमें हमने देखा कि स्वामीजीकी दृष्टि अन्तरकी है। हमने कभी इस पद्धतिसे स्वाध्याय-मनन नहीं किया। यह जो नवीन दृष्टिकोण प्राप्त हुआ है उससे स्वामीजीके आभारी हैं।—इस प्रकार पंडितजीने स्वागत-प्रवचन बहुत भावसे किया था।

वहाँसे पुनः आगरा होकर फिरोजाबाद पधारे। वहाँके सेठ श्री छदामीलालजी सोनगढ आये थे और पूज्य गुरुदेवकी अध्यात्मवाणीसे बहुत ही प्रभावित हुये थे। उन्होंने वहाँके विशाल समाजको साथमें रखकर, पूज्य गुरुदेव तथा यात्रासंघका हार्दिक भावनासे बहुत ही उत्साह एवं प्रेमपूर्वक स्वागत किया। गुरुदेव उनके नगरमें और जैनबागमें पधारे इस कारण उनका हृदय हर्षानंदसे फूला नहीं समाता था। यह देखकर यात्रीभक्तोंको ऐसा आश्चर्य अनुभव हुआ कि उनके दिलमें गुरुदेवके प्रति कितनी गहरी भावना है। वे अपने जैनबागमें बीस लाख रुपयोंके खर्चसे नवनिर्मित जिनमंदिरके सामने एक भव्य मानस्तंभ बना रहे थे, उसको सोनगढके मानस्तंभ जैसा बनानेके लिये अपने इन्जिनियरों और कारीगरोंको देखनेके लिये खास सोनगढ़ भेजा था। उसकी पीठिकाकी पश्चिमदिशाके चित्रमें उन्होंने पूज्य गुरुदेवकी प्रवचन-सभाका और वहाँ नमस्कार-मुद्रामें आगे बैठे हुए अपना दृश्य अंकित करवाया है।—उस भव्य दृश्यके द्वारा उन्होंने गुरुदेवके प्रति अपना खास भक्तिभाव प्रकट किया है। जिसमें पं. राजेन्द्रकुमार (मथुरा) और सोनगढ ट्रस्टके प्रमुख श्री रामजीभाई दोशी पूज्य गुरुदेवके दोनों ओर बड़ा धर्मध्वज लेकर चलते थे उस जिनशासन-प्रभावकारी भव्य स्वागतयात्रा और गुरुदेवके मंगल-प्रवचनके बाद श्री

सेठ छदामीलालजीने 'श्री कानजीस्वामी दि० जैन सरस्वतीभवन'का उद्घाटन पूज्य गुरुदेवके पुनीत करकमलसे करवाया था। जैनबागमें हुए प्रवचनोंसे वहाँके समग्र समाजको पूज्य गुरुदेवके प्रति अत्यधिक अहोभाव उत्पन्न हुआ था। इसलिये पी. डी. जैन इन्टर कालेजके व्यवस्थापकोंके मनमें प्रवचनके लिये आमंत्रण देनेकी भावना हुई। कालेजके प्रोफेसरो एवं विद्यार्थी गुरुदेवके प्रवचनसे बहुत ही प्रभावित हुये थे और उनके द्वारा समर्पित किए गये अभिनंदनपत्रमें प्रमोदसे लिखा था कि : आपके शोध-पूर्ण एवं ठोस अध्ययन तथा अनुभवने अध्यात्मजगतमें एक युगान्तर ही उपस्थित कर दिया है। भारतवर्ष सहस्रों वर्षोंसे सन्तभूमि है, परन्तु आत्मतत्त्वकी इतनी मौलिक जगत्‌मोहनी एवं रसवती व्याख्या, जिसका निर्विरोधरूपसे सर्वत्र स्वागत हुआ हो अद्यावधि कम ही हुई है।

जैनबागमें तैयार किये गये विशाल मंडपमें अन्तिम प्रवचनके पहले दुपहरमें 'अभिनंदन समारोह' में अनेक प्रतिष्ठित व्यक्तियोंने भावपूर्ण प्रशस्ति वचनोंसे पूज्य गुरुदेवको 'अभिनंदन-अंजलि' दी थी पं. श्री राजेन्द्रकुमारजीने अपनी अभिनंदनांजलिमें कहा था कि पूज्य कानजी-स्वामीके आगमनसे हमारी नगरीको हम धन्य समझते हैं! आज हमारे लिये उल्लास और आनन्दका प्रसंग है। स्वामीजीके आध्यात्मिक सिद्धान्त मात्र हमारे लिये ही नहीं अपितु हमारे राष्ट्र और विश्वके लिये बडी उपयोगी चीज है। आज ऐसे महापुरुषके समागमसे हम सब धन्य बने हैं। .. जब आप दिल्ली पधारें तब फिर यहाँका प्रोग्राम ज्यादा रखनेकी हम सब प्रार्थना करते हैं। यह सुनकर हजारों लोगोंकी पूरी सभाने हर्षनादपूर्वक उसमें अपनी सम्मति दी थी उसके बाद 'श्री महावीर जयन्ती-सभा'की ओरसे पूज्य गुरुदेवको अभिनन्दनपत्र समर्पित किया गया था।

फिरोजाबादसे (शिकोहाबाद होकर) मैनपुरी, कानपुर, लखनौ,

रत्नपुरी (धर्मनाथ भगवानका जन्मधाम) वगैरह गाँवोंमें धर्म प्रभावना करते करते पूज्य गुरुदेव संघ सहित अयोध्या पधारे। इन्द्रोंने यहाँ आकर क्रमशः अनन्त तीर्थंकरोंके जन्मकल्याणक मनाये हैं। जिस प्रकार सम्मेदशिखर तीर्थंकरोंका शाश्वत निर्वाणधाम है वैसे ही यह अयोध्यानगरी तीर्थंकरोंका शाश्वत जन्मधाम है। सम्मेदशिखरकी तरह अयोध्यापुरीके नीचे भी शाश्वत स्वस्तिक है।

इस शाश्वत तीर्थमें आकर खूब उत्साहसे पूजा–भक्ति की। पूज्य गुरुदेव और साथमें आये हुए भक्तोंकी सातिशय तीर्थभक्ति देखकर आसपाससे आये हुए दि. जैन बहुत प्रभावित हुए थे। मंगल यात्राके बाद धर्मशालामें पूज्य गुरुदेवने अतिशय भक्ति और वैराग्यरस टपकता प्रवचन किया था। उसमें इन्द्रोंने यहाँ भगवानके जन्मकल्याणक मनाये थे, उसका भक्तिभरा वर्णन किया; भरत चक्रवर्ती छह खण्ड जीतकर आता है तब चक्ररत्न बाहर रुक जाता है, भरत–बाहुबलीका युद्ध होता है, बाहुबली विरक्त होते हैं — ये सब घटनाएँ यहीं घटी थीं—ऐसा कहकर उसका वैराग्य रससे भरा चित्र अंकित किया था, तदुपरान्त रामचन्द्रजीके वनगमनके वैराग्यप्रसंगका ऐसा रोमांचित वर्णन किया था कि श्रोताओंकी आँखें सुनते सुनते आँसुओंसे भर गईं। राम-लक्ष्मण–सीता अयोध्या छोड़कर जब वनमें जाते हैं तब माताएँ रुदन करती हैं, भरत रोता है, अनेक राजा रोते हैं, प्रजा रोती है। इस करुण कहानीका उल्लेख करके गुरुदेवने अत्यंत वैराग्यसे कहा : अहा ' जब रामचंद्रजी इस सरयू नदीको पार करके अयोध्या छोड गये तब अयोध्याके हजारों, लाखों प्रजाजन आँसुभरी आँखोंसे प्रार्थना करते रहे, परंतु रामचन्द्रजी तो इन सबको वहीं छोड़कर चले गये। बाहरसे देखनेवाले लोगोंको ऐसा लगे कि, ' अरे! यह क्या हो गया? कहाँ तो अयोध्याका राजभोग और कहाँ यह वनगमन!!! किन्तु रामचन्द्रजी तो धर्मात्मा थे, वे जानते थे कि हमारा प्रेम राज्यमें

भी नहीं था और न वनमें भी है। हमारा प्रेम तो सदा हमारे ज्ञानस्वभावमें ही है।—इस प्रकार गुरुदेव करुणरससे वैराग्यरसमें और वैराग्यभावसे निकालकर श्रोताओंको अध्यात्मरसमें ले जाते थे। उस समय श्रोतागण मुग्ध बनकर जम जाता था। और जब तीर्थंकरके जन्मकल्याणकको याद करके गुरुदेव फिरसे भक्तिरसका प्रवाह बहाने लगते तब भक्तगण भक्तिरसमें डूब जाता था। इस प्रकार सरयूके तटपर पूज्य गुरुदेवके श्रीमुखसे प्रवाहित ज्ञान, वैराग्य और भक्तिकी त्रिवेणीमें आत्मार्थपूर्वक श्रवणस्नान करके यात्री पावन हुए थे। सचमुच, इस शाश्वत तीर्थकी यात्रा बहुत ही प्रभावनापूर्ण थी। गुरुदेवके साथ की गई इस मंगलयात्राके अनुपम लाभसे भक्तजन अत्यंत प्रसन्न होकर आनन्दका अनुभव करते थे।

अयोध्यापुरीसे प्रस्थान करके गुरुदेव संघसहित, विद्वानोंकी नगरी और सुपार्श्वनाथ एवं पार्श्वनाथका जन्मधाम काशीपुरी-बनारस पधारे। पं. कैलाशचंद्रजी, प्रो. फूलचंदजी, प्रो खुशालचदजी आदि दि. जैन आम्नाय के मूर्धन्य मनीषीगणके साथ बनारसके जैनसमाजने पूज्य गुरुदेव और यात्रियोंका भावपूर्ण स्वागत किया। स्वागत यात्रामें प्रखर सिद्धान्तशास्त्री और अनेक विद्वानोंके बीचमें गुरुराजका दृश्य अत्यंत प्रभावशाली था। इनमेंसे अनेक विद्वान विद्वत्परिषदके तीसरे अधिवेशनके अवसर पर सोनगढ आये थे। सोनगढ़के आध्यात्मिक वातावरणसे और पूज्य गुरुदेवद्वारा दिगंबर जैनधर्मकी जो असाधारण प्रभावना हो रही थी इससे वे सब अत्यंत प्रभावित हुए थे।

मंगल-प्रवचनमें 'जीवो चरित्तदंसणणाणट्ठिउ...' सूत्र पर बोलते हुए गुरुदेवने कहा: 'कारणजीव 'त्रिकालमंगल' है; उसके श्रद्धान-ज्ञान-चारित्रके द्वारा ही परमात्मदशा प्रगट हो, वह 'अपूर्व मंगल' है। इस तरह त्रिकालमंगलके आश्रयसे कार्यमंगल प्रकट होता है—कारण-

स्वभावके अवलंबनसे मोक्षमार्ग और मोक्षरूप कार्य होता है; ऐसा कार्य प्रकट करके स्वसमयरूपसे जीना वह मांगलिक है। इस प्रकार भगवानके जन्मधाममें गुरुदेवने मांगलिक किया था।

बनारसके पास चन्द्रप्रभ भगवानका जन्मधाम चन्द्रपुरी और श्रेयांसनाथ भगवानका जन्मधाम सिंहपुरी है। इस प्रकार यहाँ सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, श्रेयांसनाथ और पार्श्वनाथ–इन चार तीर्थंकरोंके जन्मधामकी पावन यात्राका गुरुदेवके साथ लाभ मिलनेसे भक्त बहुत प्रसन्न हुए थे। इस अवसर पर गुरुदेवके सन्मान निमित्तसे उनकी मंगलवर्धिनी छत्रछायामें 'स्याद्वाद–महाविद्यालय' का वार्षिक अधिवेशन रखा गया था। स्वागत-प्रवचनमे सिद्धान्ताचार्य पं. श्री कैलाशचंद्रजीने भावभीने शब्दोंमे कहा था कि 'पूज्य स्वामीजी सौराष्ट्रमेंसे इस तरफ पहलीबार पधार रहे हैं–यह जबसे सुना तबसे हमारे हर्षका पार नहीं था। और आज हमारे विद्यालयमें आपको विराजमान देखकर हमें और भी विशेष हर्ष हो रहा है। ...यह विद्यालय उत्तर भारतका एक आदर्श विद्यालय है; यहाँ अनेक धार्मिक एवं राजनैतिक नेता आ गये हैं, अबतक इन महाराजश्रीका आगमन नहीं हुआ था। आज इस विद्यालयके अधिवेशनके शुभावसर पर पधारनेसे हम विद्वद्गण एवं छात्रगणको बड़ी प्रसन्नता हो रही है। हम महाराजश्रीके साथ-साथ संघके सभी सदस्योंका भी हार्दिक स्वागत करते हैं।

उसके बाद पं. श्री फूलचन्दजी सिद्धान्तशास्त्रीने भी भावपूर्ण स्वागत करते हुए कहा :–हमारे बड़े सौभाग्य हैं कि आज एक बडे आध्यात्मिक सन्त हमारे विद्यालयमें पधारे हैं। जैसे यहाँ पर गंगाका प्रवाह बह रहा है वैसे ही अभी आप यहा पर स्वामीजीके मुखसे अध्यात्मगंगाका प्रवाह बहता हुआ देखेंगे। स्वामीजीने समयसार अपने जीवनमें उतार दिया है, यहाँके लोगोने स्वामीजीका प्रवचन सुना और आँखे खुल गई। लोग व्यामोहमें पड गये हैं कि यह क्या कहते हैं? आप सम्यक्त्वके ऊपर

ही भार देते हैं, क्योंकि वही तो दुर्लभ है। सम्यक्त्व न हो लेकिन भद्र हो—सम्यक्त्वकी बात आदरपूर्वक सुनता हो—तो वह भी सुमार्ग-शाली है। क्योंकि यथार्थ देशनालब्धि भी बहुत महत्त्वकी है। ऐसी देशनालब्धि जहाँ मिलती है वहाँ तक जो भाई बहिन पहुँचे हैं वे भी अभिनन्दनीय हैं॥

* गंगातट पर बही हुई अध्यात्मगंगा *

समयसारकी १९वीं गाथा पर प्रवचन करते हुए पूज्य गुरुदेवने कहा : 'जगतमें स्याद्वाद ही महाविद्या है। उस स्याद्वाद विद्यासे अर्थात् भावश्रुतज्ञानसे अंतरमें भूतार्थ स्वभावका आश्रय करना, वह मुक्तिका कारण है। भूतार्थ स्वभावका आश्रय करनेवाली विद्याके बिना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होते नहीं हैं; इसलिये शुद्ध स्वभावका आश्रय करना और रागादिका आश्रय छोड़ना वही स्याद्वाद विद्याका तात्पर्य है। इस प्रकार सम्यग्ज्ञानस्वरूप महास्याद्वादविद्याका मार्ग दिखाया। ऐसी स्याद्वाद विद्या ही मोक्षका कारण है। 'सा विद्या या विमुक्तये।' वह यही विद्या है।

अहा! गुरुदेवके अध्यात्मश्रुतगंगाके पुनीत प्रवाहके साथ, नीचे बहते गंगाजलके जड़ प्रवाहकी क्या तुलना हो सके? इस श्रुतगंगाका जल तो जीवोंके अज्ञानमलको धो डालता है; ऐसी शक्ति जड़मय जलप्रवाहमें कहाँसे आ सकती है? गंगाके किनारे पर 'स्याद्वाद महाविद्यालय'में गुरुदेवने स्याद्वादविद्याकी पावनकारी गंगा बहाई। लोग कहते हैं कि गंगास्नानसे जीवोंके पाप धुल जाते हैं,—यह बात तो ठीक है, लेकिन वह कौनसी गंगा? वह जड़गंगा नहीं परन्तु श्रुतगंगा है। गुरुदेवकी अद्भुत श्रुतगंगामें स्नान करके श्रोता पावन हो गये थे।

* जीवनतीर्थकी मंगल छायामें तीर्थयात्रा *

अहा! स्वानुभूतिविभूषित भेदज्ञानरूप जहाजके द्वारा भवसागरको

तिरनेवाले और मुमुक्षुजगतको तिरानेवाले ऐसे पूज्य गुरुदेवका जीवन स्वयं ही वास्तवमें साक्षात् तीर्थस्वरूप है। अहा! ऐसे जीवन्त तीर्थस्वरूप सन्तोंके साथ भारतके अनेक तीर्थोंकी यात्रा करनेमें भक्तोंको कोई अनन्य आनंद हो रहा था और इस कारण वे वारवार गुरुदेवका उपकार प्रकट करते थे।

* विद्वानोंकी नगरीमे प्रभावक *

दूसरे दिन सुबहमें पार्श्वप्रभुकी जन्मभूमिमें पार्श्वप्रभुके दर्शन, अभिषेक, पूजन तथा भक्ति करनेके बाद टाउन हॉलमें गुरुदेवका प्रवचन हुआ था। काशीनगरी पंड़ितोंकी नगरी है। जैन एवं जैनेतर विद्वत् समाज गुरुदेवका प्रवचन सुननेके लिये आया था। काशीमें गुरुदेवके प्रवचन अध्यात्मके सूक्ष्म भावोंसे भरे रहते थे; निश्चय-व्यवहार, उपादान-निमित्त आदि विषयक पर्याप्त स्पष्टीकरण आता था।

प्रवचनके बाद पं. कैलाशचन्द्रजीने कहा: आपके ससंघ आगमनसे हम सबको बहुत प्रसन्नता हुई है और यात्रासे वापस लौटते समय भी आप यहाँ दो-चार दिन ठहरनेका प्रोग्राम अवश्य रखें-ऐसी विनति है। इस प्रकारकी विनति करनेके बाद उन्होंने कहा कि:- महाराजजीके प्रवचनके बारेमें मैं कुछ कहना चाहता हूँ। अध्यात्मकी यह कथनी सुनते लोगोंको ऐसा होता है कि 'यह क्या कहते हैं! — यह तो एक आत्माकी ही बात करते हैं!' — लेकिन यही तो प्रयोजनकी चीज है, यह अपनी ही बात है, इस शरीरके भीतर रहे हुए आतमरामकी यह चर्चा है। सब जगह शरीर और शरीरके साथ संबंध रखनेवाली शिक्षा चलती है लेकिन शरीरमें स्थित आतमराम क्या चीज है इसकी शिक्षा नहीं चलती। जिसकी शिक्षा नहीं, जिसकी चर्चा नहीं वह बात महाराजजी अपने प्रवचनमें बतला रहे हैं। लेकिन मैं क्या कहूँ! — 'मोहि सुन सुन आवे हाँसी .. पानीमें मीन पियासी'।

शुद्धनयके अनुसार आत्माका वास्तविक स्वरूप आप दिखला रहे हैं. आचार्योंने भी यही दिखलाया है— "आत्मस्वभावं परभावभिन्न, आपूर्णमाद्यन्तविमुक्तमेकम् । विलीन संकल्पविकल्पजालं प्रकाशयन् शुद्धनयोऽभ्युदेति ॥" यह चीज अनुभवगम्य है। – इत्यादि प्रकारसे गुरुदेवकी प्रवचनशैली संबंधमें स्पष्टता करके उनकी सहृदय प्रशंसा की थी।

* सोनगढ तो अध्यात्मका गढ़ है *

बनारससे यात्रासंघ डालमियानगर आया! प्रसिद्ध दि. जैन उद्योगपति श्री शान्तिप्रसादजी साहूकी इस सीमेन्टकी उद्योगनगरीमें अनेक कारखाने चलते हैं। उन्होंने पूज्य गुरुदेवश्रीका तथा यात्रासंघका भावपूर्ण स्वागत किया था और सब व्यवस्था उल्लासपूर्वक की थी। जिनमंदिरमें भव्य विशाल महावीर भगवानकी पूजा एवं भक्ति बहुत आनंदसे हुई थी। रोटरी क्लबके विशाल कक्षमें पूज्य गुरुदेवका सन्मान समारोह और प्रवचन हुआ था। स्वागत-गीत के बाद वहाँके एक विद्वानने समारोहका प्रारंभ करते हुए कहा कि आज हमें आध्यात्मिक जगतके एक बडे सन्तका स्वागत करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इस विषमय युगमें आपने यह सिद्ध कर दिया है कि यदि सच्ची शान्ति चाहिये तो वह बाहरसे नहीं अपितु आत्मामेंसे ही मिलेगी। आज सोनगढ़से कौन अपरिचित है! सोनगढ तो अध्यात्मधाम बन गया है। बात आती है — किसीने पूछा: पं. मंडनमिश्रका घर कहाँ है? साश्चर्य पनिहारीने कहा: जहाँ तोता और मैना भी 'स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं' रट रहे हों वही पं. मंडनमिश्रका घर समझना। उसी प्रकार यदि मुझे पूछा जाय कि सोनगढ कहाँ आया? तो मैं कहूँगा कि जहाँ बालक भी प्रतिदिन अध्यात्मकी चर्चा करते हों वही श्री कानजीस्वामीका सोनगढ समझो। सोनगढ वास्तवमें सुवर्णका नहीं अपितु अध्यात्मका गढ बन गया है।

पं. अयोध्याप्रसादजी गोयलीने समाजकी ओरसे सन्मानपत्र अर्पण

करते हुए कहा: जब सूर्य और चन्द्र सहस्रों वर्षतक परिभ्रमण करके पृथ्वीके कोने-कोने में शोध करते हैं तब जाकर उनकी तपस्याके फलमें उन्हें किसी महान सन्तका दर्शन होता है; उसी प्रकार भारतवर्षमे आज हमें इन महान अध्यात्मसन्तका सुयोग प्राप्त हुआ है....! जिस विश्व-वंद्य विभूतिके दर्शनके लिये सेठजीके साथ हमें सोनगढ जाना था वह विभूति स्वयं आज हमारे प्रांगणमें विराजमान है यह हमारे सौभाग्य-का विषय है। उसके बाद सेठश्री शान्तिप्रसादजी साहू, उनकी धर्मपत्नी रमारानी और अनेक अग्रगण्य महानुभावोंने पुष्पमाला द्वारा पूज्य गुरुदेवके लिये सन्मानांजलि समर्पित की थी।

* गुरुदेवके अध्यात्म प्रवचनसे प्रभावित आरा नगरी *

विक्रमगंज रात रहकर गुरुदेव आरानगर पधारे। संघसहित पूज्य गुरुदेवके शुभागमनसे यहांके समाजको बहुत उल्लास था। यहाँ ४० जिनमंदिर और ब्र. श्री चंदाबाई संचालित 'जैन बालाश्रम' है। बाला-श्रममें १३ फुट उन्नत बाहुबली भगवान और भव्य मानस्तंभ हैं। इस जैन नगरीके भव्य मंदिरोंकी यात्राका गुरुदेवके साथ लाभ मिलनेसे भक्तो को आनंद हुआ था। गुरुदेवका प्रवचन सुनकर जनताने ऐसे अध्यात्म-प्रवचनोंका विशेष लाभ उन्हें मिलना चाहिये ऐसी विनति की थी। शामको बाहुबलीके समक्ष उल्लासपूर्वक भक्ति हुई थी। शामको ब्र. चंदा-बाईने गुरुदेवके समक्ष उनके प्रांगणमें गुरुदेवके पधारनेसे बहुत प्रसन्नता व्यक्त की थी। थोडी धर्मचर्चाके बाद सोनगढके ब्रह्मचर्याश्रमके विषयमें बात निकली तब पूज्य गुरुदेवने पू. भगवतीमाता बहिनश्री चंपाबहिनकी पवित्र परिणति तथा उनकी दूसरी भी कहने योग्य महिमामय बाते की थीं। पूज्य गुरुदेवके श्रीमुखसे ये बाते सुनकर ब्र. चंदाबाईने बहुत प्रमोद व्यक्त किया था।

* सुदर्शन सेठका पटना और श्रेणिककी राजगृही *

आरासे पूज्य गुरुदेव ससंघ पटना-शहरमें पधारे। गंगाके तटपर बसा हुआ यह शहर श्री सुदर्शन सेठकी मोक्षभूमि है। पूज्य गुरुदेवके साथ इस सिद्धक्षेत्रकी यात्रा करके, विहार शरीफ होकर सम्राट श्रेणिक राजाकी राजधानी राजगृही नगरमें पहुँच गये। यहांके विपुलाचल पर्वत पर महावीर-भगवानका समवसरण आया था और उनकी प्रथम देशना यहीं प्रकट हुई थी। इस पवित्र धाममें विविध धर्मवैभवयुक्त पाँच पहाड़ है। विपुलाचल पर पूज्य गुरुदेवने जो भक्ति कराई थी उसके आनंदकी क्या कहें! गुरुदेवने इन्द्र द्वारा इन्द्रभूति गौतमका आगमन, मानस्तंभ देखते ही उनका मानगलन और महावीर भगवानकी दिव्यध्वनिका छूटना आदि विषयका विस्तृत, महिमायुक्त चित्र खड़ा किया था, जिसको सुनकर भक्तजन बहुत ही आनंदित हुए थे।

१ विपुलाचल, २ रत्नगिरि, ३ उदयगिरि, ४ सुवर्णगिरि (सोनागिरि अथवा श्रमणगिरि) और ५ वैभारगिरि—इन पचशैलकी क्रमशः दो दिनोंमें आनंददायी यात्रा की। अहा! उस आनंदकी क्या बात करें? आज भी, पूज्य माताजीके श्रीमुखसे उसके संस्मरण सुनते सुनते रोमांच हो जाता है! यात्राका आनंद व्यक्त करनेके लिये बड़ी रथयात्रा निकली थी। जिनेन्द्र-अभिषेकके बाद पटना तथा गया शहरके जैन समाजकी ओरसे पूज्य गुरुदेवको अभिनंदनपत्र समर्पित किये गये थे। राजगृहीकी पावन यात्राके मधुर संस्मरणोंको हृदयमें भरकर भक्तजन पूज्य गुरुदेवके साथ कुंडलपुर और नालंदा होकर फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदाके दिन महावीर-निर्वाणधाम श्री पावापुरीमें पधारे।

* पावापुरीकी प्रभावनापूर्ण भव्य यात्रा *

अत्यंत रमणीय जल-मंदिरकी मनमोहक भव्यता देखकर पूज्य गुरुदेव तथा भक्तजनोंको बहुत ही आनंद हुआ। मनोमदिरमे महावीर

* सातिशय प्रभावनायोग *

भगवानके निर्वाणका पावन चित्र साक्षात् हुआ। वीरशासनप्रभावक गुरुदेव पधारे और पूरा वातावरण आह्लादसे भीग गया। दिगंबर जिनमंदिरमें महावीर भगवानकी विशाल खड्गासन जिन प्रतिमाजी हैं, जिनकी भव्यता यात्रियोंको बहुत ही आकर्षित करती है। फाल्गुन शुक्ला दूजके दिन भक्तोंके मनःपट पर सोनगढ़में सीमंधरनाथकी प्रतिष्ठाके समय हुए विधिनायक श्री महावीर प्रभुके पंचकल्याणकके मधुर दृश्य प्रत्यक्ष हुए। जलमंदिरमें पूज्य गुरुदेवने संघके साथ आनंदकारी पूजा-भक्ति की। (पूज्य गुरुदेवने भक्ति भी अंतरके कोई अनन्यभावसे कराई थी।) पूज्य गुरुदेवके भक्तिरंगसे भक्तोंके हृदय आनंदसे उछलते थे। दूसरे दिन जल-मंदिरके प्रांगणमें महावीर–अभिषेकका भव्य समारोह रखा गया था। चारों ओर क्षीरसमुद्र-सा रमणीय सरोवर और बीचमें भक्तों द्वारा महावीर–अभिषेक, अहा कैसा आनंदकारी अवसर! पूज्य गुरुदेवके प्रतापसे इस अपूर्व लाभकी प्राप्ति भक्तोंको आनंद दे रही थी।

* गौतम मोक्षधाम गुनावा *

वीर निर्वाणधामकी पवित्र यात्रा करके गौतम–सिद्धिधाम गुनावा सिद्धक्षेत्रमें आये। यह पवित्र धाम भी महावीर–निर्वाण धामकी तरह सरोवरके बीचमें है। पूज्य गुरुदेवके प्रभावना–उदयसे आह्लादित बने यात्रियोंने गुरुदेवके साथ जिनमंदिरमें दर्शन किये, अर्घ्य चढ़ाया और उसके बाद बहुत भावपूर्वक भक्ति की। शामके समय पूज्य गुरुदेव आस-पासके दृश्य देखते हुए घूम रहे थे तब वहाँके पुजारीने कहा: सामने जो खंडहर दिखता है, वहाँ इन्द्रभूति–गौतमका आश्रम था। गुरुदेवने वह स्थान भक्तोंको दिखाया, जिसको देखकर सभीको बहुत प्रसन्नता हुई.. और गणधरदेव श्री गौतमस्वामीके जयनादोंसे वातावरण भर गया।

* गयासे सम्मेदशिखरकी ओर प्रस्थान *

फाल्गुन शुक्ला चतुर्थीके दिन नवादा होकर 'गया' आये। गया

वैष्णव और बौद्धोंका बड़ा यात्राधाम है। जैनोंके दो मंदिरोंके दर्शन किये। दुपहरमें प्रवचनके बाद जैनयुवक मंडलकी ओरसे पूज्य गुरुदेवको अभिनंदनपत्र समर्पित किया गया था। सुबहमें पूज्य गुरुदेवने 'कल्याणवर्षिणी' में यात्राप्रवासके चरमध्येय ऐसे श्री सम्मेदशिखर (शाश्वत निर्वाण एवं सिद्धिधाम) की ओर मंगल प्रस्थान किया। साथमें आये हुए अनेक यात्री पहलेसे वहाँ पहुँच गये थे। मुमुक्षुभक्तोंको लेकर बम्बईसे एक स्पेशयल ट्रेन भी आ पहुँची थी। भक्तोंका विशाल समुदाय पूज्य गुरुदेवके पधारनेकी प्रतीक्षामें, भव्य स्वागतकी तैयारीमें लग गया था।

'कल्याणवर्षिणी' में बैठे-बैठे पूज्य गुरुदेव संमेदशिखरके पवित्र पहाड़का दूरसे निरीक्षण कर रहे थे। अहो! उस पवित्र धामके प्रथम दर्शनसे जो हृदयोर्मिया उछल रही थीं, उनकी क्या बात करें! दूरसे दिखनेवाली ट्रूक पर दृष्टि गड़ी थी और रास्ता तेजीसे पार किया जा रहा था — जिस प्रकार ज्ञायक पर दृष्टि स्थिर करके साधकका मार्ग जल्दीसे पूरा हो जाता है वैसे ही। दूरसे 'कल्याणवर्षिणी' को देखते ही हजारो यात्रियोंका जयनाद एवं बाजोंका मंगल नाद शिखरजीके पहाडोंके साथ टकराकर उनके प्रतिघोष गगनमें फैल गये। 'कल्याण वर्षिणी'से उतरकर गुरुदेवने सबसे पहले शिखरजीके प्रति हाथ जोडकर भावपूर्वक प्रणाम किया।

* मुक्तिगामीका मुक्तिधाममें आगमन *

तेरापंथी कोठीमें स्थित भव्य जिनमंदिरोंके दर्शनके बाद, मधुवनके छोटेसे बाजारमें होकर स्वागतयात्रा बीसपंथी कोठीमें बनाये गये भव्य और विशाल मंडपमे आ पहुँची। वहाँ पर हजार श्रोताओंकी सभामे मांगलिक सुनाते हुए पूज्य गुरुदेवने अंतरके प्रमोदसे कहा: "अनन्त तीर्थंकर एवं मुनिवर शुद्धात्मानुभूतिविभूपित रत्नत्रयरूप तीर्थकी आराधना करके संसारको पार कर इस क्षेत्रसे सिद्धपद पाये हैं। देखो, इस सिद्धक्षेत्रके

ऊपर समश्रेणीमें अनन्त सिद्ध विराजते हैं। मंगलमय सिद्धरूप साध्य-दशा जिस भावसे प्रकट हुई वह सम्यग्दर्शनादि साधकभाव भी मंगल है। 'धवला' टीकामें आचार्यदेवने कहा है: 'भविष्यमें मुक्त होनेवाला आत्मद्रव्य भी त्रिकाल मंगल है, अल्पकालमें होनेवाली मुक्तिपर्यायके साथ वह बंधा हुआ है और जिस काल-क्षेत्रसे आत्मा मुक्त हुआ वह काल और क्षेत्र भी व्यवहारसे मंगल है। इस प्रकार यह संमेदशिखर, पावापुरी आदि निर्वाण एवं सिद्धक्षेत्र भी मंगल हैं। ऐसी मोक्षभूमिको देखकर साधकको मोक्षतत्त्व का स्मरण होता है। ऐसे पवित्र स्मरणमें निमित्तभूत इस पावन तीर्थकी यात्राके हेतु हम यहाँ आये हैं।' इस प्रकार द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव – सर्व प्रकारसे मांगलिक किया। पूज्य गुरुदेवके श्रीमुखसे संमेदशिखरकी अध्यात्मरसयुक्त महिमा सुनकर, श्रोताओंको पूज्य गुरुदेवकी प्रभावशाली वाणीके प्रति अनन्य उल्लास आता था। इस महत्त्वपूर्ण तीर्थक्षेत्रमें सौराष्ट्रके आध्यात्मिक संतकी चैतन्यस्पर्शी अमृतवाणीका लाभ लेनेके लिये भारतवर्षके अनेक प्रदेशोंसे बहुतसे हिन्दी भाषी दिगंबर जैन भी आये थे। सबको पूज्य गुरुदेवकी वाणी सुननेकी भावना थी।

दुपहरमें पूज्य गुरुदेव, मु. श्री रामजीभाई अध्यात्मरसिक पं. श्री हिंमतलालभाई, ब्रजलालभाई, नेमिचंदभाई आदि कई भक्तोंके साथ ईसरी आश्रममें, श्री गणेशप्रसादजी वर्णीसे मिलनेके लिये, पधारे थे। वर्णीजीके साथ करीब आधे घन्टे तक वात्सल्यपूर्ण बातचीत हुई थी। गुरुदेवसे साक्षात् मिलकर वर्णीजीने खूब प्रसन्नता व्यक्त की थी और मधुवन आनेकी एवं गुरुदेव संघके साथ वहाँ जबतक रहें तब तक वहाँ रहनेकी भावना व्यक्त की थी।

* शाश्वत सिद्धिधाममें गुरुदेव द्वारा मार्ग-प्रभावना *

दुपहरमें मधुवनमें 'नमः समयसाराय...' श्लोकके ऊपर पूज्य

* सातिशय प्रभावनायोग *

गुरुदेवका अध्यात्मरससे भरा सरस प्रवचन हुआ। मुनि, अर्जिकाएँ, क्षुल्लक-क्षुल्लिकाएँ, उदासीन ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणी वगैरह अनेक त्यागी, विद्वानगण एवं अनेक गाँवके प्रतिष्ठित गृहस्थों सहित पाँच हजार जितने श्रोंताओसे खचाखच भरी प्रवचनसभा अत्यंत भव्य लगती थी। अहा! जैसे तीर्थंकर भगवानके समवसरणमें दशों दिशाओंसे श्रोता आते हैं, वैसे गुरुदेवकी दिव्यवाणी सुननेके लिये चारों ओरसे हजारों जिज्ञासुओंका मेला भरा था। अहा! कितना अद्भुत था गुरुदेवका प्रभावना योग!

* गुरुदेवका प्रभावक व्यक्तित्व *

फाल्गुन शुक्ल छठके दिन सुबहमें तलहटीके सभी जिनायतनोंमें जाकर, सभी जिनभगवन्तोंके दर्शन करके पुष्पदंत भगवानकी वेदीके समक्ष यात्रासंघके सभी भाई-बहनोंने पूज्य गुरुदेवके साथ अत्यंत भावसे पूजा की। सौराष्ट्रके हजारसे भी अधिक भक्तों द्वारा की गई भावभीनी समूहपूजा देखकर मूल दिगंबर आनंदसे गद्‌गद हो जाते थे। दुपहरके समय पं. फूलचंद्रजी, पं. पन्नालालजी, पं. दयाचंद्रजी, पं. खुशालचंद्रजी वगैरह विद्वद्गण श्री गणेश दि० जैन विद्यालय (सागर)का सुवर्णजयंती-महोत्सव यहाँ मधुवनमें पूज्य गुरुदेवकी मंगलवर्धिनी छायामें मनानेका निर्णय करनेके लिये आये थे। वे गुरुदेवसे विनति करके कहने लगे: 'वर्णीजी महाराज आपकी प्रसन्न मुद्राकी बार-बार प्रशंसा करते हैं और कहते हैं कि-स्वामीजीकी प्रसन्न मुद्रा मुझे बहुत पसंद आई; और मुझे ऐसा लगा कि इस आत्माके द्वारा समाजका कल्याण होगा।' तदुपरान्त उन विद्वानोंने स्वयं भी गहरे भावके साथ प्रवचन एवं पूजा-भक्तिके कार्यक्रमोंकी प्रशंसा करते हुए कहा: आपके प्रवचन और पूजा-भक्तिके कार्यक्रम देखकर दो दिनमें तो यहाँका सारा वातावरण पलट गया है। ऐसा व्यवस्थित और भावपूर्ण कार्यक्रम और ऐसी भक्ति हमने कहीं नहीं देखी। तब गुरुदेवने कहा: जो

चमत्कारहीन हैं उनकी आत्मानुभूति, उनका निर्मल सम्यग्दर्शन इत्यादि अन्य बहुत हैं । लेकिन यह बात अंतरकी है । इस तरह दुपहरमें गुरुदेवके साथ हुई बातचीतसे सब विद्वान् प्रसन्न हुए थे ।

* सिद्धिधामकी अपूर्व यात्रा *

गुरुदेवकी यात्राकी उमंग कोई अनूठी थी । यात्राके लिये प्रस्थानका समय सुबह ४ बजे निश्चित् हुआ था । गुरुदेव १२।। बजने पर जाग गये और डेढ़ बजने तक तो तैयार होकर प्रस्थान–स्थलके पास पहुँच गये । गुरुदेवके पधारते ही यात्रियोंमें उल्लासपूर्ण कोलाहल हो गया । व्यवस्था–क्रममें लगे हुए मुख्य कार्यकर्ता देरसे सो सके थे. वे जल्दी-जल्दी उठकर आश्चर्यसे तैयार होने लगे । ढाई बजनेपर ' शाश्वत सिद्धिधाम संमेदशिखरकी जय हो ' ऐसे गगनभेदी जयनादोंके साथ, मंगल प्रस्थान हुआ ।

फाल्गुन शुक्ला सप्तमीका दिन है । आज चन्द्रप्रभ भगवानके निर्वाणका मंगल पर्व है । सम्यक्त्वतीर्थप्रभावक पूज्य गुरुदेवके साथ संमेदशिखर शाश्वत सिद्धिधामकी मंगलयात्रा करनेकी हजारों यात्रियोंकी दीर्घकालीन भावना आज सफल हुई । भक्त लोग भावना करते थे कि — हे सिद्ध भगवन्त ! कहान गुरुदेवके नेतृत्वमें हुई इस सिद्धिधामकी अपूर्व-यात्राके अध्यात्मभाव हृदयंगत करनेकी शक्ति हमें दीजिये और गुरुदेवके साथ हमें भी सिद्धिपथकी ओर ले जाइये ।

सिद्धिमार्गके नेता कहानगुरुके पीछे हजारों मुमुक्षु यात्री सिद्धिधामका मंगल आरोहण कर रहे हैं । यात्रियोंकी लम्बी कतारमें कितनेक लोग जयकारके नादसे गगन भर देते हैं, कई मधुर भक्तिगीत गाते हैं, कई पंचपरमेष्ठीका स्मरण करते हैं – इस प्रकार प्रशस्तभावसे आरोहण करते करते सब अरुणोदयके पहले ही प्रथम टोंक पर पहुँच जाते हैं । पीछे रह गये मु. रामजीभाई आदि यात्रियोंकी प्रतीक्षाके लिये पूज्य गुरुदेव

ऊपर विश्रामधाममें थोड़ी देरके लिये बैठे। समवसरणकी बारह सभाओंकी भाँति भक्तजन पूज्य गुरुदेवके चारों ओर बैठ गये।

पूज्य गुरुदेवने आजकी यात्राके संबंधमें बहुत ही प्रमोद व्यक्त करते हुए कहा : आज यह महामंगल अवसर है। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव— सभी मंगल हैं।

* अल्पकालमें मुक्त होनेवाला आत्मद्रव्य है, वह द्रव्य-मंगल है।
* यहाँसे अनंत जीव सिद्ध हुए हैं इसलिये इस संमेदशिखरकी भूमि क्षेत्र-मंगल हैं।
* आज श्री चन्द्रप्रभ भगवानके निर्वाणका दिन है इसलिये आजका दिन काल—मंगल है।
* रत्नत्रयरूप तीर्थकी भावनासे भीगा हुआ आजका भाव, भाव-मंगल है।
* इसलिये हमारे लिये सभी मंगल है।

गुरुदेवके श्रीमुखसे शाश्वत तीर्थराजकी यात्राके प्रारंभमें ऐसा प्रमोद-पूर्ण मांगलिक सुनकर सबको बहुत ही आनंद हुआ था। मांगलिकके बाद प्रथम कुंथुनाथ भगवानकी टोंकसे हजारों यात्रियोंकी भीड़के बीच पूजन—भक्ति शुरू हुए। क्रमशः आनेवाली सभी टोंकोंपर पूज्य गुरुदेव उन—उन तीर्थंकर या गणधरोंके चरणचिह्नोंका नतमस्तक होकर स्पर्श करते थे, बादमें अर्घार्चन करते थे। अहा! चंद्रप्रभ भगवानकी टोंक पर हुए पूजा—भक्तिके आनंदकी क्या कहें ? पूज्य गुरुदेवने स्वयं चरणपटपर उत्कीर्ण प्रशस्ति पढ़ी, उसके बाद अत्यंत भावसे भक्ति हुई थी। भक्तिके बाद पूज्य गुरुदेवने खड़े होकर शिखरजीकी सभी टोंकोंका भावसे विहगावलोकन किया। अत्यंत दूर अंतिम पार्श्वनाथ भगवानकी टोंक दृष्टिगोचर होती थी। सिद्धिधामका रमणीय दृश्य देखकर गुरुदेव बहुत प्रसन्न हुए।

वहाँसे लौटते हुए 'जलमंदिर' में थोड़ा विश्राम करके पूज्य गुरुदेवके साथ संघने पार्श्वनाथ टोंककी तरफ प्रयाण किया। रास्तेमें दूसरे अनेक भगवन्तोंकी टोंकें आई, वहाँ अर्घ्यपूजा करते करते सब सुपार्श्वनाथ भगवानकी टोंक पर आये। इस 'प्रभात' टोंक पर आने पर बहुत उत्साह जागा। गुरुदेवने प्रमोदसे सुपार्श्वप्रभुके चरणोंका अभिषेक किया। गुरुदेवके हस्तसे अभिषेक होता हुआ देखकर भक्तोंमें आनंद फैल गया। उल्लासपूर्वक पूजा-भक्ति करनेके बाद गुरुदेवने भावपूर्वक मोक्षके कारण-स्वरूप अध्यात्मभावनाका प्रवाह बहाया, जिसका श्रवणपान करके, गुरुदेवके साथ सिद्धिधाममें आये हुए भक्त आनंदसे कृतार्थ हुए। उस मंगल भावनामें 'मैं एक शुद्ध सदा अरूपी ज्ञानदर्शनमय अरे' और 'अपूर्व अवसर ऐसा कब हम पायेगे ?' — इसकी मनमोहक धुन द्वारा अंतरके चैतन्यरसको घूंटते हुए गुरुदेवने कहा : ऐसी अपूर्व साधना द्वारा परिपूर्ण वीतरागदशा प्रकट करके, सर्वज्ञपद प्राप्त करके, इच्छारहित सहजभावसे चारों ओर मोक्षमार्गका प्रवर्तन करके क्रमशः अनंत तीर्थंकरोंका इस पवित्र सिद्धक्षेत्रपर आगमन हुआ है। यहाँ योगनिरोध दशा होकर, उन्होंने मोक्षपद प्राप्त किया है। अहा ! मुक्तिपथके मंगलप्रवासी कहान गुरुदेवके मंगल मुखसे मोक्षपदकी भावना सुननेका कैसा मंगल अवसर ! गुरुदेवकी वैराग्य और भक्तिभीनी अध्यात्मधुनसे संघमें साथ आये हुए कई अमूर्तिपूजक जैन महानुभाव भी बहुत ही प्रभावित हुए थे। वे भी गुरुदेवके साथ यात्रा करनेका लाभ प्राप्त करके अपनेको कृतार्थ मानते थे।

वहाँसे आगे चलकर, दूसरी अनेक टोंकों पर दर्शन, चरणस्पर्श और अर्चाचन करके पूज्य गुरुदेव अंतिम टोंकपर—श्री पार्श्वनाथ भगवानकी सुवर्णभद्र टोंकपर—पहुँच गये। बीचमें चलते चलते भक्तिगीत और जय-जयकारके मधुर नादोंसे गगनको गुँजाते हुए भक्त भी गुरुदेवके पास पहुँच जानेके लिये जल्दी जल्दी चलने लगे। प्रत्येक टोंककी तरह यहाँ

भी पार्श्वप्रभुके पावन चरणोंके दर्शन, वंदन, स्पर्शन, अर्चार्चन और जयनादकरण—इस प्रकार पंचविध यात्रा की। स्थान छोटा होनेसे गुरुदेवने कहा : बाहर बैठकर भक्ति करेंगे, जिससे दूसरे यात्री भीतर जाकर दर्शन आदि कर सकें। मंगल आदेश स्वीकार कर सभी भक्त गुरुदेवके चारों ओर बैठ गये।

अहा! संमेदशिखरकी पच्चीसों टोंकोंकी यात्रा पूर्ण करके उसके सर्वोच्च शिखर–सुवर्णशिखर पर सुवर्णपुरीके संत यात्रियोंके मध्यमें ऐसे शोभते थे मानों बारह परिषदके मध्यमें तीर्थंकर भगवान बैठे हों! जैसे धर्मकालमें या तो विदेहक्षेत्रमें कोई महान आचार्य-संत चारों ओरके सैंकड़ों मुनिवरोंके समुदायके मध्यमें शोभते हों और आनंददायिनी चैतन्यकी चर्चा करते हों—अहा! ये दृश्य कितने अद्भुत होते हैं! वैसे ही यहाँ भी सिद्धिधामके चरमशिखर पर सेकड़ों मुमुक्षु यात्रियोंके मध्यमें शोभते गुरुदेव जैसे भारतवर्षके अद्वितीय महान युगसंत आजकी, जीवनमें पहली ही बार हुई मंगल यात्राकी, आनंददायी चर्चा करके अध्यात्मरसका पोषण कर रहे थे। सचमुच, उस समय गुरुदेवकी प्रसन्नताका दृश्य अद्भुत था।

यहाँ प्रथम गुरुदेवने अत्यंत भावपूर्वक भक्ति कराई। 'पार्श्व जिणंदको प्रीतसे नित्य वंदूँ' इत्यादि स्तवन द्वारा पूज्य गुरुदेवके श्रीमुखसे वैराग्यरसपूर्ण भक्तिस्रोत जैसे जैसे बहता गया वैसे वैसे भक्तिका प्रशमरससिक्त उत्साह बढ़ता गया। उसके शान्तरसमें लीन प्रशममूर्ति भगवती माताजी एवं सभीको ऐसा लगता था कि अहा! स्वानुभवतीर्थप्रभावक गुरुदेवके श्रीमुखसे ऐसी मधुर भक्ति सुनते ही रहें। जिस प्रकार भगवानके समवसरणमें बैठे हुए जीवोंको वहाँसे उठनेकी जरा भी इच्छा नहीं होती वैसे ही गुरुदेवके भक्तिरसका अमृतपान करने वाले भक्तोंको भी वहाँसे उठनेकी इच्छा नहीं होती थी। लम्बी यात्राकी थकान पूज्य

गुरुदेवके भक्तिरसने दूर कर दी। अहा! मुमुक्षुओंकी अनादिकी भव-यात्राकी थकान दूर करनेवाले पूज्य गुरुदेवके पावन प्रभावनायोगमें ऐसी आश्चर्यकारी अद्‌भुतता न हो तो जगतमें दूसरे कौनसे स्थानमें होगी? सचमुच, गुरुदेवके भक्तिरससे पूरेके पूरे यात्रासंघमें हर्षोल्लास फैल गया था। पूज्य गुरुदेवने दो स्तवन गाये, उसके बाद गाये गये 'विचरंता चोवीस जिननं वंदु भावे' .. और 'तुमसे लगनी लागी जिनवर, तुमसे लगनी लागी, ..' इन दोनों स्तवनों द्वारा भक्तिरसमें बाढ़ आयी। भक्तिपूर्ण होते ही पूज्य गुरुदेवने स्वमुखसे 'संमेदशिखर तीर्थधामकी जय हो! श्री चन्द्रप्रभु भगवानकी जय हो! श्री पार्श्वनाथ भगवानकी जय हो! और श्री शाश्वत निर्वाणधामकी जय हो!' — इस प्रकार 'जयनाद' कराया। गुरुदेवने प्रसन्नतासे पुकारे हुए 'जयकारनाद' के श्रवणके विरल एवं दुर्लभ सौभाग्यसे आनंदित विशाल भक्त-समुदायने वह मंगलनाद झेलकर ऊँची आवाजसे गगनको भर दिया, जिसके प्रतिघोष दूरदूर तक फैल गये।

गुरुदेवके परम प्रतापसे हुई आजकी अपूर्व और अद्‌भुत यात्राके लिये अहोभाव दर्शाते हुए सभी यात्रियोंने गुरुदेवके पीछे-पीछे उतरना शुरू किया — जिस प्रकार भक्तिरसमें उमड़े हुए साधक बादमें स्वरूपमें उतर जाते हैं वैसे ही। अहा! इस मंगलयात्राकी तो क्या बात करें? गुरुप्रतापसे जीवनमें कई ऐसे आनंददायी अवसर आ जाते हैं जो कि वाणीके द्वारा व्यक्त नहीं किये जा सकते। मु. श्री नानालालभाई, रामजीभाई, आदरणीय पं. श्री हिंमतभाई, व्रजलालभाई, आनंदभाई वगैरह भाई तथा प्रशममूर्ति भगवतीमाता बहिनश्री चंपाबहिन, बहिन शान्ताबेन आदि बहिने और विभिन्न नगरोंसे आये हुए अनेक यात्री भाई—बहिनें गुरुदेवके साथ की गई इस अभूतपूर्व यात्राका आनंद अनुभवते थे। भक्तिगीत एवं गुरुदेवकी उपकार-महिमा गाते गाते और गुरुदेवके साथ प्राप्त हुए

अपूर्व यात्रालाभके आनंदका रसास्वाद लेते हुए शामके तीन बजने पर सब तलहटीमें पहुँच गये। उतरनेके बाद पूज्य गुरुदेवने पीछे मुड़कर शिखरजीके पहाड़का पुनरावलोकन किया; पावन शाश्वत सिद्धिधामको भावभीगे चित्तसे नमस्कार किया। भक्तोंने गुरुदेवका अनुकरण किया। इस तरह मंगल जयनाद करते करते, घंटनाद करते करते और पुनः पुनः इस सिद्धिधामकी यात्रा करनेकी भावना भाते-भाते भक्तोंने यात्रा पूर्ण की।

यात्राकी पूर्णताके अवसर पर जिनेन्द्रभक्त भक्तयात्रीके हृदयमें ऐसा भक्तिभीना वेदन रहा करता था कि – हे अनंत सिद्धभगवन्त! हे अनंत जिनेन्द्र! हे अनंत गणधरादि मुनिवर! आपके इस पवित्र मुक्तिधामकी गुरुदेवके साथ यात्रा करनेकी दीर्घकालीन हमारी भावना आज पूर्ण हुई ...; आज हमारे मनोरथ सफल हुए; आज भगवानकी भेंट हुई। हे गुरुदेव! आपके परम अनुग्रहसे यह अपूर्व लाभ मिला है, .. आपका इस जीवनमें परम परम उपकार है। आज इस महामंगलकारी शाश्वत तीर्थधामकी यात्रा हुई, वह आत्माके हितका कारण है।

* वासुपूज्य-कल्याणकधाम चंपापुरी-मंदारगिरि *

संमेदशिखरके निवासके समयमें गुरुदेवने संघसहित १६० मील दूरके, बालब्रह्मचारी वासुपूज्य भगवानके पंचकल्याणकके पावनधाम चंपापुरी-मंदारगिरिकी यात्रा की थी। रास्तेमें गिरिडीह और देवधर होकर दुपहरमें भागलपुर पहुँचे। वहाँके दि. जैन समाजने गुरुदेवका भावभीना स्वागत किया, प्रवचनका खूब उत्साहसे लाभ लिया, प्रवचनके बाद समाजकी ओरसे अभिनंदनपत्र समर्पित किया गया था।

फाल्गुन शुक्ला दसवींके प्रातःकाल भागलपुरसे थोड़ी दूरी पर गंगाके तटपर बसे नाथनगर अर्थात् चंपापुरके भव्य जिनालयोंके गुरुदेवने

संघसहित दर्शन किये, पूजन किया और वासुपूज्य भगवानका अभिषेक किया। गुरुदेवको अपने करकमलसे जिनेन्द्र-अभिषेक करते हुए देखकर भक्तोंको अत्यंत आनंद हुआ। गुरुदेवने बड़वानी, पावापुरी, शिखरजी आदि स्थानों पर चरणाभिषेक किया था परंतु यहाँ तो साक्षात् वासुपूज्य भगवानकी जिनप्रतिमाका अभिषेक किया था। गुरुदेवके जीवनमें यह नाविन्य था, जिसे देखकर मु. श्री नानालालभाई जसाणी वगैरह प्रमुख महानुभावोंको भी बहुत प्रसन्नता हुई। इस आनंदकारी प्रसंगकी खुशीमें यात्रासंघकी ओरसे अच्छीसी दानराशि घोषित हुई, जिसका उपयोग पूज्य गुरुदेवके निवासके मकानका जीर्णोद्धार करनेमें किया जायगा ऐसा निश्चित हुआ। गुरुदेव प्रवचनमें छोटी पीपरका दृष्टांत अनेक बार देते, जिसकी बेल यहाँ जिनमंदिरके उद्यानमें पहली बार देखी। गुरुदेवने यात्रियों-का लक्ष उसकी ओर खींचा। उसके बाद जब जब वे छोटी पीपरका दृष्टांत देते तब चंपापुरीकी उस बेलको याद करते थे।

दूसरे दिन सुबह गुरूदेव संघसहित वासुपूज्य निर्वाणधाम मंदारगिरिकी यात्राके लिये पधारे। भागलपुरसे करीब ३० मील दूर मंदारगिरि पर्वतपर वासुपूज्य भगवानके दीक्षा, केवल और मोक्ष कल्याणक हुए हैं। आह! इस पवित्र धामकी यात्रा करनेमे यात्रियोंको बहुत आनंद होता था क्योंकि चंपापुरीके स्वामी बालब्रह्मचारी वासुपूज्य भगवानको, भगवती माता पूज्य चंपाबहिनके पवित्र जन्मदिन—(गुजराती) सावन कृष्णा दूजके मंगलदिन—करोडों वर्ष पहले इस पवित्र भूमिमें केवलज्ञानकी उत्पति हुई थी! गुरुदेवके साथ भावपूर्ण पूजा भक्तिपूर्वक की गई इस मधुर यात्राके मधुर संस्मरण भक्तजनोंके हृदयमें जम गये हैं।

पुनः शिखरजी आये। फाल्गुन शुक्ला १२-१३ के दिन श्री गणेश दि. जैन संस्कृत विद्यालय (सागर) का सुवर्णजयन्ती महोत्सव

पूज्य गुरुदेवकी प्रभावयुक्त मंगल छायामें मनाया गया था। इस अवसर पर आत्मा और आस्रवकी भिन्नताके ऊपर, पूज्य गुरुदेवश्रीका– अनेक मुनि, त्यागी, विद्वान तथा पाँच हजारसे भी अधिक संख्यामें उपस्थित श्रोता समुदायके समक्ष—बहुत प्रभावशाली प्रवचन हुआ था। शास्त्राभ्यासी कई विद्वान पूज्य गुरुदेवकी चैतन्यकी गहराईको छूकर निकलती वाणीसे प्रभावित होकर प्रसन्नतासे झूमते थे, तो कई सूक्ष्म अध्यात्मको सरल भाषामें अस्खलित रूपसे प्रस्तुत करनेके गुरुदेवके प्रवचन-कौशल्यका अहोभावसे आश्चर्य अनुभवते थे।

प्रवचन और भक्तिके बाद जो अभूतपूर्व तीर्थयात्रा हुई थी उसकी खुशीमें जिनेन्द्ररथोत्सवका क्रम रखा गया था, जिसमें भक्तलोग बहुत उल्लाससे नाच उठे थे। फाल्गुनकी अष्टाह्निका पूज्य गुरुदेवने संघसहित विभिन्न मंदिरोंमें पूजा–भक्तिके समारोहपूर्वक यहीं मधुवनमें पूर्ण की। फाल्गुन कृष्ण प्रतिपदाके दिन सुबहमे दर्शन–पूजनके बाद गुरुदेवका प्रवचन हुआ। प्रवचनके बाद सैकड़ों पंडितोंके विद्यापिता पं श्री बंसीधरजी सिद्धांतशास्त्री (इन्दौर) ने अपने भाषणमे आँखोंमें आँसू भरकर गद्‌गदवाणीसे साहस करके स्पष्टतया जाहिर किया कि "अनन्त चौबीसीके तीर्थंकर और आचार्योंने सत्य दिगंबर जैनधर्मको–अर्थात मोक्षमार्गको–प्रकट करनेवाला जो सन्देश सुनाया है वही इनकी (कानजी स्वामीजीकी) वाणीमें हम सुन रहे हैं। महावीर भगवानने जो कहा और कुन्दकुन्दादि आचार्योंने जो कहा वही आज यह महाराजश्री प्रसिद्ध कर रहे हैं। आपकी वाणीमें तीर्थंकरोंका और कुन्दकुन्दस्वामीका ही हृदय था।... आपकी दृष्टिसे जो तत्त्व प्रतिपादित होता है वह जगतके लिये कल्याणकारी है।"

समाजके मूर्धन्य पंडित द्वारा व्यक्त किये गये इन भावसभर उद्-

गारांसे सम्पूर्ण सभामें हर्षका वातावरण फैला गया था; उपस्थित त्यागीगण एवं विद्वद्गण सब साश्चर्य मुग्ध बन गये थे। पूज्य गुरुदेवके प्रभावनादयके इतिहासमें सदैव अंकित हो जाय ऐसा भव्य आजका वातावरण था। भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत्परिषदके अध्यक्ष महोदय पं. श्री फूलचन्द्रजी सिद्धान्ताचार्य तथा सागर विद्यालयके मंत्री प. श्री मुन्नालालजी आदिने भी अपने प्रवचनमें सानंद श्रद्धापूर्ण हृदयोद्गार व्यक्त किये थे। शाश्वत सिद्धिधामसे अलग न होना हो ऐसी भावनासे 'हे नाथ' पुनः जल्दी जल्दी दर्शन देना और हमारे आत्मकल्याणकी कामना शीघ्रतया पूर्ण करना' ऐसी प्रार्थना पूर्वक सिद्धिक्षेत्रकी वंदना करके यात्रासंघने गुरुदेवके साथ विदा ली।

अहो! सिद्धिपथके पथिक गुरुदेवको नमस्कार हो कि जिसके पुनीत प्रतापसे भक्तोंको ऐसी अपूर्व यात्राका महान लाभ मिला!

ध्यान रहे कि यह प्रस्तुत लेख यात्राका वर्णन नहीं है किन्तु पूज्य गुरुदेवके पावन प्रभावनायोगका अति संक्षिप्त दिग्दर्शन है। प्रभावनायोगके वर्णनमें, उसका अंग होनेसे विहार, प्रवचन, मंदिर और प्रतिष्ठा, तीर्थयात्रा आदिका उल्लेख अवश्यभावी होनेसे, उनका वर्णन संक्षेपमें हो गया है। उक्त सभी बातोंका मूलाधार पूज्य गुरुदेवका मंगल प्रभावना–उदय है, यह यहाँ दिखाना है इसलिये अब आगेके प्रवासमें सिर्फ विशेष प्रभावना प्रसंगका उल्लेख किया जायगा।

मधुवनसे जमशेदपुर, झरीया–धनबाद, आसनसोल और चेनसुरा होकर गुरुदेव संघसहित कलकत्ता पधारे। स्वागत–प्रमुख श्री शान्तिप्रसादजी साहू और उपप्रमुख श्री गजराजजी गंगवालके नेतृत्वमें हिन्दीभाषी एवं गुजराती समाजने गुरुदेवके स्वागत तथा प्रवचनोंमें बहुत ही उल्लाससे भाग लिया था। अनेकान्तके रहस्यसे भरपूर प्रवचन सुनकर श्रोतासमूह अतीव प्रसन्न होता था।

गुरुदेवको प्रत्यक्ष देखनेसे और सुननेसे अनेक जीवोंका भ्रमनिवारण हो जाता था। सूरत निवासी 'जैनमित्र' के संपादक श्री मूलचंद किशनदास कापडियाने तो प्रवचनमें कहा था कि आत्माका और नवतत्त्वका ऐसा प्रभावक विवेचन मैने पचास सालमें किसीके पास कभी सुना नहीं है। सचमुच, गुरुदेवकी स्वानुभवभीगी अध्यात्मवाणीसे चार दिनोंके निवासके अरसेमें कलकत्ता महानगरमें जैनधर्मकी अच्छी प्रभावना हुई थी।

* खडगिरि–उदयगिरि तीर्थकी यात्रा *

विहार, अंग और वंग इन तीन प्रदेशमे होकर अब कलिंग (ओरिस्सा) प्रदेशके 'खंडगिरि–उदयगिरि' नामक ऐतिहासिक सिद्ध-क्षेत्रकी यात्राका भी गुरुदेवके साथ भक्तोंको लाभ मिला। कलिंग राज्यका मुख्य शहर भुवनेश्वर है। वहाँसे ४–५ मील दूर खंडगिरि और उदयगिरि ये दो पहाडी हैं। यहाँ भगवान महावीर स्वामीका समवसरण आया था। उसके पहले भी जशरथ राजाके पुत्र एवं ५०० मुनि यहाँसे मुक्त हुये थे। भगवान महावीरके बाद करीब २०० वर्ष बाद हुए जैन सम्राट खारवेलने इन पहाडियोंमें अनेक गुफाएँ, प्रतिमा, लेख आदि उत्कीर्ण किये हैं, जिनमें उदयगिरि पर हाथीगुफाके उपर वाला बड़ा शिलालेख अधिक प्रसिद्ध है।

पूज्य गुरुदेव और कुछ भाई-बहिनें – ऐसे कुल मिलाकर २७ प्रवासियोंके लिये प्राप्त किये एक चार्टर्ड डाकोटा विमानमें बैठकर — कलकत्तसे भुवनेश्वर गये थे। बाकीके यात्री अगले दिन शामको रेलगाड़ीमें रवाना हो गये थे। पूज्य गुरुदेवके गगनविहारके समयमे कुंदकुंद प्रभुकी गगनविहारी विदेशयात्राके मधुर स्मरण जागते थे। इस गगनविहारके आनंदमें विमानमें भक्तगण उत्साहपूर्वक भक्ति कर रहा था। खंडगिरि–उदयगिरि सिद्धक्षेत्रकी पूजा–भक्तिसह भावभीनी यात्रा करके गुरुदेव वगैरह शामको

कलकत्ता वापस आ गये थे। फाल्गुन कृष्णा १४ के दिन — कलकत्ता निवासके आखरी दिन — पूज्य गुरुदेवके अध्यात्मरसपूर्ण प्रवचनके बाद श्री शांतिप्रसादजी साहूने और श्री गजराजजी गंगवालने सुंदर प्रवचन द्वारा पूज्य गुरुदेवका बहुमान किया और साहूजीके हस्तसे गुरुदेवको अभिनंदनपत्र अर्पण किया गया था।

* कलकत्तासे दिल्हीकी ओर *

अध्यात्मविद्याके महिमासागरकी मधुर तरंगें समग्र भारतवर्षमें फैलानेवाले चंद्रोपम गुरुदेव श्री कानजीस्वामीके सातिशय प्रभावनायोगसे 'पूज्य श्री कानजीस्वामी दि. जैन तीर्थयात्रा' के सिलसिलेमें पौष शुक्ला १५ से फाल्गुन कृष्णा अमावस्या तकके ढाई महिनेमें बम्बईसे कलकत्ता तकके छोटे-बड़े अनेक शहर, सिद्धक्षेत्र और दूसरे अनेक तीर्थोंमें पूज्य गुरुदेवकी प्रवचन वाणीसे वीतराग जैनधर्मकी अद्भुत प्रभावना हुई। लौटनेके पहले तो ऐसा विचार आया कि सीधे सोनगढ चले जाय, किन्तु यात्रासंघके व्यवस्थापकों को विचार आया कि लौटते समय भी मार्गमें आनेवाले शेष बचे बड़े शहरोंमें कार्यक्रम रखना चाहिये जिससे वहाँकी धर्मपिपासु जनताको पूज्य गुरुदेवकी अध्यात्मवाणीका लाभ मिल सके। अतः लौटते समय प्रवासमें जल्दी करके पूज्य गुरुदेव इलाहाबादमें प्रवचन देकर तथा किल्लेमें 'अक्षय-वटवृक्ष' नीचे श्री आदिनाथ-तपोभूमि के दर्शन करके, प्रयागके त्रिवेणी संगमको देखकर, कानपुर, कुरावली, एटा आदि स्थानोंमें प्रवचन एवं तत्वचर्चा द्वारा जैनशासनकी प्रभावना करते-करते तीर्थधाम हस्तिनापुर पधारे।

कुरूजांगल देशकी यह महानगरी आदिनाथ-आहारदान, शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरनाथ—इन तीन चक्रवर्ती तीर्थंकरोंकी जन्मभूमि, मल्लिनाथ-तीर्थंकरके समवसरणका आगमन, पांडवोंकी राजधानी, अकंपनादि ७००

मुनिवरोंका उपसर्गविजय, भरत चक्रवर्तीके सेनापति जयकुमार एवं अकंपन-राजा आदि अनेक मोक्षगामी महापुरुषोंकी पुण्यभूमिके रूपमें पुराणप्रसिद्ध है। इस पवित्र धामकी पूजा-भक्तिपूर्वक यात्रा करके गुरुदेव मोदीनगर होकर ससंघ भारतवर्षकी राजधानी दिल्ही शहरमें पधारे।

यहाँ मुमुक्षुमंडलसमेत समाजके तीन हजार जितने लोगोंने भव्य स्वागत किया। प्रवचन लालमंदिरके पास बड़े मंडपमे होते थे। तत्कालीन कोंग्रेस प्रमुख श्री उछरंगभाई ढेबर भी प्रवचनमें लाभ लेनेके लिये आते थे। गुरुदेवके निवासस्थान 'वीरसेवामंदिर' में ढेबरभाईके प्रश्नोंके उत्तर-स्वरूप धर्मचर्चासे दिल्ही समाजके प्रमुख विद्वान और गृहस्थजन बहुत ही प्रभावित हुये थे। भारतवर्षीय दि. जैन परिषदकी ओरसे गुरुदेवके सन्मानका भव्य समारोह हुआ था, उसमें गुरुदेवको अभिनंदन पत्र समर्पित किया गया था।

दिल्हीसे गुरुदेव सहारनपुर पधारे थे। मार्गमें मुज्जफरनगर आदि शहरोंमें उत्साहसे स्वागत आदि हुये। सहारनपुरके आधे दिनके कार्यक्रममें भव्य स्वागत, प्रवचन और अभिनंदनपत्र-समर्पण आदि अनेकविध प्रभावनापूर्ण कार्यक्रम हुये थे। लौटते हुए छोटे-बड़े गाँवोंमें बहुतसे दि. जैन-भाई 'कल्याणवर्षिणी' के समक्ष आकर खड़े रह जाते और उनकी भावना देखकर पूज्य गुरुदेव स्वरूप मांगलिक-प्रवचन सुनाते। खतौली गाँवमें हजारों लोग दर्शन-स्वागतके लिये उमड़े थे। बहुत बड़ी भीड़, लम्बी स्वागत-यात्रा और समयाभावके कारण, सिर्फ दर्शन देकर पूज्य गुरुदेव शामको देरसे दिल्ही पहुंच गये थे।

* राजस्थानकी जैननगरी जयपुर *

दिल्हीसे, अल्वरको एक दिनका प्रवचन-लाभ देकर, आमेर होकर गुरुदेव जैनोंकें वैभवसे समृद्ध ऐसी प्रसिद्ध जयपुरनगरीमें पधारे। संभवतः

* सातिशय प्रभावनायोग *

भारतमें सबसे अधिक जिनमंदिर एवं जिनबिंब इस भव्य नगरीमें होंगे। इस जैननगरीने पूज्य गुरुदेवके प्रभावनायोगको शोभा दे ऐसा अति भव्य स्वागत किया। स्वागतयात्रामें हजारों लोग मारवाडी वेश-भूषामें सजधजकर उमड़ थे। दोनों ओर गुलाबी पाषाणकी एक-सरीखो भव्य इमारतों और बाजारोंके चौड़े रास्ते लोगोंकी भीड़से उभरे हुए थे। ऊँची ऊँची अट्टालिकाएँ दर्शकोंसे खचाखच भर गई थीं। पूज्य शासन-प्रभावक गुरुदेवके मंगल-आगमनसे जयपुर नगरकी शोभा आज अतीव मनोहर लगती थी।

मांगलिक प्रवचनमें ८००० जितने लोग थे। राज्यके अनेक जैन मंत्री, पं. टोडरमलजी और पं. जयचंद्रजी आदि अनेक विद्वानोंकी इस पुण्यभूमिमें पूज्य गुरुदेवके प्रवचनों द्वारा अध्यात्मधर्मकी अच्छी प्रभावना हुई। गुरुदेवने संघके साथ इस नगरके बड़े बड़े अनेक जिन-मंदिरोंके भावभीगे दर्शन और अर्चाचन किये। दीवानजीके बड़े मंदिरमें पूजाका समारोह भी रखा गया था। महावीर जयन्तीके दिन जिनेन्द्र रथोत्सवमें पच्चीस हजार लोगोंने भाग लिया था। वह रथोत्सव बहुत ही भव्य था। जयपुरके चार दिवसके कार्यक्रमके अनुसन्धानमें सांगानेरका किल्ला और पद्मपुरा भी देख आये थे। जयपुरका विपुल जैन वैभव देखकर तथा वहाँकी जनताको अध्यात्मवाणीका अनुपम चिरस्मरणीय लाभ दे कर, गुरुदेव अलीगढ़, टोंक होकर अजमेर पधारे!

* अजमेरकी भव्य स्वागतयात्रा *

अजमेरके प्रसिद्ध सेठ श्री भागचंद्रजीके नेतृत्वमें दिगंबर समाजने संघका भावभीना स्वागत किया था। वहाँके साप्ताहिक पत्र 'आजाद'ने उसका विवरण इस प्रकार दिया था—

दि. १५ अप्रैलको भारतके महान आध्यात्मिक सन्त श्री कानजी-

स्वामीका अभूतपूर्व स्वागत हुआ।... १० हजार व्यक्ति सम्मिलित थे। जुलूसके रास्तेमें स्थान-स्थान पर नागरिकों द्वारा पुष्पवृष्टि की गई तथा विशेषरूपसे दरगाहके ऊपरसे मुसलमान बन्धुओंने स्वामीजीके स्वागतमें जो फूलवर्षा की वह विशेष महत्त्व व भ्रातृभावनाकी एक ऐतिहासिक घटना है! लगभग २०० वर्ष पूर्व भी मुसलमान बन्धुओंने जैनसन्तको इसी प्रकार अपने यहाँ विशेष सन्मान दिया था। अजमेरके इतिहासमें इतना विशाल जुलूस प्रथम बार देखने को मिला।... पुष्पवर्षासे रास्ता सुगन्धसे महक उठा।... बाजारमें जो चांदी व गोटेके क्रमशः द्वार बनाये गये थे वह भी विशेष उल्लेखनीय है।

* लाडनूंमे मंगल-आगमन *

अजमेरमें सोनीजीकी नसियां, पंचकल्याणककी मूर्तिमान भव्य रचना एवं अन्य मनोरम मंदिरोंके भावसे दर्शन करके तथा दो दिन प्रवचन देकर गुरुदेव लाडनू पधारे।

जिन्होंने पू. गुरुदेवके प्रभावनायोगसे प्रभावित होकर सोनगढ़में प्रभावनाके एक अंगरूप ऐसी प्रत्येक कुमारिका ब्रह्मचारिणी बहिनोंके प्रति जिन्हें पितृवत् वात्सल्य था ऐसे सेठ श्री बच्छराजजी आदि गंगवाल भाइयोंको अपने वतनमें गुरुदेवके शुभागमनसे बहुत ही आनंद हुआ था। लाडनूंके विशाल भव्य दिरमें दर्शन-पूजन-भक्ति करके तथा प्रवचन देकर गुरुदेव कुचामन, किशनगढ, ब्यावर, शिवगंज, जावाल, आबु आदि स्थलोंमें होते हुए तारंगा सिद्धक्षेत्र पधारे।

* तारंगा – सिद्धक्षेत्रकी यात्रा *

तारंगा सिद्धक्षेत्रसे वरदत्त सागरदत्त वगैरह ३॥ क्रोड़ मुनिवरोंने मुक्तिपद पाया है। वरदत्त राजाने तीर्थंकर नेमिनाथ, मुनिराजको आहार-दान दिया था और बादमे वे नेमिनाथके गणधर हुए थे। इस शांत

और रमणीय सिद्धक्षेत्रमें अत्यंत भावपूर्वक पूजा-भक्ति हुई थी। नीचे तलहटीमें भक्ति होनेके बाद गुरुदेवने प्रवचन दिया था। तारंगासे गुजरातकी राजधानी अहमदाबादमें आये।

* अहमदाबाद नगरमे जन्मजयती *

अहमदाबादमें पाँच हजार जितने लोगोंने भावभीना स्वागत किया। गुरुदेवकी ६८वीं जन्मजयंतीका मंगल-महोत्सव यहाँ मनाया जानेवाला था इसलिये यहाँके मुमुक्षुसमाजको बहुत ही आनंदोल्लास था। अहमदाबादमें चार दिवमके प्रवचनों द्वारा अध्यात्मधर्मकी अच्छी प्रभावना हुई। अनेक श्वेतांबर भाई-बहिनोंने भी गुरुदेवकी अध्यात्मवाणीका अच्छा लाभ लिया।

* सुवर्णपुरीमे पुनः पदार्पण *

गुरुदेव अहमदाबादसे पोलारपुर होकर वैशाख शुक्ला ६ के शुभ दिन निजसाधनाभूमि तीर्थधाम सोनगढ़ पधारे। भक्तोंने बहुत ठाटबाटसे सुवर्णपुरीका शृंगार किया था। चक्रवर्ती छः खंड पर विजय प्राप्त करके अयोध्यामें प्रवेश करे और वहाँ जैसा दृश्य दृष्टिगोचर हो, वैसा मंगलमय दृश्य, समग्र भारतवर्षमें अध्यात्मधर्मकी प्रभावनाका विजयध्वज लहराकर सुवर्णपुरीमें पधारते हुए पूज्य गुरुदेवके मंगल-प्रवेशके प्रसंग पर था। जगह-जगह आसोपालवके तोरण, मंडप, दरवाजे, ध्वज, रंगीन आकृतियाँ, तुईके द्वार और चांदीके दरवाजोंसे सुशोभित सुवर्णपुरी आज गुरुदेवका स्वागत करनेके आनंदसे उछल रही थी। भव्य स्वागतयात्राके बाद अनेक तीर्थोंकी यात्राके मंगल-अवसरमें वीतराग जैनधर्मकी पवित्र प्रभावना करके, पौने छह महिनेके बाद विदेहीनाथ श्री सीमंधर भगवानके दर्शन करते समय, गुरुदेवका चित्त भक्तिसे भीग गया था। पूज्य गुरुदेवने मांगलिक सुनाया। मांगलिकमें तीर्थयात्रामें आये हुये अनेक छोटे-बड़े शहरोंमें लोगोंका अध्यात्मतत्त्वके प्रति उत्साह, प्राप्त हुई धर्मप्रभावना और यात्राका

प्रमोद व्यक्त किया। उसके बाद आदरणीय पं. श्री हिंमतभाईने बहुत सुन्दर, भावपूर्ण स्वागत-प्रवचन किया था और ऐसी भावना व्यक्त की थी कि गुरुदेवके चरणोंकी छायामें निशदिन रहकर आत्महित करें। बादमे बहिनोंने हृदयोर्मियोंसे भरा हुआ स्वागत-गीत गाकर जयजयकार किया था।

* प्रभावनायोगका प्रभाव *

श्री संमेदशिखर आदि तीर्थोंकी यात्रा-प्रसंगमें अनेक गाँवोंके लाखो जैन तथा अनेक जैनेतर लोग पूज्य गुरुदेवके परिचयमे आये, जिससे उनमेसे बहुत जनोंको सोनगढ़ आकर गुरुदेवकी अध्यात्मवाणीका लाभ उनकी अंतरमे भावना जागृत हुई। इसलिये सावन मासमें चलते धार्मिक शिक्षणशिबिरके समय गुरुदेवकी वाणीका तथा शिक्षणका लाभ लेनेके लिये अनेक दिगंबर जैनबन्धु आने लगे। अनेक गाँवोंसे दशलक्षण पर्युषणके दिनोंमें उनके यहाँ सोनगढ़से प्रवचनकार भेजनेके आवेदन आने लगे। इस प्रकार पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रभावना-उदय दिन-प्रतिदिन खूब फैलता गया। भिन्न-भिन्न अनेक नगरोंकी विनतिसे पूज्य गुरुदेवका प्रभावना-विहार भी प्रतिवर्ष होता था। प्रत्येक गाँवमें भव्य स्वागत, प्रवचन और धर्मचर्चा आदि अनेकविध कार्यक्रमोंसे उस गाँवका वातावरण पूर्णतया धर्ममय बन जाता था। अनेक महानुभावोंके हृदयोद्गार सुननेको मिलते कि—कानजीस्वामी द्वारा अभी जो व्यापक धर्मप्रभावना हो रही है ऐसी प्रभावना भूतकालके सैकडों वर्षोंमें हुई हो ऐसा सुना नहीं। सचमुच, महाराजश्री द्वारा अध्यात्मधर्मकी जो प्रभावना हो रही है वह अति अद्भुत है।

* दक्षिण एव मध्यभारतकी यात्रा *

उत्तर भारतके प्रवासके बाद वि. सं. २०१५में भक्तोंको पूज्य गुरुदेवके

साथ दक्षिण और मध्य भारतके जैन तीर्थोंकी मंगलयात्राका अवसर प्राप्त हुआ था। पौष महिनेमें गुरुदेव धंधुका, अमदावाद, पालेज, दाहोद, बडवानी, नाशिक, भीवंडी होकर बम्बईके श्री सीमंधरस्वामी दि. जिनमंदिरकी पंचकल्याणक–प्रतिष्ठाके लिये बम्बई पधारे। मुंबादेवी प्लोटमें २५००० व्यक्ति सरलतासे बैठ सके ऐसा विशाल 'महावीरनगर' नामक सुंदर मंडप बाँधा गया था। अत्यंत आनंदोल्लासपूर्वक मनाया गया यह प्रतिष्ठा-महोत्सव बम्बईके इतिहासमें अभूतपूर्व था। माघशुक्ला ' के दिन प्रतिष्ठा करके सुद ८वीं के दिन गुरुदेवने १००० मुमुक्षुभक्तोंके विशाल संघके साथ दक्षिण भारतकी यात्राके लिये मंगल-प्रस्थान किया।

* यात्रास्थल और प्रवासके गाँव *

बम्बईसे पुना, दहिंगाव, फल्टन, कुंभोज–बाहुबली, कोल्हापुर, हुबली, जोगफोल्स, शिमोगा, हुमच, कुंदाद्रि, वारांग, मूडबिद्रि, कारकल, वेणुर, हलेबीड, हासन, श्रवणबेलगोला (बाहुबली), मेसुर, तेल्लूर बेंग्लोर, कांचीपुरम्, पुंडीनगरी, मद्रास, वंदेवास, पोन्नूर, अकलंकबस्ती, केरेन्डे, नेल्लुर, बेझवाडा, हैदराबाद सोलापुर, बार्शी, कुंथलगिरि, धाराशिवकी गुफाएँ, उस्मानाबाद, इलोरा, अजन्टा, जलगाँव, मलकापुर, शिरपुर, वासीम, कारंजा, परतवाडा (अेलिचपुर), मुक्तागिरि, अमरावती, भातकुली, बजारगाँव, नागपुर, डोंगरगढ, खैरागढ, रामटेक, सिवनी, जबलपुर, मढ़ियाजी, भेलुघाट, पनागर, दमोह, कुंडलगिरि–सिद्धक्षेत्र, शाहपुर, द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र, खजुराहा, पपौराजी, टीकमगढ, आहारजी, ललितपुर, देवगढ़, चंदेरी, थुबौन, चांदखेडी, झालरापाटण, कोटा, बुँदी, मानपुरा, नीमच, चित्तोड, उदयपुर, केसरियाजी (धूलेव) ईडर, मोनासण, रामपुरा, फतेपुर (७० वीं कहानगुरु–जन्मजयंती), तलोद, रखियाल, दहेगाम कलोल, अमदावाद, पोलारपुर, शिहोर, भावनगर, घोघा – इस प्रकार ९८ छोटे–बड़े गाँवोंमें धर्मप्रभावना करके गुरुदेव सोनगढ पधारे।

* भव्य स्वागत *

इस यात्रा प्रवासमें भी गुरुदेव जहाँ-जहाँ पधारते वहाँ हजारों लोग उत्सुकतासे गुरुदेवको देखते रहते। गाँव-गाँवमें छोटे बड़े भव्य-स्वागत होते। मैसुर आदि कई स्थलोंमें स्वागत-यात्रामें हाथी रखते, वे हाथी सूंढमें पुष्पहार लेकर गुरुदेवको सलामी देते। स्वागत-यात्राके मार्गमें आते जैनोंके घरोंके पास चौकी या पाटले पर अक्षतका स्वस्तिक बनाकर, उसके ऊपर श्रीफलयुक्त जलकलश रखकर, केलें संतरे आदिका अर्घ्य चढ़ाकर, गुरुदेवकी बहुत भावसे आरती उतारते, पुष्पोंसे स्वागत और ऊपरसे पुष्पवृष्टि भी करते। गुजराती तो क्या किन्तु हिन्दी भाषा भी बराबर न समझ सकने पर भी प्रवचनमें हजारों लोग आते और गुरुदेवका धर्मपुरुषके रूपमें दिव्य मुखारविंद और प्रभाव देखकर अत्यंत प्रसन्न होते। कन्नड या तामिल वगैरह भाषामें प्रवचनका थोड़ासा अनुवाद उस-उस गाँवके विद्वान द्वारा सुनाया जाता, जिससे अध्यात्मकी अश्रुत-पूर्व नयी बात सुनकर वे आनंदसे रोमांचित होते थे। प्रतिदिन गुरुदेवके साथ नये-नये तीर्थों और नये-नये मंदिरोंके दर्शन करनेमें भक्तोंको भी अत्यंत आनंद होता था।

* मुख्य यात्रास्थल *

✓ दक्षिण भारतके मुख्य तीर्थोंमें : (१) कुंदाद्रि भगवान कुन्द-कुन्दाचार्यदेवका समाधिस्थान है; घनी हरियालीसे सुशोभित मनोहर पहाड़के उपर भव्य जिनमंदिर और कुंड जैसे छोटे सरोवरके किनारों पर कुंदकुंदाचार्यदेवके कमलयुक्त सुंदर चरणचिह्न हैं; (२) मूड़बिद्रिमें रत्न-प्रतिमाएँ, ताड़पत्र पर षट्खंडागमादि प्राचीन शास्त्र और त्रिभुवनतिलक चूडामणि आदि भव्य प्राचीन जिनमंदिर हैं; (३) कारकलमें ८० फूट उन्नत एक अखंड पाषाणका मानस्तंभ, भव्य जिनमंदिर और छोटी पहाडी पर ४२ फूट उन्नत बाहुबलीजीकी भव्य प्रतिमा है; (४) वेणुरमें

३१ फूट उन्नत बाहुबलीजी हैं; (५) हलेबीडमें कसोटी पत्थरके मंदिर एवं भव्य जिनप्रतिमाजी हैं; (६) श्रवणबेलगोलामें इंद्रगिरि पहाड़के ऊपर बाहुबलीजीकी विश्वप्रसिद्ध ५७ फूट उन्नत वीतरागभाववाही भव्य प्रतिमा और अनेक भव्य प्राचीन जिनमंदिर, शिलालेख आदि, सामने चंद्रगिरि पहाड़के ऊपर श्री नेमिचंद्र–सिद्धान्त चक्रवर्तीके शिष्य चामुंडराजा द्वारा निर्मित अनेक प्राचीन भव्य जिनमंदिर, प्राचीन शिलालेख, भद्रबाहु स्वामीकी समाधिगुफामें उनके भव्य चरणचिह्न वगैरह हैं। नीचे गाँवमें भी भट्टारकजीका मठ तथा भव्य जिनमंदिर हैं; (७) पोन्नूरकी छोटी रमणीय पहाडी पर चंपावृक्षके नीचे भगवान कुंदकुंदाचार्यदेवके पवित्र चरण-कमल हैं; पूज्य गुरुदेवके प्रभावनायोगसे विशेष प्रसिद्धिप्राप्त यह पावन तीर्थ कुंदकुंदाचार्यदेवकी तपोभूमि है; (८) कुंथलगिरि–सिद्धक्षेत्र देशभूषण, कुलभूषण केवलीका सिद्धिधाम है; छोटे पहाड़के ऊपर अनेक भव्यमंदिर हैं और देशभूषण तथा कुलभूषणके भव्य चरणचिह्न हैं; (९) शिरपुरमें अंतरीक्ष–पार्श्वनाथका अतिशयक्षेत्र है, (१०) मुक्तागिरि भी एक छोटे मनोरम पहाड़के ऊपर भव्य सिद्धक्षेत्र है, पहाड़के ऊपर बावन जिनालय हैं; मध्यभारतमें: (११) रामटेकमें जिनमंदिरमें बडी बडी खडगासन भव्य जिनप्रतिमा हैं; (१२) कुंडलगिरि–सिद्धक्षेत्र ...नामके एक अननुबद्ध केवलीकी मोक्षभूमि है, यहाँ भी कुंडलाकार रमणीय पहाड़ी पर बावन जिनमंदिर हैं, उनमें एक जिनमंदिर 'बडे बाबा' के नामसे प्रसिद्ध महावीर भगवानकी विशाल जिनप्रतिमा है; (१३) द्रोणगिरि–सिद्धक्षेत्रसे गुरुदत्तादि मुनिवर मुक्त हुये हैं; (१४) नैनागिरि-सिद्धक्षेत्रमें पासके रेशंदीगिरि पर्वत परसे वरदत्तादि मुनिवरोंने सिद्धपद प्राप्त किया है।

* बाहुबलीजीकी यात्रा *

इन सब पवित्र तीर्थोंमें पूज्य गुरुदेवके साथ पूजा-भक्ति वगैरहका असाधारण लाभ मिला था। श्रवणबेलगोलामें बाहुबलीजीकी यात्रा तो

बहुत ही आनंदकारी हुई थी। पूज्य गुरुदेवने अत्यंत भक्तिभावसे अष्ट-प्रकारी पूजा, संघके साथ की थी; बादमें अत्यंत उल्लसितभावसे भक्ति हुई थी। भगवान बाहुबलीको बारबार भावसे निरखते हुये कहा : 'वाह ! कितनी वैराग्यरसभरी मुद्रा ! मुखमुद्रा पर कैसे अलौकिक शांतभाव तैरते हैं ? अहा ! पवित्रता और पुन्य दोनोंमें पूर्ण ! उनका ज्ञानोपयोग तो स्वरूपमें ऐसा लीन हो गया है कि मानों बाहर आनेका तो नाम ही नहीं। उनकी मुखमुद्रासे केवल वीतरागता झरती है। मानों साक्षात चैतन्यबिंब, चैतन्यकी शीतलताका पहाड़ ! इस दुनियामें बाहुबलीका यह वीतरागबिंब सचमुच अद्वितीय है।' यहाँ पूज्य गुरुदेवको भक्तिभावका जो समुद्र उछला था, उसकी शीतल तरंगें भक्तोंके अंतरको पावन कर रही थीं। वाह ! धन्य वह काल ! धन्य वह अवसर !

भक्तिके बाद अनेक सुवर्णकलशों द्वारा गुरुदेवने बाहुबलीजीका चरणाभिषेक किया। अहा ! तारणहार गुरुदेवके पवित्र करकमलसे होते उस पावन अभिषेकका दृश्य ऐसा मनोज्ञ था कि मानों स्वानुभव-सागरके प्रभावना-जलसे गुरुदेव भारतव्यापी अज्ञानमलको धो रहे हों ! धर्मप्रभावक महापुरुषके पुनीत करकमलसे यह विधि होती देखकर भक्तोंके हृदय भक्ति-भावसे उछल रहे थे। (अभिषेककी बोली आदिसे प्राप्त रकमोंसे यहाँ एक 'श्री कानजीस्वामी दि. जैन विश्रांतिभवन' का निर्माण किया गया है।)

पूज्य गुरुदेवके देव-गुरुभक्तिरसपूर्ण और अध्यात्मरसमय प्रवचन सुनकर तथा उनके प्रभावनोदयको प्रत्यक्ष देखकर वहाँके भट्टारकजी श्री चारुकीर्तिको बहुत ही प्रमोद हुआ। कन्नड़ भाषामें व्यक्त किये गये उनके प्रमोदका अनुवाद करते हुये उनके पंडितने कहा : 'स्वामीजी ! श्री भद्रबाहुस्वामी बारह हजार श्रमणशिष्योंके साथ जब यहाँ पधारे थे तब जो धर्मोद्योत हुआ था वैसा ही धर्मोद्योत, संघसहित, दक्षिण भारतमें

उन्हें जैनदर्शन, एवं उसे सरल और स्पष्टरूपसे समझानेवाले पूज्य गुरुदेवके प्रति अंतरमें बहुमान प्रगटता। वास्तवमें मार्ग प्रभावक गुरुदेवने साधनाका अध्यात्मपंथ प्रकाशित करके देशविदेशमें हजारों जीवोंको जाग्रत करके महान उपकार किया है। अंतरसे स्वयं खोजा हुआ स्वानुभूति प्रधान अध्यात्ममार्ग अर्थात दिगंबर जैनधर्म जैसे जैसे पूज्य गुरुदेव द्वारा प्रसिद्ध होता गया वैसे वैसे अधिक अधिक संख्यामें जिज्ञासु जीव उनके प्रति आकर्षित हुये—उनका प्रभावना—उदय दिनोंदिन वृद्धिगत होता रहा।

पूज्य गुरुदेवका अध्यात्मोपदेश देशविदेशमें जिज्ञासुओंके घरघरमें पहुंचे इसलिये सं २००० में 'आत्मधर्म' मासिक पत्रका प्रकाशन शुरू हुआ। डेढ़ सालके बाद हिन्दी 'आत्मधर्म' का भी प्रकाशन शुरू हुआ। ये दोनों पत्र आज भी नियमितरूपसे प्रकाशित हो रहे हैं। थोड़े वर्षों तक क्रमशः 'सद्गुरु प्रवचन प्रसाद और 'सुवर्णसंदेश' नामक दैनिक एवं पाक्षिक प्रवचनपत्र भी प्रकाशित हुअे थे। तदुपरांत समयसारादि कुंदकुंद-परमागम एवं अन्य मूल शास्त्र तथा प्रवचनग्रंथ इत्यादि अध्यात्म साहित्य बहुत प्रकाशित हुआ। हजारों प्रवचन टेपमें रेकार्ड किये गये, जिससे धर्मप्रभावक पूज्य गुरुदेवश्रीका अध्यात्मोपदेश घरघरमें पहुँच गया। शुरूआतमें गुरुदेवका प्रभावनोदय सौराष्ट्र—गुजरात तक सीमित था।

हिन्दीभाषी क्षितिजमें प्रभावना-किरणोंका विस्तरण

हिन्दी 'आत्मधर्म' से तथा उसके द्वारा आकर्षित इन्दोरके श्री हुकमचंदजी सेठ सोनगढ आकर अतिशय प्रभावित होनेसे, हिन्दीभाषी दिगंबर जैनोंका प्रवाह सोनगढकी ओर विशेष बढने लगा। होते होते गुरुदेवका प्रभाव इतना अधिक विस्तृत हो गया कि हजारों मुमुक्षु भाई बहन, दूर देशोंसे, अनेक दिगंबर त्यागी और ब्रह्मचारी अश्रुतपूर्व अध्यात्म-उपदेशका अनुपम लाभ लेनेके लिये आने लगे। उत्सवके दिनोंमें स्वाध्याय मंदिर

और जिनमंदिर छोटे पड़ने लगे। प्रवचनके लिये भव्य एवं विशाल 'भगवान श्री कुंदकुंद प्रवचन मंडप' बाँधा गया। उसके शिलान्यासके अवसर पर श्री हुकमचंदजी सेठ उपकृतभावसे बोले थे कि—'इन महाराजजीके उपदेशके प्रभावसे बहुत जीवोंको लाभ हुआ है। मेरा भी अहोभाग्य है कि मुझे महाराजश्रीके चरणोंकी सेवाका लाभ प्राप्त हुआ है। मेरी तो भावना है कि मेरा समाधिमरण महाराजजीके समीपमें हो। आपके पास मोक्ष जानेका सीधा रास्ता है।' उसके उद्घाटनके समय श्री हुकमचंदजी सेठ, गुरुदेवके प्रभावना-उदयसे अत्यंत प्रभावित होकर, अपना आनंद व्यक्त करते हुये बोले: 'मेरी सर्व सम्पत्ति पूज्य स्वामीजीके चरणोंमें न्योछावर कर दूँ तो भी कम है—ऐसा यहाँका वातावरण देखकर, मुझे उल्लास आ रहा है।'

* विद्वत्परिषदका अधिवेशन *

गुरुदेवकी वाणीसे अकेले श्रीमंत ही नहीं किन्तु बड़े-बड़े धीमन्त भी प्रभावित हुये हैं। उद्घाटनके बाद तुरंत ही एक महिनेमें प्रवचनमंडपमें 'भारतवर्षीय दिगंबर जैन विद्वत्परिषद'का तीसरा वार्षिक अधिवेशन, सिद्धान्ताचार्य पं.श्री कैलासचंद्रकी अध्यक्षतामें रखा गया था। न्याय, व्याकरण, सिद्धान्त वगैरह अनेकविध विद्वताके स्वामी ऐसे कुल मिलाकर ३२ उद्भट विद्वान आये थे। पूज्य गुरुदेवश्रीकी अध्यात्मवाणीसे वे सब बहुत प्रभावित हुये थे।

विद्वत्परिषदने, सौराष्ट्रमें लुप्तप्राय दिगंबर जैनधर्मका पुनरभ्युदय होनेमें प्रबल कारणभूत ऐसे पूज्य गुरुदेवके सातिशय प्रभावनायोगसे प्रभावित होकर, पूज्य गुरुदेवके प्रति बहुमान पूर्वक सर्वसंमतिसे एक प्रस्ताव पारित किया था।

* श्री भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत्परिषदका महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव *

आत्मार्थी श्री कानजी महाराज द्वारा दिगंबर जैनधर्मका जो संरक्षण एवं संवर्धन हो रहा है, उसका विद्वत्परिषद श्रद्धावनत होकर अभिवादन

करती है तथा अपने सौराष्ट्रके साधर्मी भाई-बहिनोंके सद्धर्मप्रेमसे प्रमुदित होती हुई हृदयसे उनका स्वागत करती है। विद्वत्परिषद् उसे परम सौभाग्य और गौरवका विषय मानती है कि—आज दो हजार सालके बाद भी महाराजश्रीने श्री १००८ वीर प्रभुके शासनके मूर्तिमान प्रतिनिधि भगवान कुन्दकुन्दकी वाणीको समझकर सिर्फ अपनी ही पहिचान की है इतना ही नहीं परंतु हजारों और लाखों मनुष्योंको एक जीव-उद्धारके सत्यमार्ग पर चलानेका मार्ग बता दिया है। विद्वत्परिषदका दृढ़ निश्चय है कि महाराजके प्रवचन, चिंतन तथा मनन द्वारा दिगंबर जैनधर्मके सिद्धान्तोंका जो स्पष्टीकरण तथा विवेचन हो रहा है, वह सिर्फ साधर्मियोंकी दृष्टिको अंतर्मुख करके ही नहीं रुकेगा परंतु वह सतत ज्ञानाराधकों को अप्रत्ततांके साक्षात् परिणाम-आचरणके प्रति भी उद्यमशील बनाएगा और सर्व मनुष्योंको अंतर्बाह्य पराधीनतासे छुड़ानेवाले रत्नत्रयकी प्राप्ति करानेवाला वातावरण सहज ही उत्पन्न करेगा। अतः इस अवसर पर अभिनंदन और स्वागतके साथ साथ परिषद् यह भी घोषित करती है कि, जो उनका कर्तव्य है, वह हमारा ही है, इसलिये इस प्रवृत्तिमें हम उनके साथ हैं।

समर्थक	प्रस्तावक
प महेन्द्रकुमार जैन, न्यायाचार्य	प्रो. खुशाल जैन
पं परमेष्ठीदासजी जैन, न्यायतीर्थ	(सर्वानुमतसे पारित दि. ८-३-१९४७)
प राजेन्द्रकुमारजी जैन, न्यायतीर्थ	

कैलाशचन्द्र

(प्रमुख, श्री भा. दि. जैन विद्वत्परिषद्)

सोनगढके आध्यात्मिक वातावरणसे प्रभावित होकर एक मूर्धन्य विद्वान प्रसन्नतासे अपने प्रवचनमें अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए ऐसे आशयका कुछ बोले थे : 'पंडित मंडनमिश्रका घर कहां है ? पनिहारीने साश्चर्य कहा: क्या आप पंडित मंडनमिश्रका घर नहीं जानते ? सीधे चले जाइये और जिस घरके दालानमें टंगे हुये पिंजडेमें तोता और मैना 'स्वतः प्रमाणं, परतः प्रमाणं' रटते हों वही मंडनमिश्रका घर ! उसी प्रकार हमें लगता है कि 'सोनगढ़ कहाँ है' ऐसा पूछनेवालेको हम यही कह सकते हैं : जहाँ चौबीसों घंटे आबालवृद्ध सब लोग, स्त्रियां एवं बालिकाएँ भी, एक विज्ञानघन आत्माकी चर्चा वार्ता करते हुये देखे जाते हों वही है कानजीस्वामीका सोनगढ ! सोनगढ़ जैसा आध्यात्मिक प्रसन्न वातावरण अन्यत्र नहीं देखा।

पूज्य गुरुदेवके प्रभावना-उदयसे प्रभावित हुये, दिगंबर जैन संप्रदायके मूर्धन्य पंडित स्व. श्री कैलाशचन्द्रजी सिद्धान्ताचार्यने अपना प्रमोद व्यक्त करते हुये 'जैनसंदेश' के संपादकीयमें दो तीन बार ऐसे आशयका लिखा था कि— वर्तमान दिगंबर जैनाम्नायमें गिने जानेवाले हम मूर्धन्य पंडितोंने गोम्मटसार एवं न्यायशास्त्र पढे थे, किन्तु आजतक समयसारका नाम सुना तो था लेकिन उसे देखा नहीं था। यह सब श्री कानजीस्वामीकी ही देन है कि हम जैसे पंडितोंको समयसारके रसास्वादका मौका मिला।... आज यदि शास्त्रकी चौकी पर समयसार नहीं होगा तो श्रोता सुनने को तैयार नहीं हैं। वस्तुतः यह सब श्री कानजीस्वामीका ही सुप्रताप है।

—विद्वानोंके ऐसे भावभभर हृदयोद्‌गार जानकर सचमुच आश्चर्यका अनुभव होता है कि पूज्य गुरुदेवके आध्यात्मिक प्रभावने भारतवर्षके मूर्धन्य दिगंबर जैन धीमन्तोंको भी कितना प्रभावित किया है !

* देश विदेशमें विस्तरित गुरुदेवका प्रभाव *

सूर्यप्रकाशकी तरह गुरुदेवका प्रभाव और अध्यात्मका प्रचार भारतवर्षमें अत्यंत तेजीसे फैलने लगा। सौराष्ट्रमें और भारतवर्षके अन्य राज्योंमे

क्रमशः अनेक स्थानोंमें स्वाध्यायमंदिर और शुद्धाम्नायी दिगंबर जिन-मंदिरोंका नवनिर्माण, पंचकल्याणक एवं वेदी प्रतिष्ठाएँ हुई, गाँवगाँवमें आत्मार्थलक्षी शास्त्रप्रवचनकी पद्धति प्रचलित हुई, पंच परमागम श्री समय-सार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय संग्रह, नियमसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, समाधितंत्र, इष्टोपदेश, द्रव्यसंग्रह, मोक्षमार्गप्रकाशक वगैरह मूल शास्त्र तथा प्रवचनसाहित्यकी पुनः पुनः अनेक आवृत्तियाँ मुद्रित होकर अनेक लाखोंकी संख्यामें, भगवान श्री कुंदकुंद–कहानजैनशास्त्रमालाके १७० पुष्पों तथा अन्य प्रकाशन संस्थाओं द्वारा, वीतराग साहित्यका विशाल प्रकाशन हुआ। षट्खंडागम जैसे महानशास्त्र भी पूज्य गुरुदेवके प्रभावना कालमें प्रकाशित हुये जिसके मर्म और महिमा पूज्य गुरुदेवकी अमृतवाणीमें मुमुक्षुओंको सुनने और समझनेका महान सौभाग्य प्राप्त हुआ। और धार्मिक शिक्षणके आयोजन भी जगह जगह हुये।

काय-वचन-मन आदि परद्रव्य–भावोंसे अत्यंत भिन्न और समस्त स्थूल–सूक्ष्म शुभाशुम विभावोंसे रहित ऐसे सहज–पूर्ण ज्ञानादि सामर्थ्यसे भरपूर त्रिकाली निज शुद्धात्मद्रव्यके दृढ आलंबनसे समुद्भूत, पूज्य गुरुदेवके निर्मलज्ञानका एवं उनकी सातिशय अध्यात्मवाणीका प्रभाव, जिस तरह सूर्य आकाशमें दूर रहकर भी अपना उद्योत पृथ्वीपर फैलाता है वैसे, भारतवर्षके पश्चिम विभागमें—सौराष्ट्रस्थित सुवर्णपुरीमें–दूर रहकर भी समग्र भारतमें एवं विदेशोंमें भी, प्रवचन-साहित्य, 'आत्मधर्म' पत्र और ऑडियो एवं विडियो टेईप द्वारा सहजरूपसे फैल गया। पूज्य गुरुदेवकी अध्यात्मप्रधान सातिशय महिमा भारतके कोने कोनेमें सहजरूपसे फैलनेमें उनके मंगल विहार भी निमित्त हुये हैं। वह जिनशासनप्रभावक मंगल विहार मुमुक्षुसमाजकी विनतिसे मुख्यतः पंचकल्याणक एवं वेदी प्रतिष्ठाएँ, जैन–तीर्थोंकी यात्रा आदि प्रशस्त प्रयोजनके अर्थ हुये थे। अहा! उन मंगल प्रसंगोकी भव्यताका वर्णन क्या करें? पूज्य गुरुदेवका आनंददायी आगमन

होते ही उस उस गाँवमें सब मंगलरूप हो जाता और उनकी ज्ञानवैराग्य से भीगी बलवान अध्यात्मवाणीके श्रवणसे हजारों श्रोता अश्रुतपूर्व आश्चर्य का अनुभव करते और धन्य धन्य हो जाते थे। महान सद्भाग्यसे जिनके घर पर पूज्य गुरुदेवके आहारदानका योग हो जाता वहाँ तो एक बड़े उत्सव जैसा आनंदमय वातावरण हो जाता था। अहा! मंगलमूर्ति गुरुदेवके मंगल आगमनसे पूराका पूरा गाँव मंगल हो जाय, तो फिर आहारके लिये अपने आँगनमें वे पधारें उस मांगल्यकी बात ही क्या? गुरुदेवके पुनीत प्रभावसे सब कुछ आनंद और मंगलमय हो जाता था।

* प्रतिष्ठाओं द्वारा धर्मप्रभावना *

पूज्य गुरुदेवका आंतरिक जीवन तो शुद्धात्मसाधनामय था और बाह्यमें उनका प्रभावनायोग भी किसी समर्थ आचार्य-सदृश अति महान था। मंगलकारी प्रभावनायोगसे उनके करकमलसे विभिन्न स्थानोंमें ३२ पंचकल्याणक प्रतिष्ठाएँ और ३३ वेदी प्रतिष्ठाएँ हुई थीं। अहा! पूज्य गुरुदेवकी मंगल उपस्थितिमें मनाये गये पंचकल्याणकोंकी क्या बात! पूज्य गुरुदेवके मंगल प्रतापसे प्रत्येक प्रसंग भव्यताकी चरमसीमापर पहुँच जाते थे। गुरुदेवके प्रसंगोचित 'ऋषभस्तोत्र' वगैरहके उपर किये गये जिनेन्द्रभक्तिरससे भीगे अपूर्व प्रवचन श्रोतासागरको हर्षनिर्भोर कर देते थे। प्रतिष्ठावेदीके उपर गर्भकल्याणकके पूर्व और बादमें होनेवाली घटनाएँ, जन्मकल्याणक, निःक्रमणकल्याणक, केवलज्ञानकल्याणक और निर्वाणकल्याणक आदि प्रसंग पर इन्द्रोंके द्वारा प्रस्तुत जिनेन्द्रभक्तिसे भरे अद्भुत वार्तालाप एवं तत् तत् प्रसंगके साक्षात् दृश्य दर्शकोंके नेत्र और हृदयोंमें अंकित हो जाते थे और सर्वजन अतरमें ऐसा ही अनुभव करते थे कि इन भव्य प्रसंगोमें सातिशयता लानेवाला तो पूज्य गुरुदेवका मंगल प्रभाव ही है।

* सातिशय प्रभावनायोग *

* भरतमे विदेहीनाथका आगमन *

पंचकल्याणक क्या है ? श्री जिनेन्द्रदेवके पंचकल्याणक माने वैमानिक स्वर्गके इन्द्रों और देवों द्वारा मध्यलोकमें मनाये जाते विश्वके सर्वोत्कृष्ट महापुरुषके गर्भ—जन्मादि मंगल महोत्सव। पूज्य गुरुदेवश्रीके पुनित प्रभावना—उदयसे, भारतभरमें एवं विदेशमें, ऐसे पंचकल्याणकके मंगल महोत्सव मनानेका और देखनेका सौभाग्य मुमुक्षुजनोंको बत्तीस बार प्राप्त हुआ है। उनमें सबसे पहला अवसर पूज्य गुरुदेवकी साधनाभूमि सोनगढ़में वि. सं. १९९७ में जब श्री दिगंबर जिनमंदिरका निर्माण हुआ तब मूलनायक विदेही जिन श्री सीमंधर भगवान आदि जिनेन्द्र भगवन्तोंकी पंचकल्याणक—पुरःसर पावन प्रतिष्ठा हुई थी और अत्यंत आनंदोल्लास सहित महोत्सव मनाया गया था। वाह! रोमांचकारी उस मंगल महोत्सव की तो क्या बात करें ! उस भव्य अवसरके होनेको अर्धशताब्दी जितना दीर्घकाल बीतजानेके बाद भी उसका स्मरण होते ही आज भी भक्तगणोंके हृदय आनंदकारी भक्तिरससे आह्लाद अनुभवते हैं।

* सीमंधर जिन ! देखे लोयण आज *

प्रतिष्ठाके पहले माघ शुक्ला दूजके शुभ दिनमें सुप्रभातके समय सूर्योदय हुआ तब श्री सीमंधरादि जिनेन्द्रभयवन्तोंकी प्रतिष्ठेय प्रतिमाओंका भव्य ग्रामप्रवेशोत्सव अत्यंत हर्षोल्लासके साथ हुआ था। भगवान पधारे, और स्वाध्यायमंदिरके विशाल प्रवचनकक्षमें प्रतिष्ठित समयसारके भव्य गवाक्षके पास पेटियाँ खोली गई। आह! सीमंधरभगवानकी भव्य मुद्रा देखते ही पूज्य गुरुदेव अंतरके कोई अनूठे भक्तिभावसे स्तब्ध रह गये। आँखोंसे विरहवेदनके अश्रु बहने लगे। अभी प्रतिष्ठा तो नहीं हुई थी तब भी पूज्य गुरुदेवकी लगन इतनी तीव्र थी कि वे टहलते—टहकते बारबार भगवानके जिनबिंबके पास जाकर बैठ जाते और उपशम रसभरी शान्त-मुद्रा निरख-निरखकर भक्तिभावसे गाते थे कि—

अमियभरी मूरती रची रे, उपमा न घटे कोय;
शान्त सुधारस झीलतो रे, निरखत तृप्ति न होय
सीमन्धरजिन ! देखे लोयण आज ।

फाल्गुन कृष्णा ११ से फाल्गुन शुक्ला द्वितीय दूज तक पंचकल्याणक प्रतिष्ठाका आठ दिनोंका महोत्सव मनाया गया था। अहा! कैसा योगानुयोग ! पूज्य गुरुदेवके द्वारा सनातन सत्य वीतराग जिनशासनकी वृद्धि होनेवाली थी इसके शुभ चिह्नसूचक भगवानकी प्रतिष्ठापूर्वक स्थापना भी वृद्धिगत तिथि पर हुई। जीवनमें प्रथमबार ही पंचकल्याणक देखने और मनानेका लाभ पूज्य गुरुदेवके पुनित प्रतापसे प्राप्त होनेसे, प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन आदि भक्तजनोंका आनन्दोल्लास अपूर्व था, सबको साश्चर्य अनुभव होता था कि मानों वे सब साक्षात् तीर्थंकरदेवके कल्याणक मना रहे है। उस समय भक्तगण जिनेन्द्रभक्तिरससे भीगकर गा रहे थे कि—

स्वर्णपुरीमें स्वर्ण-रवि उदित हुआ रे आज,
भव्यजनोके हृदयमें हर्षानंद अपार,
श्री सीमन्धर प्रभुजी पधारे हम द्वारपे. रे .

* जिनेन्द्र महिमाका अमृतझरना *

प्रतिष्ठा महोत्सवके अवसर पर पू. गुरुदेवके व्याख्यान भी वीतराग सीमंधरभगवानको भेंटनेकी धुनसे भरे रहते थे। प्रवचनोंमें अध्यात्मशैलीपूर्वक जिनेन्द्रभक्तिरसकी बौछारें होती थी। पूज्य गुरुदेव प्रवचनोंमें बारबार भगवानको याद करते रहते और अश्रुसभर नेत्रोंसे अंतरके गहन भक्तिभावसे कहते: हे नाथ! आपके प्रत्यक्ष दर्शनके अभावमें आपकी स्थापना करके, आपकी विरहवेदनाको हम भुलायेंगे। हे स्वामिन् ! जो अल्पमति आप जैसे सर्वज्ञप्ररूपित तत्त्वमें वितठा करता है, वह वास्तवमें अंध है जो कि चक्षुवाले मनुष्यके द्वारा गिने गए आकाशमे उड़ते पक्षियोंकी संख्याक

आपके पधारनेसे हुआ है। विशाल संघसहित आपके पदार्पणसे मेरा चित्त प्रसन्न हुआ है। दक्षिण भारतके जैनोंकी ओरसे मैं आपका स्वागत करता हूँ।'

* पोन्नूरकी भव्ययात्रा *

बाहुबलीजीकी यात्रा जैसी ही आनंदकारी दूसरी यात्रा कुंदकुंद तपोभूमि पोन्नूरकी हुई थी। पूज्य गुरुदेव और उस पावनकारी गुरुधामका मिलन, फिर तो भक्तोंके आनंदकी अवधि ही क्या रहे? वहाँके निवासी गुरुदेवकी प्रतिभाशाली सुनहली भव्यमुद्रा और प्रभावक व्यक्तित्व देखकर अत्यंत प्रसन्न हुये थे। गुरुदेवने कुंदचरणका अत्यंत उल्लासभावसे अभिषेक किया, पूजा की और भक्ति कराई। 'कुंदकुंद-चरण' ऊपर चंपापुष्पका वृक्ष है। वहाँके लोग गुरुदेवसे महिमापूर्ण भावसे कहते: 'स्वामीजी! यहाँ कुदरतका ऐसा अतिशय है कि प्रतिदिन इस चरण-चिह्नके ऊपर चंपापुष्प नियमसे गिरता है, मानों 'कुंद-चरण' अपूज्य न रहे इस वास्ते प्रकृतिने पुष्पपूजाकी व्यवस्था की न हो!' यह बात सुनकर कुंदकुंद-मार्गप्रभावक गुरुदेव, भगवतीमाता बहिनश्री चंपाबेन और अन्य भक्तोंको साश्चर्य आनंद हुआ था।

भक्तिके बाद इस पवित्र धामका परिचय देते हुये पूज्य गुरुदेवने अति प्रसन्नतासे कहा: 'कुंदकुंदाचार्यदेव यहाँ ध्यान करते थे। यह भूमि उनकी तपोसाधनासे पवित्र हुई है। वे यहाँसे पूर्वमहाविदेहक्षेत्रमें श्री सीमंधरभगवानके दर्शन करने गये थे। वहाँ वे आठ दिन रहे थे। वहाँसे आकर उन्होंने यहाँ समयसार वगैरह परमागमोंकी रचना की थी। भगवान कुंदकुंदाचार्यदेवका हमारे ऊपर बहुत उपकार है, हम उनके दासानुदास हैं।

अहा! गुरुदेवके साथ उस मंगल-यात्राके आनंदकी तो क्या बात करें? गुरुदेवके उपकारकी महिमा कैसे गायें! उनके पुनीत प्रतापसे तो

* सातिशय प्रभावनायोग *

भक्तोंको भवान्तकारी अध्यात्मविद्या मिली और साथ-साथ तीर्थकरों, गणधरों और साधक मुनिवरोंके पवित्र धाम भी देखने-जानने मिले।

* उत्तर तथा दक्षिण भारतकी दूसरी वार यात्रा *

गुरुदेवका प्रभावनायोग इतना असीम था कि सूर्यके प्रकाशकी तरह, उसके फैलावको कोई न रोक सके। पुनः पुनः प्रभावक प्रतिष्ठाएँ, पुनः पुनः प्रवास और पुनः पुनः यात्रा। उत्तर भारतके संमेदशिखरादि तीर्थोंकी दूसरी वारकी यात्रा, जयपुरमें टोडरमल-स्मारकके उद्घाटन और उसमें श्री सीमंधर-जिनालयकी वेदीप्रतिष्ठाके निमित्तसे वि. सं २०२३ में हुये पावन प्रवासके अवसर पर हुई थी। उस समय बयानामें सीमंधरभगवानकी (५०० वर्ष प्राचीन) प्रतिमाके दर्शन-अभिषेकमें पूज्य गुरुदेवको जो अतीव आनंद हुआ था और उस आनंदके मधुर प्रवाहमें पूज्य गुरुदेवने जो कुंद-सीमंधर-मिलनकी और दूसरी कहने योग्य कई अद्भुत बातें कही थीं उसके मधुर संस्मरण भक्तोंके हृदयको आज भी नचाते हैं।

ऐसी ही प्रभावनाकारी दक्षिण भारतकी (दूसरी वारकी) यात्रा वि. सं. २०२०में, दादरके (बम्बई) श्री महावीरस्वामी जिनमंदिरकी प्रतिष्ठाके अवसर पर हुई थी। इस प्रकार अनेक प्रवास, प्रतिष्ठाएँ और यात्राओंमें शासनप्रभावक पूज्य कहानगुरुदेवके लोकोत्तर प्रभावना-योगसे स्वानुभूतिप्रधान अध्यात्मधर्मकी महान प्रभावना हुई थी।

* जन्मजयंती-प्रसंगमें धर्मप्रभावना *

पवित्र प्रभावनायोगमें गुरुदेवका जन्मजयंती-उत्सव भी उसका एक विशिष्ट अंग था। तीर्थंकर या आचार्यतुल्य परमोपकारी परम-तारणहार कहानगुरुदेवकी जन्मजयंतियोंके समय तो मुमुक्षुजगत गुरुभक्तिसे उछल पड़ता था। उस समय हजारों मुमुक्षु गुरुदेवकी प्रभावनागंगामें, भवदाह शांत करनेके लिये, पवित्र स्नान करनेके लिये आते—अध्यात्मवाणीका अमृतपान करनेके लिये आते।

सुवर्णपुरीमें गुरुदेवके मंगल-जन्मोत्सव प्रशममूर्ति भगवती माताकी गुरुभक्तिभीगी मंगल-प्रेरणासे आनंदोल्लासपूर्वक मनाये जाते थे; उनमें वचनपूर्णाहुतिके वर्षमें — ५९वें वर्षमें — मंगलप्रवेशका 'गुरुजन्मजयंती-महोत्सव' (वि. सं. २००४ में) किसी विशिष्ट प्रकारके आनंदोल्लास-पूर्वक मनाया गया था। अहा! जन्म-महोत्सवके आनंदकी तो क्या बात! उसकी कितनी महिमा करें! 'गुरुजन्म-जयंती'का यह महोत्सव मनानेमें भक्तोंके हृदय तो हर्षसे नाच उठते थे। अहा! ऐसे देवी महा-पुरुषका वर्तमानकालमें जन्मोत्सव मनानेका अमूल्य अवसर प्राप्त हुआ, उसके लिये किसके हृदयमें आनंदकी ऊर्मियाँ न उछले? — अरे! भक्त-हृदय वशमें न रहें, जिनके हृदय गुरु-उपकारोंसे अंतर्बाह्य रससिक्त हो गये हैं ऐसे भक्तोंको तो ऐसा ही हो कि — अहो! यह भवोदधितारणहार गुरुदेवकी क्या क्या भक्ति करें?

अहा! ऐसे अनुपम और अद्भुत, शासनप्रभावक, अध्यात्मयुग-स्रष्टा महापुरुषकी कल्याणकारी जन्मजयंती किस वर्षकी और किस नगरके भाग्यशाली भक्तोंको मनानेका महान सौभाग्य प्राप्त हुआ, वह यहाँ देखें:—

जन्मजयंती-क्रम	वि. सं.	स्थान
५९	२००४	सोनगढ
६०	२००५	राजकोट
६१	२००६	सोनगढ
६२	२००७	सोनगढ
६३	२००८	सोनगढ
६४	२००९	सोनगढ
६५	२०१०	सुरेन्द्रनगर

जन्मजयंती-क्रम	वि. सं.	स्थान
६६	२०११	सोनगढ
६७	२०१२	सोनगढ
६८	२०१३	अमदावाद
६९	२०१४	सुरेन्द्रनगर
७०	२०१५	फतेपुर
७१	२०१६	उमराला
७२	२०१७	सोनगढ
७३	२०१८	राजकोट
७४	२०१९	लाठी
७५	२०२०	बम्बई (अमृत-जन्मोत्सव भारतके गृहमंत्री लालबहादुर शास्त्रीके हाथसे अभिनंदनग्रंथ समर्पित)
७६	२०२१	राजकोट
७७	२०२२	सोनगढ
७८	२०२३	बोटाद
७९	२०२४	वींछिया
८०	२०२५	बम्बई (रत्नचिन्तामणि-जन्मोत्सव)
८१	२०२६	भावनगर
८२	२०२७	पोरबंदर
८३	२०२८	फतेपुर
८४	२०२९	कलकत्ता
८५	२०३०	बम्बई
८६	२०३१	अमदावाद
८७	२०३२	दादर (बम्बई)

८८	२०३३	जामनगर
८९	२०३४	घाटकोपर (बम्बई)
९०	२०३५	बम्बई
९१	२०३६	मलाड (बम्बई)

परम-तारणहार गुरुदेवकी अनुपस्थितिमें सभी गुरु–जन्मजयंतियाँ सोनगढ़में परमपूज्य कहानगुरुकी लोकोत्तर महिमा बतलानेवाली परमोपकारी प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबहिनकी गुरुभक्तिभीनी कल्याणी छायामें मनानेकी भक्तोंकी भावना होनेसे क्रमांक ९२ से ९९ तककी गुरुजन्मजयंतियाँ सोनगढ–ट्रस्ट एवं अन्य मुमुक्षुमंडलोंकी ओरसे गुरुदेवकी पवित्र साधनाभूमिमें अत्यानंदोल्लासपूर्वक मनाई गई थीं। इस वर्ष गुरुदेवकी जन्मशताब्दी भी सोनगढ–ट्रस्ट कहानगुरुके पवित्र तीर्थधाममें – सुवर्णपुरीमें– धन्यावतार, गुरुभक्त. भगवतीमाताके मंगल-सान्निध्यमें बहुत बड़े समारोहपूर्वक मनायी जा रही है।

* प्रभावनाकी विविध घटनाओंसे भरपूर जीवन *

— इस प्रकार अध्यात्मधर्मप्रभावनाके मुख्य केन्द्र तीर्थधाम सुवर्णपुरीमें रहकर की हुई, — प्रवचन, धर्मचर्चा, जिनायतन निर्माण और उनकी प्रतिष्ठाएँ, सालमें दो बार लगनेवाले धार्मिक शिक्षणशिविर, जिनेन्द्रभक्ति और जिनसहस्रनाम–सिद्धचक्र–पंचमेरुनंदीश्वरादि मुख्य मंडल-विधानपूजाएं, आदि—अनेकविध धार्मिक गतिविधियाँ, मंगल विहार, बिंब-प्रतिष्ठाएँ, तीर्थयात्रा, 'आत्मधर्म,' पत्र और विपुल साहित्यप्रकाशन, आदि द्वारा हुई धर्मप्रभावना सचमुच अद्भुत और अनुपम है। अध्यात्म-मूर्ति, स्वानुभूतिसंपन्न, तीर्थंकर–आचार्यतुल्य सातिशय प्रभावना-उदयके स्वामी, पवित्रात्मा पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीके प्रभावनागगनके धर्मोद्योतकारी – चमकते प्रसंगमितारे संख्यामें सीमित नहीं किये जा सकते, न उन्हें समर्थ लेखनीसे भी लिपिबद्ध किया जा सकता है।

प्रभावना-उदयकी एक घटना याद करते, दूसरी अनेक छूट जायँ— ऐसी शासनप्रभावनाकी अनेक अद्भुत घटनाओंसे पूज्य गुरुदेवका जीवन विभूषित है।

* निस्पृह और निरपेक्ष व्यक्तित्व *

पूज्य गुरुदेवके निमित्तसे ऐसी असाधारण बाह्य प्रभावना सहजरूपसे हो गई थी। गुरुदेवने धर्मप्रभावनाके लिये कभी किसी योजनाविषयक न तो विचार किया था और न उसका कोई आयोजन किया था। यह उनकी प्रकृतिमें ही न था। उन्हें तो आत्माका कल्याण कर लेनेकी ही धुन रहती थी; इसलिये उनका प्रायः सब समय शास्त्रोंके न्याय गहराईसे विचार करनेमें ही व्यतीत होता था। आत्माकी धुनके कारण, भोजनके समय आहार स्वाद है या बेस्वाद है उसके प्रति भी उनको हमेशा दुर्लक्ष रहता था। कई बार तो भोजनके समय भी उनका चित्त शास्त्रोंके न्यायोंका विचार करनेमें मग्न रहता था। वस्त्रपरिधानमें भी वे अत्यन्त उपेक्षावृत्तिवाले थे। अन्य कोई परिग्रह रखनेका भाव उनको स्वप्नमें भी नहीं आता था। लकड़ीके पाट पर एक वस्त्र बिछाकर शयन करते थे और निद्रा भी अल्प लेते थे। उनका समग्र जीवन निजकल्याणसाधनाको समर्पित था। बाह्य ख्याति-लाभ-पूजादिसे वे बिलकुल निःस्पृह थे। उन्होंने जो सुधास्यन्दी आत्मानुभूति प्राप्त की थी, जो कल्याणकारी अध्यात्मतथ्य आत्मसात् किये थे, उसकी अभिव्यक्ति 'अहा! ऐसी वस्तुस्थिति!' इस तरह विविध रूपोंमें सहजभावसे उल्लासपूर्वक उनसे हो जाती थी, जिसका गहरा आत्मार्थप्रेरक प्रभाव श्रोताओंके हृदयों पर पड़ता। मुख्यरूपसे इसी प्रकार उनके द्वारा सहजरूपसे ऐसा देश विदेशव्यापी महान धर्मोद्योत हो गया था। इतनी प्रबल बाह्य धर्मप्रभावना होने पर भी, पूज्य गुरुदेवको बाहरी बावतोंमें थोड़ा-सा भी रस न था; उनका जीवन तो केवल आत्माभिमुख था, लोकाभिमुख नहीं।

* गुरुदेवका अनुपम उपकार *

अध्यात्ममार्गके प्रभावक ऐसे पूज्य गुरुदेवके ४५ वर्षके सुदीर्घ काल तक, निवासके कारण सोनगढ अध्यात्मविद्याका एक अनुपम केन्द्र बन गया है। यहाँके शांत, शीतल और एकान्त वातावरणमें वर्षों तक वहे हुये पूज्य गुरुदेवके प्रवचनामृत द्वारा अनेकविध बहुत बड़ी धर्मप्रभावना हुई है। गुरुदेवके पुनीत प्रतापसे-उनके चरणोंसे यहाँका कणकण पुरुषार्थ-प्रेरक और पवित्र बन गया है। सोनगढ एक सातिशय 'धर्मनगरी' बन गई है। अहा! गुरुदेवकी महिमाका वर्णन कैसे किया जाय? गुरुदेवका द्रव्य ही अलौकिक था। इस पंचमकालमें इस महापुरुषका— आश्चर्यकारी अद्भुत आत्माका— यहाँ जन्म हुआ यह किसी महाभाग्यकी बात है। उन्होंने स्वानुभूतिकी अपूर्व बात प्रकट करके सारे भारतके लोगोंको जगाया है। गुरुदेवका द्रव्य 'तीर्थंकरका द्रव्य' था। इस भरतक्षेत्रमें पधारकर महान महान उपकार किया है।

पूज्य गुरुदेवका अन्तर सदा 'ज्ञायक ..ज्ञायक ..ज्ञायक, भगवान आत्मा, ध्रुव ध्रुव ध्रुव, शुद्ध शुद्ध शुद्ध, परमपारिणामिकभाव' इस प्रकार त्रैकालिक ज्ञायकके आलंबनभावमे निरंतर—जागृति या निद्रामे— परिणम रहा था। सोनगढमें हों कि विहारमे हों, वे सर्वत्र प्रवचनों और तत्त्वचर्चामें ज्ञायकके स्वरूपका मधुर संगीत गाते रहते थे। अहो! वह ज्ञायक और स्वतंत्रताके उपासक गुरुदेव! उन्होंने मोक्षार्थियोंको मुक्तिकी सच्ची राह दिखायी!

* आज भी सोनगढ़मे प्रवर्तता गुरुदेवका प्रभावना-प्रताप *

पूज्य गुरुदेवके पवित्र चरणकमलके स्पर्शसे और उनके चैतन्य-स्पर्शी अध्यात्मोपदेशसे किंचिदून-अर्धशताब्दी तक पावन बने इस सोनगढ तीर्थका सौम्य, शीतल वातावरण, उनके सातिशय पुण्यप्रतापसे, आज भी—गुरुमहिमाप्रभावक प्रशममूर्ति भगवतीमाता पूज्य बहिनश्री

चंपावहिनकी मंगलवर्धिनी कल्याणी छायामें—आत्मार्थियोंकी आत्मसाधनालक्षी आध्यात्मिक प्रवृत्तियोंकी मधुर सौरभसे महकता है। गुरुदेवके परम प्रतापसे यह अध्यात्मतीर्थधाम सोनगढ़—आत्मसाधनाका तथा बहुमुखी धर्मप्रभावनाका पवित्र निकेतन—सदैव आत्मार्थियोंके जीवनपथको उज्ज्वल करता रहेगा।

हे परमपूज्य परमोपकारी कहानगुरुदेव! आपश्रीके पुनीत चरणों में—आपकी मांगलिक पवित्रताको, पुरुषार्थप्रेरक ध्येयनिष्ठ जीवनको, स्वानुभूतिमूलक सन्मार्गदर्शक अध्यात्मोपदेशोंको और तथाविध अनेकानेक उपकारोंको सदैव हृदयमें रखकर—अत्यंत भक्तिपूर्वक भावसहित प्रणाम हो। आपके द्वारा प्रकाशित वीर–कुंदप्ररूपित स्वानुभूतिका पंथ जगतमें सदा जयवंत वर्तो! जयवंत वर्तो!

—ब्र. चंदूभाई खी झोबालिया

मेरा मनडा माही गुरुदेव रमे,
जगना तारणहाराने मारुं दिल नमे
शासन तणा सम्राट अमारे आगणे आव्या;
अद्‌भुत योगीराज अमारां धाम दीपाव्या,
मीठो महेरामण आगणिये कहान महाराज,
पुण्योदयना मीठा फल फळिया आज मेरा० १

अमृतभर्यां ज्या उर छे, नयने विजयना नूर छे,
ज्ञानामृते भरपूर छे, ब्रह्मचारी ए मडवीर छे,
युक्ति-न्यायमां शूरा छो योगीराज,
निश्चय–व्यवहारना साचा छो जाणनहार मेरा० २.

देहे मढेला देव छो, चरिते सुवर्णविशुद्ध छो,
धर्मे धुरधर संत छो, शौर्येसिहण-पीध दूध छो,
मुक्ति वरवाने चाल्या छो योगीराज,
जिनवर धर्मना साचा आराधनहार. मेरा० ३

कुंदकुंद–नंदनने वंदन वार वार

भारतखंडमां संत अहो जाग्या रे

(राग–विदेहवासी कहानगुरु भरते पधार्या रे)

भारतखंडमां संत अहो जाग्या रे,
पंचमकाळे पधार्या तारणहारा रे,
अनुभूति–युगस्रष्टा स्वर्णे पधार्या रे,
आवो रे सौ भक्तो गुरुगुण गाओ रे,
उजमबाना नंदनने भावे वधावो रे....भारतखंडमां० १.

आवो पधारो गुरुजी अम आंगणिये;
आवो बिराजो गुरुजी अम मंदिरिये.
माणेक–मोतीना साथिया पुरावुं रे,
विधविध रत्नोथी गुरुने वधावुं रे....भारतखंडमां० २.

यात्रा करीने मारा गुरुजी पधार्या;
स्वर्णपुरीना संत स्वर्णे बिराज्या (पधार्या).
स्वर्णपुरी नगरीमां फूलडां पथरावो रे,
(अंतरमां आनंदना दीवडा प्रगटावो रे,)
घर–घरमां रुडा दीवडा प्रगटावो रे... भारतखंडमां० ३.

भारतभूमिमां गुरुजी पधार्या;
नगर–नगरमां गुरुजी पधार्या.
तारणहारी वाणीथी हिंद आखुं डोले रे,
गुरुजीनो महिमा भारतमां गाजे रे.
(भव्य जीवोनो आतम जागे रे.) ...भारतखंडमां० ४.

सम्मेदशिखरनी यात्रा करीने;
शाश्वत धामनी वंदना करीने;
भारतमां धर्मध्वज लहराव्या रे,
पगले पगले तुज आनंद वरस्या रे. .. भारतखंडमां० ५.

सीमंधरनाथना राजपुत्र विदेहे:
सत्धर्म-प्रवर्तक , संत भरते.
परम-प्रतापवंता गुरु आव्यां रे,
(भवभवना प्रतापशाळी गुरुजी पधार्या रे,)
चैतन्यधर्मना आंबा अहो ! रोप्या रे,
नगर-नगरमां फाल रूडा फाल्या रे. . भारतखंडमां० ६.

नगरे नगरे जिनमंदिर स्थपायां:
गुरुजी-प्रतापे कल्याणक उजवायां.
अनुपम वाणीनां अमृत वरस्यां रे,
भव्य जीवोनां अंतर उजाळ्यां रे.
(सत्य धरमना पंथ प्रकाश्या रे.) भारतखंडमां० ७.

नभमंडळमांथी पुष्पोनी वर्षा:
आकाशे गंधर्वो गुरुगुण गाता.
अनुपम (अगणित) गुणवंता गुरुजी अमारा रे.
सातिशय श्रुतधारी, तारणहारा रे,
चैतन्य-चिंतामणि चिंतित-दातारा रे ...भारतखंडमां० ८.

गाजे मधुरा गुरुवाणीना गाजे:
सुवर्णपुरे नित्य चिद्-रस वरसे.
ज्ञायकदेवनो पंथ प्रकाशे रे,
शास्त्रोनां ऊंडां रहस्यो उकेले रे. भारतखंडमां० ९.

मंगलमूरति गुरुजी पधार्या;
अम आंगणिये गुरुजी बिराज्या.
महाभाग्ये मळिया भवहरनारा रे,
अहोभाग्ये मळिया आनंददाता रे,
पंचम काळे पधार्या गुरुदेवा रे,
नित्ये होजो गुरुचरणोनी सेवा रे. ..भारतखंडमां० १०.

પૂજ્ય-ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામી જન્મશતાબ્દી વિશેષાંક

પ્રકાશન ખાતે આવેલી

* રકમો *

૧૦૦૧ પ્રશમમૂર્તિ ભગવતી માતા પૂ. બહેનશ્રી ચંપાબેન-સોનગઢ

૩૫૦૧ પ્રશમમૂર્તિ ભગવતી માતા પૂ. બહેનશ્રી ચંપાબેન તથા કેટલાક બ્ર. બહેનો-સોનગઢ

૧૧૦૦૦ શ્રી વીણાબેન જગદીશભાઈ મોદી, મલાડ

૧૧૧૧/૧ રૂપિયા

શ્રી હસમુખલાલ પોપટલાલ વોરા, મુંબઈ
,, હીરાલાલ ભીખાલાલ શાહ, પરિવાર મુંબઈ
શ્રી પરસોત્તમદાસ ઓધડદાસ કામદાર પરિવાર-મુંબઈ
શ્રી ચીમનલાલ/ગિરધરલાલ ડાકરશી મોદી, મલાડ

૫૦૦૧ રૂપિયા

શ્રી હસમુખલાલ કાંતીલાલ ગાંધી, ભાવનગર
શ્રી ભોગીલાલ ચત્રભુજ દોશી, ઘાટકોપર
સ્વ. વ્રજલાલ કસળચંદ સંઘવી, વાંકાનેર (હ. સતીશભાઈ)

૨૫૦૧ રૂપિયા

શ્રી ચીમનલાલ/રસિકલાલ/ચંપકલાલ સંઘવી, મુંબઈ
,, જડાવબેન નાનાલાલભાઈ જસાણી-પરિવાર મુંબઈ

૨૦૦૧ રૂપિયા

શ્રી મંછાબેન જયંતિલાલ ભાયાણી-સોનગઢ
,, પ્રવીણાબેન ખારા, મુંબઈ

૧૭૫૨, શ્રી જગજીવનદાસ બાવચંદ દોશી પરિવાર સાવરકુંડલા

૧૫૦૧ રૂપિયા

શ્રી રાયસાહેબ પ્રેમચંદજી જૈન, ખંડવા હ. ચંદ્રાબેન
શ્રી પુષ્પાબેન દોલતરાય મહેતા, જામનગર
શ્રી ચંપાબેન ઉમરાવપ્રસાદ જૈન, ખંડવા હ. બ્ર. આશાબેન

૧૧૧૧ રૂપિયા.

શ્રી આનંદકુમાર ફૂલચંદજી જૈન, હૈદરાબાદ
,, શાંતીભાઈ/કાંતીભાઈ જોઠીયાવાળા, સોનગઢ
શ્રી છગનલાલ કાળીદાસ વાઘર, જામનગર હ. ત્ર્યંબકભાઈ
શ્રી હીરાલાલજી કાલા, ભાવનગર
શ્રી કુસુમબેન નવનીતરાય દોશી, ઘાટકોપર

૧૦૦૧ રૂપિયા.

શ્રી વ્રજલાલ મગનલાલ શાહ, જલગાંવ
શ્રી દિનેશચંદ્ર અંબાલાલ શાહ, મુંબઈ
,, વ્રજલાલભાઈ જે. શાહ તથા પંડીત શ્રી હિંમતભાઈ જે. શાહ સોનગઢ
,, કિશોરભાઈ પ્રેમચંદ શાહ નાઈરોબી
,, પ્રેમચંદ પાનાચંદ ભાયાણી, મુંબઈ હ. ગુણવંતભાઈ
,, પવનકુમારજી જૈન, સોનગઢ
,, ભભૂતમલજી ભંડારી, બેંગલોર
શ્રી છગનલાલ જવાનમલ કુરાવડ, હ. સુમતિપ્રકાશ
,, જગજીવનભાઈ ચતુરભાઈ શાહ સુરેન્દ્રનગર
,, ધીરજલાલ મનસુખલાલ ખેરડિયા, મુંબઈ
,, વિમળાબેન સારાભાઈ શાહ, મુંબઈ
,, ઝવેરીબેન ત્ર્યંબકલાલ ઘડિયાળી, સુરેન્દ્રનગર
,, પ્રવીણભાઈ નથુભાઈ મહેતા, જામનગર હ. મધુબેન
શ્રી છોટાલાલ રાયચંદ ખંધાર સોનગઢ હ. મનહરભાઈ.
,, વસંતબેન નગીનદાસ કપાસી, ભાવનગર
,, કેશવલાલ વ્રજલાલ કોઠારી, મુંબઈ
,, વીરચંદભાઈ જેઠાભાઈ માલદે તથા નિક્ષિત માલદે-સોનગઢ.

નામ	ગામ
શ્રી ... ચનબેન મગનલાલ તથા	
ચંદ્રમણીબેન મણીલાલ સોનગઢ	
,, વસંતકુમાર વીરચંદ માલદે તથા	
અનિલકુમાર માલદે	
,, રતીલાલ પ્રેમચંદ શાહ પરિવાર,	
વિછીયાવાળા	રાજકોટ
,, ગવજીભાઈ ગોવિંદજી પટેલ	બોરીવલી
,, વીરજીભાઈ ભીમજીભાઈ પટેલ	વસઈ
,, ધારશીભાઈ જટાશંકર મહેતા,	સોનગઢ
ચંદુલાલ શિવલાલ સંઘવી	અમદાવાદ
હ હસમુખભાઈ	
,, સુલોચનાબેન કોઠારી,	દાહોદ.
,, તારાચંદ મફતલાલ બાધી	તલોદ
હ. અરવિંદભાઈ	
,, જ્યોતિબેન પ્રવિણચંદ્ર મહેતા	સાંતાક્રુઝ
,, મરઘાબેન ધીરજલાલ પરિવાર	રાજકોટ
,, નગીનદાસ હિંમતલાલ ડગલી,	મલાડ
,, કસુંબાબેન ખીમચંદ ઝોબાળિયા	સોનગઢ
હ બ્ર ચંદુભાઈ તારાબેન ઝોબાળિયા	
,, દેવજીભાઈ વાલાભાઈ –	કાનાતળાવ
હ હર્ષદભાઈ.	
,, લાલચંદ રૂગનાથ શાહ.	મલાડ
હ ભોગીભાઈ	
,, વાલજીભાઈ ભૂરાભાઈ ડગલી,	વાંછિયા
હ હિંમતભાઈ ડગલી	
,, કાંતાબેન ઉલીવાળા	સોનગઢ
,, તારાબેન કપુરચંદ કોઠારી	નંદરબાર
,, પ્રવીણચંદ્ર ભગવાનજી સંઘવી	અમદાવાદ
,, રતીલાલ માણેકચંદ સંઘવી	મોરબી
,, કસ્તૂરીબેન ચોપટલાલ શાહ	બોરીવલી
હ બ્ર નિર્મળાબેન–	
શ્રી મંજુલાબેન પ્રેમચંદ શાહ,	વઢવાણ
,, અમૃતલાલ ડાયાલાલ બાવીશી	લંડન
,, ફૂલચંદ હંસરાજ દોશી,	મોરબી
,, લાલચંદ રવજીભાઈ વાંકાનેર	જેતપુર

નામ	ગામ
,, રાપાણી પરિવાર વાંકાનેર મદ્રાસ	મુંબઈ
	હૈદ્રાબાદ
શ્રી રસિકલાલ અમરચંદ ડગલી	ઘાટકોપર
,, મયાભાઈ જેમાગભાઈ શાહ	મુંબઈ
,, કાન્તિલાલ હરિલાલ શાહ પરિવાર	કાંદીવલી
બ્ર. કુંદનબેન પારેખ	સોનગઢ
ડૉ–પ્રવિણભાઈ ડી– દોશી-	રાજકોટ
શ્રી જયકુમારજી જૈન	દિલ્હી.
,, શીતલપ્રસાદજી જૈન	દિલ્હી
,, જ્ઞાનચંદજી જૈન	દિલ્હી
,, સુખમાલચંદજી તથા વીરેન્દ્રકુમાર	દિલ્હી
,, હરિભાઈ પરબતભાઈ પટેલ-	સુરત
,, મંગળાબેન નાનાલાલ–	પૂના
,, પ્રવીણભાઈ હરિભાઈ દોશી	બેંગલોર
,, છગલબેન તંબોળી	ભાવનગર
પુષ્પાબેન મનસુખલાલ દોશી	મુંબઈ
,, અનિલભાઈ અનોપચંદ ઉદાણી	પાર્લા-
,, કમળાબેન હરિલાલ કોઠારી	અમદાવાદ
,, રમણીકલાલ નથુભાઈ મહેતા	જામનગર
ચંદુલાલ જગજીવન પારેખ	પાર્લા
,, મોહનલાલ બેચરદાસ મોદી	મુંબઈ
,, તખતરાજજી જૈન	કલકત્તા
,, પ્રભુલાલ મોહનલાલ ધીયા,	રાજકોટ
,, દામોદર હંસરાજ મોદી	અમદાવાદ
,, રળિયાતબેન રાયચંદભાઈ શાહ	નાઈરોબી
શ્રી લલિતાબેન જયંતિલાલ મહેતા	મુંબઈ
,, સમજીભાઈ રૂપશીભાઈ તથા	સોનગઢ
,, ગંગાબેન શોભનાબેન છેડા	જામનગર.
બ્ર. કોકિલાબેન મીનાબેન રૂપાબેન તથા	
ડૉ. જયશ્રીબેન	સોનગઢ.
શ્રી એમ એચ ઝોબાળિયા,	સોનગઢ.
શ્રી લીલાબેન વસંતલાલ પારેખ,	અંધેરી.
૧૦૦૧ શ્રી દેવીલાલજી મહેતા	સોનગઢ
૪૦૭૪ રૂા. ૧૦૦૧ ની નીચેની પરચૂરણ રકમો.	

કુલ રૂા. ૧,૭૦,૯૦૯=૦૦

पावन-मधुर अद्भूत अहो! गुरुवदनथी, अमृत झर्यां,
श्रवणो मळ्या सद्भाग्यथी, नित्ये अहो! चिद्रसभर्यां;
गुरुदेव तारणहारथी आत्मार्थी भवसागर तर्यां,
भवभव रहो अम आत्मने सांनिध्य आवा संतना.